ओ३म्

सत्यार्थ प्रकाश निष्कलंक है

डॉ. रघुवीर वेदालंकार
आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय
आचार्य वेद प्रिय शास्त्री
अशोक आर्य

श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास
नवलखा महल परिसर, गुलाब बाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, उदयपुर ३१३००१ (राज.)
फोन : २४१७६६४ मोबाइल – ९३१४२३५१०१ (कार्यकारी अध्यक्ष) ९८२९०६३११० (व्यवस्थापक),
ई मेल satyarthnyas@rediffmail.com वेब साइट www. satyarthprakashnyas.org
satyarthnyas1@gmail.com

न्यास द्वारा प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश का मानक संस्करण अब बिक्री हेतु उपलब्ध

मानक संस्करण की कतिपय विशेषताएँ

१. धर्माय सभा के प्रधान आचार्य विशुद्धानन्द जी मिश्र के नेतृत्व में दस विद्वानों की समिति द्वारा तैयार।

२. पाठभेद की समस्या का सदैव के लिए निराकरण। मुद्रण भूलों का निराकरण कर परिशिष्ट में आधार की जानकारी भी।

३. मानक संस्करण का प्रत्येक पृष्ठ उसी शब्द से प्रारंभ व समाप्त है जैसा कि मूल सत्यार्थ प्रकाश (१८८४) में है।

४. अभूतपूर्व पारदर्शिता।

५. मूल सत्यार्थ प्रकाश (१८८४) सदैव सदैव के लिए पाठक के समक्ष उपस्थित रहेगा।

६. सुन्दर गेटअप, मजबूत जिल्द ५.६" × ८.०" पृष्ठ ६५०, वजन ६०० ग्राम से १ किलो तक।
विभिन्न संस्करणों का विक्रय मूल्य निम्नानुसार रहेगा। (प्रेषण व पैकिंग व्यय अतिरिक्त)

संस्करण	प्रिन्टेड मूल्य	विक्रय मूल्य			
		१ से १० प्रति तक	११ से २५ प्रति तक	२६ से ५० प्रति तक	५१ प्रति से
डीलक्स	१७५.००	१६०.००	१५०.००	१४०.००	१३०.००
सजिल्द	१२५.००	११०.००	१०५.००	१००.००	९५.००
अजिल्द	११५.००	१०५.००	१००.००	९५.००	८५.००
प्रचार	८०.००	७५.००	७०.००	६५.००	६०.००

एक नमूना प्रति मंगाने पर १० प्रतिशत की अतिरिक्त छूट

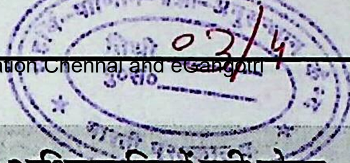
अनेक विशेषताओं से युक्त १८८४ के मूल सत्यार्थ प्रकाश के सर्वाधिक
नजदीक, तत्कालीन शैली का संरक्षण, मुद्रण अशुद्धियों से रहित

सत्यार्थ प्रकाश (मानक संस्करण)

अवश्य खरीदें।

श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास

नवलखा महल परिसर, गुलाब बाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, उदयपुर ३१३००१ (राज.)
फोन : २४१७६६४ मोबाइल – ९३१४२३५१०१ (कार्यकारी अध्यक्ष) ९८२९०६३११० (व्यवस्थापक),
ई मेल satyarthnyas@rediffmail.com बेब साइट www.satyarthprakashnyas.org
satyarthnyas1@gmail.com



आर्य समाज के विद्वानों व अधिकारियों की सेवा में चिन्तन, मनन एवं सम्मति हेतु

प्रकाशक : श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास
नवलखा महल परिसर, गुलाब बाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, उदयपुर-३१३०००१
फोन व फैक्स : ०२९४-२४१७६९४
ई-मेल : satyarthnyas@rediffmail.com
satyarthnyas1@gmail.com
वेब साईट : www. satyarthprakashnyas.org

संस्करण : प्रथम, ३०००
फाल्गुन कृ. दशमी २०६७
२७ फरवरी, २०११
दयानन्द जयन्ती

मूल्य : १५/- रूपये

सृष्टिसंवत् १९६०८५३१११
दयानन्दजन्माब्द १८७
विक्रम संवत् २०६७
ईस्वी सन् २०११

मुद्रक : चौधरी ऑफसेट प्रा. लि.
११-१२, गुरु रामदास कॉलोनी,
एम.बी. कॉलेज के सामने,
उदयपुर-३१३००१

सत्यार्थ प्रकाश निष्कलंक है

पाठक इस पुस्तिका के शीर्षक को पढ़कर सोच रहे होंगे कि इसका शीर्षक 'सत्यार्थ प्रकाश निष्कलंक है',यह क्यों रखा गया?सो निवेदन है कि सत्यार्थ प्रकाश (१८८४) के प्रकाशन के पश्चात् सत्यार्थ प्रकाश को कतिपय अदालती कार्यवाही भी झेलनी पड़ीं, अनेकानेक शास्त्रार्थों में इसकी शिक्षाओं और स्थापनाओं को विचार के केन्द्र में रखा गया, परन्तु आर्य विद्वानों ने सर्वत्र विजय पताका ही फहरायी। यह भी तथ्य है कि विपक्षियों द्वारा समस्त प्रहार,सत्यार्थ प्रकाशस्थ नियोग,धायी आदि स्थापनाओं को लेकर किए,परन्तु जहाँ तक हमें ज्ञात है विगत १२५ वर्ष में कभी भी सत्यार्थ प्रकाश की भाषा, भाव अथवा रह गई मुद्रण अशुद्धियों को सत्यार्थ प्रकाश के कलंक के रूप में,आर्य समाजस्थ अथवा आर्य समाजेतर किसी भी विद्वान् ने निरूपित नहीं किया।

संभवतः पहली बार सत्यार्थ प्रकाश में रह गईं कतिपय अशुद्धियों को 'सत्यार्थ प्रकाश के कलंक' के रूप में आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी ने देखा, और श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश,उदयपुर द्वारा प्रकाशित मानक संस्करण की, 'परोपकारी' पत्र द्वारा सार्वजनिक भर्त्सना के (अनर्गल तथा असत्य) अन्तर्गत इसे निम्न रूप से ज्ञापित भी कर दिया।

अव्यवस्थित संशोधनः- कुछ वर्तनियों,व्यक्तिवाचक नामों और प्रमाणों का संशोधन कर दिया है किन्तु अनेक अभी भी अशुद्ध हैं,जो सत्यार्थ प्रकाश में कलंक के समान विद्यमान हैं। उनको शुद्ध न करने के कारण यह संस्करण पाठकों पर प्रभाव छोड़ रहा है जैसे महर्षि दयानन्द को संस्कृत शब्दों का ज्ञान नहीं था।

{परोपकारी में छपे तीनों लेखों में डॉ. साहब ने जिन पाठों को प्रस्तुत कर जमकर उनका मजाक बनाया है वे मानक संस्करण में कहीं आसमान से उतरकर अवतरित नहीं हुए, वरन् ऋषि के हस्त-लेखों सहित अब तक के सभी संस्करणों में विद्यमान हैं, यह हम प्रत्युत्तरों में भलीभाँति सप्रमाण सिद्ध कर चुके हैं। अतः डॉ. साहब को जो कलंक दिखायी दिया है या संस्कृत की अशुद्धियाँ दिखी हैं उसका दायित्व महर्षिवर पर ही जाता है, अन्यथा वाक्छल को छोड़ डॉ.साहब अपने गिनाये अशुद्ध पाठों में उस अशुद्धि के स्रोत के बारे में पाठकों को बताएँ।}

हमने विद्वानों से इस बारे में अपना अभिमत व्यक्त करने का निवेदन किया है। इस लघु पुस्तिका में आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय,डॉ.रघुवीर वेदालंकार,आचार्य वेदप्रिय शास्त्री के लेख ही दिए जा रहे हैं,जिनसे सुधी पाठकों के समक्ष यह निःसंदेह स्पष्ट हो जायेगा कि डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी का उपरोक्त कथन आधारहीन है। अन्य विद्वानों के लेख शीघ्र प्राप्त हो जावेंगे। उन्हें पुनः किस प्रकार पाठकों तक पहुँचाया जावे,यह विचारणीय होगा।

अशोक आर्य
कार्यकारी अध्यक्ष
श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास
नवलखा महल, गुलाब बाग, उदयपुर

यह पुस्तिका क्यों प्रकाशित की गई ?

अत्यन्त विनम्रतापूर्वक आर्यजनों के समक्ष हम निवेदन करना चाहेंगे कि 'सत्यार्थ प्रकाश जैसे ग्रन्थ के संदर्भ में हम कभी भी सार्वजनिक रूप से विवादास्पद चर्चा नहीं करना चाहते। पूर्व में भी जब परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ३७ वें संस्करण के रूप में,व्यापक परिवर्तन युक्त सत्यार्थ प्रकाश प्रकाशित हुआ था, तो अपना निवेदन 'कब तक मौन रहेंगे?(लघु पुस्तिका) के रूप में मात्र ३०० आर्य विद्वानों,विचारकों को ही सम्प्रेषित किया था,उसे किसी पत्रिका में छपाने का यत्न नहीं किया था। हाँ,बाद में मजबूरी के अंतर्गत ही एक वा दो लेख लिखने पड़े थे।

इसका कारण यह है कि यह विषय विद्वानों के मध्य विचारार्थ रहे और आम आर्यजन को भ्रमित न करे, नव सत्यार्थ प्रकाश अध्येताओं को उनकी श्रद्धा से विचलित न करे और सत्यार्थ प्रकाश- द्वेषियों को आकृष्ट न करे।

पश्चात् भी जब सभा का ३८ वॉ संस्करण छपा,कसौटियाँ भी परिवर्तित हुईं,तब भी सभा प्रधान जी को ही पत्र लिखा था।

जब पूज्य आचार्य विशुद्धानन्द जी की अध्यक्षता व डॉ. रघुवीर जी वेदालंकार के संयोजकत्व में गठित मानक संस्करण विद्वत् समिति द्वारा सम्पादित 'मानक संस्करण' न्यास द्वारा प्रकाशित किया गया तब उसकी आलोचना में परोपकारिणी सभा के मुख पत्र 'परोपकारी' में पंडित विरजानन्द जी का एक लेख तथा डॉ सुरेन्द्र कुमार जी के तीन लेख ,इस प्रकार कुल चार लेख छपे,साथ ही यह संकेत भी थे कि आगे भी जारी रह सकते हैं। इसमें भी यह प्रतीत होता है कि एकाध स्थल को छोड़ विरजानन्द जी तो मानक संस्करण की आलोचना तक सीमित रहे, परन्तु डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी तो समस्त सीमाओं का उल्लंघन कर 'मानक संस्करण' की आड़ में सीधे ऋषि- पाठों की आलोचना करने में जुट गए। हर स्थल पर यद्यपि नाम उनके द्वारा मानक संस्करण का लिया गया परन्तु इस पुस्तिका में संकलित प्रत्युत्तरों से निर्विवाद सिद्ध है कि वह आलोचना महर्षि दयानन्द -प्रोक्त पाठों की ही है। हैरानगी और क्षोभ की बात तो यह है कि डॉ. साहब को स्वयं तो ज्ञात होगा ही कि वे ऋषि-पाठों की आलोचना कर रहे हैं, फिर भी आलोचना में जिस भाषा,भाव,व्यंग्य और अंदाज का प्रयोग है वैसी शायद ही किसी आर्य विद्वान् ने सत्यार्थ प्रकाश के लिए कभी प्रयुक्त की होगी। इससे भी अधिक विडम्बना यह है कि ऐसे लेखों का प्रकाशन जान बूझकर ऋषि की उत्तराधिकारिणी सभा के मुखपत्र परोपकारी में हुआ। अस्तु। हम तो इस पर केवल खेद प्रकाशित कर सकते हैं।

१. पाठकगण ! यद्यपि प्रशस्त तो यही होता कि आलोचक - द्वय और उनके पीछे जो कोई भी हैं,अपनी आपत्तियों को विद्वत् समिति को प्रेषित करते तथा उन पर परस्पर विचार विमर्श द्वारा सकारात्मक निर्णय लिया जा सकता था। परन्तु यदि विद्वत् समिति व न्यास को बदनाम करने के उद्देश्य से लेखमाला के रूप में ही सार्वजनिक आलोचना करनी थी, तो जिन पाठान्तरों के संदर्भ में मानक संस्करण विद्वत् समिति का दायित्व बनता था,केवल उनकी समालोचना न्याययुक्त कहलाती। ऐसा होने पर इस आलोचना में

जितना सत्य होता वह विद्वत् समिति द्वारा ग्रहण किया जाता व असत्य का उत्तर दे दिया जाता वा भ्रम का निराकरण किया जाता।

२. परन्तु वास्तविकता क्या है?- इन लेखों में अत्यल्प भाग को छोड़ सारा का सारा प्रहार उन पाठों पर किया गया है जिनको विद्वत् समिति ने छुआ भी नहीं है। वे संस्करण २(१८८४) में हूबहू उपलब्ध हैं। इसका सीधा सीधा अर्थ यह हुआ कि लेखमाला का प्रकाशन सत्य प्रगटन हेतु नहीं वरन् येन केन प्रकारेग 'मानक संस्करण' को बदनाम कर देने के उद्देश्य से हुआ।

अत्यन्त पुरुषार्थ व निष्ठापूर्वक,श्रेष्ठ विद्वानों द्वारा अत्यन्त चिन्तनपूर्वक जो श्रेष्ठतम कार्य प्रसूत् हुआ,उसकी रक्षा करना भी समिति तथा प्रकाशक का कर्तव्य है,साथ ही जो आरोप लगाये गये उनका निराकरण भी समिति का दायित्व है।

३. इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि 'परोपकारी' जैसे महत्वपूर्ण पत्र और डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी जैसे ख्यातनाम विद्वान् के लेख,इन दोनों के गठबन्धन द्वारा आम आर्यजनों में मानक संस्करण के विरुद्ध मानस बनाने की संभावना थी और अल्पांश में ही सही यह हो भी रहा है। यहाँ तक कि विद्वान् भी इससे भ्रमित हुए हैं। एक सत्यनिष्ठ विद्वान् ने उक्त लेखमाला को पढ़कर डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी को धन्यवाद ही लिख डाला। जब उन्होंने इस पुस्तक में सम्मिलित कुछ लेख पढ़े तो उन्हें सत्य का ज्ञान होने के पश्चात् उन्होंने इस विषय में हमें पत्र लिखा। एक दूसरे मान्य विद्वान् भी एक पक्षीय गम्भीरतम आरोपों से युक्त लेखमाला को पढ़, एकांगी सम्मति बना बैठे। अब उनको भी प्रत्युत्तर रूपी लेख भिजवा रहे हैं। परन्तु उक्त लेखमाला, जो कि संकीर्णता, स्वार्थ, पक्षपात, ईर्ष्या, द्वेष और संपूर्ण असत्य जैसे दोषों से युक्त है,ने जिस अविश्वास का वातावरण श्रद्धालु सत्यार्थ प्रकाश प्रेमियों के मध्य बना दिया है उसका निराकरण तभी हो सकता है जबकि प्रमाण सहित एक- एक बिन्दु का उत्तर उक्त लेखमाला के पाठकों तक पहुँच सके।

ऐसा होना तभी संभव है जब ये प्रत्युत्तर 'परोपकारी'में ही छपें। न्याय भी यही है,सम्पादन धर्म भी यही है। हमें स्मरण होता है कि जब महर्षिवर की अज्ञात जीवनी का संदर्भ प्रकाश में आया तब 'आर्य मर्यादा' 'सार्वदेशिक' आदि पत्रों में दोनों पक्षों के विचार छपे थे। परन्तु अब सम्पादकों की वह प्रवृत्ति अतीत के इतिहास में ही सुरक्षित रह गई है। ये सभी लेख 'परोपकारी पत्र के सम्पादक जी को प्रकाशित करने के आग्रह सहित प्रेषित किए गए थे, परन्तु उन्होंने छापे नहीं। यहाँ तक कि जब आचार्य श्रोत्रिय जी ने उन्हें छापने हेतु डॉ. धर्मवीर जी को टेलीफोन किया तो उन्होंने हठीले स्वर में साफ इंकार कर दिया। वार्तालाप का सार यह था कि 'परोपकारी' में क्या छपे या क्या नहीं वह मेरी 'इच्छा' पर निर्भर करता है।' ये लेख हमने अन्य पत्रों को भेजे,अभी तक हमारी जानकारी के अनुसार मासिक 'तपोभूमि' में डॉ. रघुवीर जी का एक लेख छपा है। अन्यों से भी हमें आशा है।

अब केवल एक मार्ग शेष रहता है कि आर्यजनों तक सत्य के सम्प्रेषण हेतु पुस्तक रूप में लेखों को संकलित कर प्रेषित किया जावे,सो उसका उद्योग किया जा रहा है। निवेदन यही है कि आर्यजन ऋषिभक्त इसे हमारी मजबूरी के रूप में ही समझें।

४. जहाँ 'मानक संस्करण' जैसे संस्करण की सच्चाई को आर्यजनों तक पहुँचाना इस पुस्तिका का उद्देश्य है,उससे भी आवश्यक कारण यह है कि उक्त आलोचना लेखमाला में जिन लगभग १९-२० ऋषि-पाठों की डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी द्वारा आलोचना की गई है, प्रस्तुत लेखों के लेखकों ने इसको भी गम्भीरता से लेकर समाधान किया है,विशेष रूप से आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् आचार्य वेद प्रकाश जी श्रोत्रिय ने इन पाठों की मीमांसा प्रस्तुत की है, जो पाठकों के मन पर से उक्त 'आलोचना-लेखमाला' द्वारा उत्पन्न संदेह रूपी अन्धकार का समूल नाश करने में समर्थ होगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

कई पाठकों ने 'परोपकारी' में छपी लेखमाला न पढ़ी हो, यह भी संभव है। उनके समक्ष सत्यासत्य के निर्णयार्थ दोनों पक्ष सम्मुख होने चाहिए। उनसे हमारा निवेदन है कि आचार्य श्रोत्रिय जी का लेख जिस प्रश्नोत्तर शैली में है, उसमें 'डॉ. साहब' के समक्ष डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी का लेख यथावत् दिया है, वही लेखमाला का केन्द्र है, उसी से दोनों पक्षों की जानकारी हो जावेगी। फिर भी विस्तृत पठन के इच्छुक या तो परोपकारिणी सभा से संबंधित अंकों की प्रति क्रय कर लें अथवा हमें लिखें हम छाया प्रतियाँ प्रेषित कर देंगे।

प्रार्थना:-

१. विद्वत् समिति ने अपने गठन के समय ही मानदण्डों का निर्धारण कर दिया था जो मानक संस्करण में भी उल्लिखित हैं तथा इन लेखों में भी। कार्यशैली की रूपरेखा सम्पादकीय में स्पष्ट कर दी है। यदि आपको इन कसौटियों के विरुद्ध संस्करण में कुछ ज्ञात हो,वर्तनी आदि की प्रूफ रीडिंग में रह गई अशुद्धियों पर ध्यान जावे,अथवा कोई सिद्धान्त विरुद्ध पाठ दिखाई दे,तो कृपया हमें अवश्य लिखें।

२. प्रस्तुत सामग्री पर चिन्तन करें,मनन करें तथा आपके निष्कर्ष से हमें अवगत करावें। हम आपके आभारी रहेंगे।

आभार:- उन सभी विद्वानों का आभार जिन्होंने परिश्रमपूर्वक प्रत्युत्तर लिख आर्यजनों के भ्रम निवारण में अपना योगदान दिया है, साथ ही ऋषि पाठों की रक्षा में सन्नद्ध हुए हैं।

२. प्रत्येक कार्य हेतु धन की आवश्यकता अवश्य रहती है। इस पुस्तिका के प्रकाशन में मान्य कप्तान रणधीर सिंह, रोहतक ने अर्थ सहयोग प्रदान किया है। हम उनके आभारी है।

अशोक आर्य
कार्यकारी अध्यक्ष,
श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास,
उदयपुर

आर्यजनों ने मानक संस्करण का जिस प्रकार स्वागत किया,परिणामस्वरूप इसकी प्रथम आवृत्ति समाप्त होने को है। द्वितीय आवृत्ति से पूर्व मई ११ में, इसमें रह गई प्रूफ संबंधी अशुद्धियों व आलोचना माला में दर्शाए वे स्थल जो ग्रहण करने योग्य हैं, पर विचारार्थ विद्वत् समिति की बैठक आहूत की जावेगी। सभी विद्वानों से निवेदन है कि उनके ध्यान में मानक संस्करण में रह गई कोई अशुद्धि आयी हो, उससे हमें अवगत कराने की कृपा करें।

ओउम्

अनुक्रमणिका

'परोपकारी' में छपी आलोचना लेखमाला में जितने भी पाठ उद्धृत कर आलोचना की गई है उनकी स्थिति दोनों हस्तलेखों तथा अन्य संस्करणों में क्या है?एक साथ तालिका रूप में इस पुस्तिका में दी गई हैं ताकि पाठकों के सम्मुख,सत्य, आइने की भांति उजागर हो जाय।

- ध्यान से पढ़े और मनन करें।

काँच के महल में बैठे ये हमारे मित्र

-डॉ. रघुवीर वेदालंकार

अक्टूबर २०१० के परोपकारी में पंडित विरजानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश के 'मानक संस्करण' को पाखण्ड कहते हुए अपनी बौखलाहट प्रकट की है। इसके बाद नवम्बर के अंक में डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी का लेख भी इसी संदर्भ में आ गया तथा उन्होंने नीचे क्रमशः लिखकर आगे लिखते रहने की इच्छा भी व्यक्त की है। वे भी लिखें,इन जैसी मानसिकता वाले अन्य कोई भी लिखें, समिति को न तो कोई भय है,न ही किसी के प्रति राग-द्वेष । समिति को अभी भी अपने कार्य पर सन्तोष है तथा जिसका समर्थन एवं अनुमोदन अनेक आर्यों/विद्वानों ने पत्रों एवं दूरभाष द्वारा किया है।

पंडित विरजानन्द जी तथा डॉ.सुरेन्द्र जी दो ही नहीं है, अपितु इनके प्रायोजक हैं डॉ. धर्मवीर जी, मंत्री, परोपकारिणी सभा। इस संदर्भ में हमें पाणिनि का 'तत् प्रयोजको हेतुश्च' सूत्र स्मरण कर लेना चाहिए। ये तीनों मित्र ही काँच के महल में बैठकर दूसरों पर पत्थर फेंकने का उद्यम कर रहे हैं, जो सफल तो नहीं होगा, हाँ इससे मानक संस्करण का प्रचार अवश्य बढ़ जायेगा। इस प्रकार इन मित्रों ने हमारा उपकार ही किया है। ऐसा करते रहें, किन्तु एक शालीन पंडित की शिष्ट भाषा में करें तो किसी को भी आपत्ति नहीं होगी। हाँ, जिस प्रकार का प्रारम्भ उन्होंने किया है, इससे उनकी मानसिकता की प्रशंसा नहीं की जा सकती । समिति में आचार्य विशुद्धानन्द जी,पंडित राजवीर जी शास्त्री,आचार्य सुदर्शन देव जी आदि ऐसे श्रद्धेय एवं परिपक्व विद्वान् भी विद्यमान हैं, जिनके शिष्य, पंडित विरजानन्द जी रह चुके हैं, तथा जीवनभर उनसे कुछ सीख सकते हैं। इस पर ध्यान न देकर विरजानन्द जी एक प्रकार से इन सभी मान्य पंडितों को भी पाखण्डी कह रहे हैं, तो यह उनका ही साहस एवं सद्व्यवहार है,जबकि एक शिष्ट पंडित से ऐसी आशा नहीं की जा सकती

मैं उक्त तीनों विद्वानू मित्रों को काँच के महल में बैठे हुए इसलिए कह रहा हूँ कि इन्हेंाने मिलकर परोपकारिणी सभा के माध्यम से जिन सत्यार्थ प्रकाशों का प्रकाशन,सम्पादन किया है उनकी सर्वत्र निन्दा हुई, आर्यजनों में आक्रोश उपजा। विशेषकर, इस बात को लेकर कि इन्होंने अब तक चले आ रहे सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संस्करण को प्रामाणिक न मानकर उसकी रफकॉपी को प्रामाणिक मानकर ऐसा साहसपूर्ण दुष्कृत्य किया कि इससे सत्यार्थ प्रकाश का स्वरूप ही बदल गया। उनके इस कार्य के विरोध में बहुतों ने बहुत कुछ लिखा,किन्तु प्रायोजक डॉ.धर्मवीर जी के सामने वह अरण्यरोदन था। वे अपने अहंकार में ग्रस्त होकर यही कहते रहे कि 'हमने जो करना था वह कर दिया, कोई कुछ कहे।' स्पष्ट है कि एक सत्यग्राही व्यक्ति ऐसा नहीं

कहेगा। इसके पीछे धर्मवीर जी का हठ एवं अहंकार ही बोल रहा था तथा वही अब मानक संस्करण के विरुद्ध विषवमन कर रहा है। मेरी इन तीनों मित्रों से १९६० से मैत्री तथा सौहार्द है । मेरे समान अन्य भी बहुत से मित्रगण हैं, जिनका अपमान तथा उपेक्षा डॉ.धर्मवीर जी अपने अहंकारवश करने लगे हैं। अच्छा कार्य करने से भी व्यक्ति में अहंकार पनप जाता है। धर्मवीर जी ने परोपकारिणी सभा के स्वरूप एवं कार्यों में जो वृद्धि की है वही इसमें कारण है। यही कारण है कि आजकल यदि कोई व्यक्ति उनके विचारों से असहमत है तो धर्मवीर जी उसका अपमान करने, उसे उपेक्षित करने से नहीं चूकते । पीठ पीछे ही नहीं, हंसी मजाक में सामने भी उसकी निन्दा कर देते हैं। एक अच्छे कार्यकर्ता तथा संयत् विद्वान् को यह शोभा तो नहीं देता तथापि वे ऐसा कर रहे हैं। इसी कारण उनके कई मित्र अब उनसे दूर चले गए हैं। उक्त बातों में एक-एक अक्षर सत्य है। यह मैंने संक्षेप में लिखा। अब पंडित विरजानन्द जी के घोषित पाखण्ड का पर्दाफास किया जाता है। मैं स्पष्ट कर दूँ कि समिति अभी भी विद्यमान है। वह न तो कमजोर है न ही सशंय या भयग्रस्त । समिति इन मान्य पंडितों के आक्षेपों का उत्तर देती रहेगी, किन्तु समस्या यह है कि धर्मवीर जी के हाथ में तो परोपकारी पत्र है। उससे वे कुछ भी लिख या लिखा सकते हैं। समिति के उत्तर कहाँ प्रकाशित होंगे?यह समस्या है। मुझे नहीं लगता कि सम्पादक जी परोपकारी में हमारे लेखों को भी प्रकाशित करेंगे, क्योंकि उन्होंने पहले ही मेरे तथा अपने अन्य मित्रों के लेखों को छापना बन्द कर दिया है। ये वे ही धर्मवीर जी हैं, जो आदित्य मुनि जी के विरुद्ध मुझसे लेख लिखाया करते थे। मैंने जमकर लिखा तथा आदित्य मुनि जी को 'आर्य प्रहरी' से हाथ धोना ही पड़ा। अब धर्मवीर जी हमारे लेखों को नहीं छाप रहे हैं, तथापि मैं इस उत्तर को उनके पास ही भेजूंगा तथा प्रार्थना करूंगा कि वे इसे अविकल छापकर निष्पक्ष सम्पादक के स्वरूप को प्रकट करें। परोपकारिणी सभा तथा परोपकारी उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है। इस पर सभी आर्यों का अधिकार है। यद्यपि उन्होंने परोपकारिणी तथा परोपकारी के स्वरूप को भी ऐसा कर दिया है कि मानो वे अकेले ही इनके अधिपति हों। इस संबंध में कलकत्ता के एक प्रधान जी का लेख भी पठनीय है। मैं विस्तार में इन बातों में नहीं जाता । पंडित विरजानन्द के आक्षेपों का उत्तर देता हूँ। उत्तर आगे भी मिलता रहेगा, किन्तु प्रार्थना यही है कि सम्पादक जी परोपकारी में उसे भी साथ साथ छापते रहें।

अपनी बौखलाहट में पंडित विरजानन्द जी इतने डूब गए कि उन्होंने मानक संस्करण के प्रकाशक तथा समिति को एक ही समझ लिया जैसाकि उनके लेख से स्पष्ट है। मैं स्पष्ट कर दूं कि मानक संस्करण समिति का सत्यार्थ प्रकाश न्यास तथा उसके कार्यकारी अध्यक्ष अशोक जी से कुछ लेना देना नहीं है । न ही अशोक जी समिति में रहे हैं तथा न ही उन्होंने समिति को किसी कार्य के लिए बाध्य किया है। उन्होंने इस संस्करण का प्रकाशन करके आर्य जनता का उपकार किया है। अतः हम उनके आभारी

हैं। अशोक जी इस समिति के निर्माता भी नहीं है। उदयपुर में आर्यों तथा विद्वानों की सभा में इसका गठन किया गया था। यह एक स्वतंत्र इकाई है तथा इसका निर्देशक या संचालक इसके सदस्यों के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है, तथापि पंडित विरजानन्द जी ने दोनों को एक समझने का मतिभ्रम पाल लिया। समिति के गठन से पूर्व तथा बाद में भी अब तक समिति ने न तो परोपकारिणी या पंडित विरजानन्द जी को कोसा है, न ही उनके विषय में कोई अभद्र लेख वा टिप्पणी की है। यदि परोपकारिणी द्वारा प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश,विशेषकर ३७-३८ वें संस्करणों के विषय में 'कब तक मौन रहेंगे' इत्यादि या पंडित रतिराम जी आदि की ओर से कुछ लिखा गया तो समिति का उससे कोई लेना देना नहीं,क्योंकि तब तक तो समिति का गठन ही नहीं हुआ था । पता नहीं विरजानन्द समिति तथा प्रकाशक को एक समझ कर असत्य लिखने क्यों बैठ गए? उनसे सत्यवादिता की अपेक्षा है। इसी प्रकार परोपकारी के पृष्ठ ६४८-६४६ में विरजानन्द जी ने जो २३ घोषणाएं/प्रतिज्ञाएं उद्धृत की हैं, वे भी समिति की नहीं हैं। समिति की शैली,लक्ष्य तथा इसके गठन के समय इसकी सीमा संक्षिप्त एवं सुस्पष्ट हैं कि सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संस्करण को प्रामाणिक मान कर ही उसमें उपलब्ध असंगत अथवा अस्पष्ट स्थलों को सत्यार्थ प्रकाश की द्वितीय प्रति (प्रैस प्रति) के आधार स्पष्ट किया जाए,यदि पुनरपि कहीं अस्पष्टता रह जाए तो उसे ऋषि के अन्य ग्रन्थों से स्पष्ट किया जाए। समिति ने ऐसा ही किया है। उसने रफ कॉपी, जिसे विरजानन्द जी मूल प्रति कह रहे हैं,का आश्रय मात्र लिया है, क्योंकि वह भी महर्षि का ही ग्रन्थ है,किन्तु उसे सर्वांश में आधार नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि इसके बाद द्वितीय प्रति (प्रैस कॉपी) ही प्रामाणिक मानी जाती है। सभी विद्वान् एवं आर्य जनता ऐसा ही मानते रहे हैं जबकि विरजानन्द जी तथा धर्मवीर जी ने उसी रफ कॉपी को आधार बनाकर अपने संस्करणों में मनमाने परिवर्तन कर दिये। इसका एक ही उदाहरण पर्याप्त है कि 'गांडू' जैसा अभद्र शब्द भी उन्होंने रफ/मूल प्रति के आधार पर वर्तमान संस्करणों में घुसा दिया। क्या महर्षि से ऐसे असभ्य शब्द की कल्पना की जा सकती है? स्पष्टतः यह शब्द किसी अन्य ने ही वहाँ डाल दिया होगा। इस प्रकार इन विद्वानों ने रफ कॉपी को पूर्ण आधार बनाकर अक्षम्य अपराध किया है, जिसके विरुद्ध आर्यजनों में आक्रोश उपजा था, किन्तु समिति का उससे कुछ लेना देना नहीं ।

समिति ने यह कहीं नहीं कहा कि १८८४ के संस्करण में एकाधिक अक्षर भी न्यूनाधिक नहीं किया गया। यदि ऐसा है तो मानक संस्करण का अर्थ ही क्या रह जाता है? समिति ने जो भी संशोधन किये हैं, अपनी उक्त, संक्षिप्त प्रतिज्ञा को सामने रखकर ही किये हैं, तथापि कहीं अस्पष्टता रही तो स्वविवेक से कार्य लेकर संगति लगायी है, जो अनिवार्य थी। विरजानन्द जी समिति पर चोरी का आरोप लगाकर जो लोगों की आँखों में धूल झोंक रहे हैं, वह सर्वथा निराधार है, क्योंकि हमने भूमिका में ही स्पष्ट कर दिया है कि पंडित युधिष्ठिर जी आदि के तथा परोपकारिणी के संस्करण भी हमारे

सामने थे। उन विद्वानों ने जो संशोधन किये, उनको ग्रहण करके समिति ने गुणग्राहिता का ही परिचय दिया है। यही नहीं उनकी टिप्पणियों को हमने उनके ही नाम से उद्धृत भी किया है। पंडित युधिष्ठिर जी जैसे मान्य पंडित का उपहास तथा उपेक्षा हमने इन संशोधकों की तरह नहीं की है।

विरजानन्द जी लिखते हैं कि सम्पादकीय (पृष्ठ ग) में परोपकारिणी सभा पर यह अप्रत्यक्ष आरोप लगाया गया है कि उसके ग्रन्थ में मनमाने और स्वैच्छिक संशोधन किये गये हैं। विरजानन्द जी,पता नहीं ऐसा असत्य किसलिए बोल रहे हैं। हमने कहीं भी परोपकारिणी का नाम नहीं लिया। स्वामी जगदीश्वरानन्द जी तथा अन्य सभी संशोधकों के लिए उक्त बात कही गई है, तथापि 'चोर की दाढ़ी में तिनका'के अनुसार विरजानन्द जी स्वयं यह सिद्ध कर रहे हैं कि उन्होंने ही परोपकारिणी के संस्करणों में मनमाने परिवर्तन किए हैं। परोपकारिणी हमारी मान्य संस्था है। उसके विरुद्ध हमने न कुछ लिखा, न लिखेंगे, किन्तु उसके संचालक, वर्तमान कर्ताधर्ता तथा सम्पादक, जो स्वेच्छाचार कर रहे हैं,अब हम उनके विषय में अवश्य लिखेंगे, क्योंकि इन दो पंडितों ने हमारा रास्ता खोल दिया। अब विरजानन्द जी के अन्य आक्षेप देखिए, वे कितने कपटपूर्ण तथा निराधार हैं।

१. भावोऽपिनश्यति के लिए सम्पादकीय के पृष्ठ 'ज' पर टिप्पणी बिल्कुल ठीक है, हाँ,आगे यह ठीक करने से रह गया। ऐसी प्रूफ की अशुद्धियाँ स्वाभाविक हैं।

२. पृष्ठ २५ के 'प्रीणाति पर विरजानन्द जी ने समिति के पांडित्य पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया है किन्तु यहाँ आधी बात कह उन्होंने जो छल एवं असत्य व्यवहार किया है,उसे देखिए। भूमिका में मैंने पृष्ठ 'झ' पर स्पष्ट लिखा है कि 'प्रीञ्तर्पणे कान्तौ च' धातु का रूप प्रीणाति ही बनता है,पृणाति नहीं। द्वितीय संस्करण तथा अन्य सभी विद्वानों के संस्करणों में यही रूप चला आ रहा था । हमने इसे शुद्ध किया है। परोपकारिणी के संस्करण में भी पृणाति ही है, जबकि यह सर्वथा अशुद्ध है। विरजानन्द जी की दृष्टि हमारे इस संशोधन पर क्यों नहीं गई जबकि यह भी उसी पृष्ठ २५ पर उद्धृत है। हाँ ऊपर पृपालनपूरणयोः' धातु का प्रीणाति रूप मानक संस्करण में अवश्य ही अशुद्ध छप गया। सम्भवतः दोनों स्थलों पर समान धातु होने से यह गड़बड़ी हो गई। शालीनता से भी विरजानन्द जी इस ओर हमारा ध्यान दिला सकते थे, जिसे निश्चय ही स्वीकार किया जाता।

४. पृष्ठ २३ पंक्ति १३ में समिति ने 'अग्नि' शब्द बढ़ाया है, जिसे हम अभी भी उचित तथा विरजानन्द जी निरर्थक मान रहे हैं, तो क्या विरजानन्द जी ऐसे सर्वमान्य प्रामाणिक विद्वान् हैं कि उनकी बात को ही समिति तथा अन्य विद्वान् स्वीकार करें? वह गलत भी हो सकती है। पंडित जी अपनी दृष्टि से समिति के कार्य का मूल्यांकन मत कीजिये। आप अकेले हैं,समिति में आपसे कई गुनी दक्षता वाले पंडित विद्यमान हैं। आपने कई पुस्तकों का सम्पादन किया है, मुझे भी सादर भेंट की हैं, किन्तु वे क्या सर्वांश में ठीक

हैं ? मैंने गुरुकुल गौतमनगर से छपे आप द्वारा सम्पादित 'निरुक्त' की अशुद्धियों की ओर आपका ध्यान दिलाया भी था, जिसे आपने स्वीकार भी किया था। आपकी दृष्टि सत्यार्थ प्रकाश के विषय में सदोष एवं दुराग्रहपूर्ण है, अतः समिति के कार्य का मूल्यांकन उससे नहीं किया जाता सकता। यह कैसे संभव है कि जो आप कहें वह ठीक तथा जो समिति कहे वह अशुद्ध। समिति में तो प्रौढ़ विद्वान् हैं। मैं उनके शिष्यत्व की योग्यता भी नहीं रखता, तथापि मैं अकेला ही ऐसे स्थलों पर आपसे लिखित या मौखिक परिचर्चा/शास्त्रार्थ करने का तैयार हूँ।

समिति ने पृष्ठ २०४ पंक्ति ६ में इग्लैण्ड के आगे 'के लोग' शब्द बढ़ाये हैं जो सर्वथा उचित एवं अपरिहार्य थे, अन्यथा यही अर्थ लग रहा था कि इग्लैण्ड के कुलुम्बस आदि,जबकि कुलुम्बस पुर्तगाल का था। हमने यह तो कहा ही नहीं कि इग्लैण्डवासी या कुलुम्बस अमरीका में कब गये। आप व्यर्थ में ही यहाँ अपने आपको इतिहासज्ञ सिद्ध कर रहे हैं। पंडित जी क्यों सीधी स्पष्ट बात न कहकर आक्षेप करने के लिए आप छल कपट का आश्रय ले रहे हैं।

हमने 'वाङ्.मनसी पाठ वर्तमान मनुस्मृति के आधार पर स्वीकार किया है। ऐसे अनेक आर्ष प्रयोग हैं जो पाणिनि के नियमों के विरुद्ध भी प्राचीन ग्रन्थों में हैं। लेख लम्बा होने से कुछ प्रमुख स्थलों का उत्तर ही मैंने यहाँ दिया है। शेष में तो दम ही नहीं है। पुनरपि अगले लेख में उनके विषय में लिखा जा सकता है। अब मैं आपके अन्तिम असत्य आक्षेप पर आता हूँ।

मैंने लिखा है कि समिति की प्रार्थना पर अन्य कुछ विद्वानों ने भी हमारा मार्गदर्शन किया। आप लिखते हैं कि समिति के किसी सदस्य ने आपको आमंत्रण या निमंत्रण नहीं दिया। आप श्री सीताराम जी के कहने से वहाँ गए थे, यह तो ठीक है,परन्तु आप समिति के साथ किसके कहने से बैठे थे? स्पष्ट कर दूँ कि सीताराम जी हमारे कर्त्ताधर्ता,संचालक,संरक्षक नहीं थे। उन्होंने स्वयं ही हमें वहां कार्य करने का निमन्त्रण दिया था, किन्तु हम उनके निर्देशन में तो कार्य नहीं कर रहे थे। उन्होंने हमसे बिना पूछे ही हमारे संशोधन आपके पास भेज कर अनाधिकृत चेष्टा की। जब आप पर पहले ही सम्पादन/संशोधन संबंधी आक्षेप लग चुके थे, जो ठीक भी थे तो हम आपको अपने कार्य में निर्णायक कैसे बना सकते थे? वह भी उस व्यक्ति को जिसका पांडित्य समिति के कई सदस्यों के सामने नगण्य है। मैंने ही आर्य समाज हिसार पहुँचने पर आपसे हमारे साथ बैठने की प्रार्थना की थी । इसके लिए समिति की अनुमति के बिना न तो सीताराम जी किसी को वहाँ बैठा सकते थे, न आप बैठ सकते थे। खेद है कि हमारी इस गुणग्राहिता को भी आप दोष बतला रहे हैं। सीताराम जी को आपने कहा कि 'मेरी दृष्टि में यह कार्य उचित नहीं है।' आपकी सदोष, साग्रह बुद्धि में तो हमारा कार्य सदोष ही होगा, किन्तु आपकी दृष्टि से तो समिति नहीं चल रही थी, न ही सीताराम जी हमारे नियन्त्रक थे। हमने सभी सहयोगियों का धन्यवाद किया, इस कृतज्ञता को भी आप

गलत बता रहे हैं तो धन्य हैं। आप तथा आपके प्रायोजक समझ लें कि हमारे पास भी बुद्धि, कलम तथा परोपकारिणी के संस्करणों के विषय में लिखने को बहुत कुछ है। इन आरोप प्रत्यारोपों से कुछ नहीं होगा। हमने भूमिका में लिख दिया है कि समिति के कार्य में मानव सुलभ भूलें हो सकती हैं, शुद्ध दृष्टि से ध्यान दिलाने पर आगामी संस्करणों में उन्हें ठीक कर दिया जावेगा। मेरा लेखन हल्का नहीं है न ही मैं इतना कमजोर हूँ कि जिसे आप पटखनी दे सकें। आप लिखिए, हम उत्तर देंगे। अगले लेख में सुरेन्द्र जी से भी भेंट करेंगे, किन्तु इससे सभा तथा सत्यार्थ प्रकाश की बदनामी ही होगी। अच्छा रास्ता यही है कि अभी भी मिलकर ऐसे स्थलों पर विचार कर लें जिन पर आपत्ति संभव है या प्रूफ आदि के कारण जो अशुद्धियाँ रह गई हैं। चाहे आप लोग कितना भी दुष्प्रचार करें,मानक संस्करण जनता में समादृत होगा, तथा हो रहा है। आपकी तथा धर्मवीर जी की बौखलाहट यही है कि परोपकारिणी के संस्करण रहते, यह मानक संस्करण कैसे आ गया? इसका प्रचार प्रसार न हो यह आप लोगों का उद्देश्य है। अन्यथा ऐसे लेख न लिखते। स्वामी अग्निवेश जी की वर्षगांठ पर आप तथा धर्मवीर जी मुझे मिले थे, किन्तु वहाँ एक शब्द भी इस विषय में न कह कर दम्भ एवं असत्य मिश्रित लेख लिख मारा। यह कार्य आप लोगों की किस मानसिकता का परिचायक है? अपनी भूमिका के पृष्ठ 'ट' पर वाक्यपदीय का श्लोक मैंने आप जैसे निन्दकों के लिए ही लिखा है। वाक्यपदीय आपने नहीं पढ़ी सो यह वाक्य तो पढ़ा ही होगा। 'न वेत्ति यो यस्य गुण प्रकर्षं स तस्य निन्दां सततं करोति।' आप भी यही कर रहे हैं, किन्तु इसमें भी मानक संस्करण का प्रचार होगा। अतः यही कहा जा सकता है-'उपकृतं बहु तत्र किमुच्यते।' सुजनता प्रथिता भवता परम्। अगले लेख में 'मानक संस्करण समिति' का सच उजागर किया जावेगा।

❑❑❑

सत्यासत्य के स्वयमेव निर्णयार्थ एक बार 'मानक संस्करण' स्वयं पढ़ें

'जो मनुष्य पक्षपाती होता है,वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है,इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

महर्षि दयानन्द,सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ४

विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर अनेकविध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है।

महर्षि दयानन्द,सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ४

सत्यार्थ प्रकाश के उदयपुर संस्करण का सच-1 का यथार्थ स्वरूप

लेखक- आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय

सम्प्रति आर्य जगत् में महर्षि दयानन्द लिखित सत्यार्थ प्रकाश पर विद्वानों में विद्या-प्रदर्शन से प्रसिद्धि पाने की ललक दिखाई देती है। सर्वप्रथम मान्य भ्राता श्री डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी की प्रेरणा से इनके अभिन्न सुहृद्वर डॉ. धर्मवीर तथा श्री विरजानन्द दैवकरणि के अथक प्रयास से यह संस्करण (सं. ३७) इस दावे के साथ प्रकाशित हुआ कि यह अंतिम शुद्धतम संस्करण है, लेकिन फिर भी आगे के संस्करणों में परिवर्तन होते रहे। आधाररूप में रफ प्रति स्वतः प्रमाण के रूप में अपनाते हुए भी मुद्रण प्रति तथा द्वितीय संस्करण को मुद्रण प्रति से हटकर भी स्वीकार किया गया। स्वतः प्रमाण भी हेय हो गया।

कुछ दिन बाद विद्वत् समिति ने द्वितीय संस्करण को आधार मानकर कि ऋषि द्वारा संशोधित है,कहीं कुछ परिवर्तन आवश्यक है तो समझकर किया जाए अन्यथा नहीं, यह मानक संस्करण प्रकाशित किया। जैसे ही यह संस्करण सामने आया कि मानो भूचाल आ गया हो । एकदम सब कम्पायमान हो गया। लेखनियों ने तीखी सारयुक्त तथा सारहीन,सब प्रकार की आलोचनाओं का भार अपने ऊपर ले लिया। विरजानन्द जी दैवकरणि ने भी परोपकारी में लेख लिखा। प्रिय मित्र ने इस उदयपुर संस्करण को एक पाखण्ड ही घोषित कर डाला,जबकि स्वयं वे इस अपराध के अपराधी हैं। जैसे पूर्व समय में बहुत ऋषि मुनियों के बीच प्रज्ञासागर वृहस्पति हुए, वैसे उन विद्वानों के मध्य महाअंधकार निवारणार्थ डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी अत्यन्त शोधकर्त्ता,सर्वशास्त्रवेत्ता उच्च कक्षा के विद्वान् हुए हैं,उन्होंने एतद् संबंध में लेखनी उठाकर आलोचना कर,एक महनीय कार्य किया है। आश्चर्य यह है कि डॉ. सुरेन्द्र कुमार और इनके मित्रों द्वारा समवेत भाव से प्रकाशित संस्करण की किसी भी प्रकार की आलोचना नहीं हुई, (जबकि मानक संस्करण पर लिखी गई आलोचनान्तर्गत उद्धृत पाठों का ईक्षण कर यह सुनिश्चित होता है कि वह इससे भी अधिक आलोच्य संस्करण है।) क्योंकि मान्य डॉ. साहब उनके प्रबलतम पक्षधर बन प्राड्विवाक के रूप में अपने कवच में संरक्षित किए हुए थे।

आलोचनान्तर्गत प्रयुक्त भाषा,विद्या का दम्भ एवं प्रगल्भता से अन्य सब विद्वानों को नीचा दिखाने की अपूर्व क्षमता प्रकट करती है,जो अटकलपच्चू कूप के समान साधारण आर्यजनों तथा अपने पक्षपोषकों, जो इनको भूयोविद्यः प्रशस्यः मानते हैं, कीर्ति पाने की ललक भरी मात्र चतुराई है। ईर्ष्यक, पक्षपाती मनुष्यों की तरह अपनी थोड़ी सी सामग्री हल्दी की गांठ पर, पूर्वापर बिना विचारे अपनी ही मान्यता की गंध में कस्तूरिये हिरण के समान भूलते,भटकते नजर आते हैं।

अवान्तर गाथाओं के प्रसंग में प्रवेश अरुचिकर वा अनुपादेय है- अतः उसे हेय समझकर चर्चा का विषय नहीं बनाया है। विद्वानों के लिए जिस व्यंग्य भाषा का प्रयोग हुआ है, वह अवश्य मीमांस्य है।

डॉ. साहबः- " मैंने अनुभव किया है कि मंचों से धर्म, धैर्य, क्षमा, उदारता आदि का उपदेश देने वाले आर्यसमाज के कुछ विद्वान्, आचार्य, संन्यासी, योगी साहित्यिक समालोचना को पढ़कर तिलमिला उठते हैं और उसे व्यक्तिगत विद्वेष का विषय बना लेते हैं, जबकि साहित्य या सिद्धान्त के क्षेत्र में समालोचना-समीक्षा एक सामान्य प्रक्रिया है जिसके माध्यम से साहित्य और सिद्धान्त में परिष्कार आता है तथा उन्हें आगे बढ़ाया जाता है। मुझे कई बार अनुभव हुआ कि उनसे उदार और धैर्यशाली तो संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी आदि विषयों के वे सांसारिक समालोचक हैं जो एक-दूसरे की खूब समालोचना करते हैं किन्तु परस्पर के व्यवहार में अपने माथे पर शिकन भी नहीं आने देते।

मीमांसाः- इस उद्धृत प्रकरण में आर्थी व्यंजना जो शब्द प्रमाणवेद्य है, उससे विद्वान्, आचार्य, संन्यासी, योगी आदि प्रयुक्त शब्द अन्य अर्थ के व्यंजक बन गए हैं । जिस वाच्य, लक्ष्य तथा व्यंग्य रूप अर्थ के द्वारा कोई और अर्थ व्यक्त होता है, वह वाच्यादि अर्थ शब्दों द्वारा ही ज्ञेय है, अन्य प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा नहीं। जो वस्तु प्रत्यक्षादि प्रमाणवेद्य होती है तो वह व्यंजक नहीं होती। यह स्तुत्य नहीं। रही बात आलोचना या समीक्षा की सो अनाप्त विद्वानों द्वारा रचित ग्रन्थों में सुगुम्फित सिद्धान्तों की होती है जिसमें आपको साहित्य वा सिद्धान्तों की परिष्कृति दृष्टिगोचर होती है। परन्तु परम आप्त परमेश्वर तथा आप्त ऋषि-मुनियों के ग्रन्थों की समालोचनात्मिका वा समीक्षात्मिका बुद्धि अल्पज्ञ पुरुषों की सामर्थ्य से बाहर है,क्रान्तप्रज्ञ होने से। **सर्वज्ञः क्रान्तप्रज्ञः सर्वेषां जीवानां बुद्धेः क्रमिता तदग्रे न कस्यापि बुद्धिः क्रमते सर्वेषां बुद्धेः प्रभुत्वात्** अर्थात् जो सबका जानने वाला और सबकी बुद्धि का अध्यक्ष है, जिसके सामने सबकी बुद्धि अल्प हो जाती है, क्योंकि वह सबकी बुद्धियों का प्रभु है। रही बात आप्तों की, सो उनकी बुद्धियों में परमेश्वर का ही ज्ञान प्रकाश होता है। उस प्रकाश से प्रकाशित हेमा बुद्धि से सब प्रकार के निश्चय करते हैं। यही कारण आप्त,आप्त के कथन का विरोध नहीं करते। कोई साधारण अनाप्त, अल्पज्ञ मनुष्य ऋषि-कथन वा सिद्धान्त की आलोचना से परिष्कृति की हिम्मत जुटाता है, तो वह क्रोध का भाजन तो बनेगा ही। ऋषि-सिद्धान्तों के परिमार्जन वा परिष्कार करने की कामना छोड़, ऋषियों को अन्य ऋषियों की व्याख्याओं से समझना अपना कल्याण करना ही है। मैं पूछता हूँ कि ऋषि ग्रन्थों की समालोचनार्थ, समालोचक की क्या योग्यता होनी चाहिए ?

इस उद्धरण से अग्रिम पंक्तियों-

इस लेख में डॉ. सा. से तात्पर्य डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी से है। और जो कथन उसके समक्ष छपा है वह परोपकारी में उनके लेख से ज्यों का त्यों उद्धृत है।

डॉ. साहब- अस्तु, 'उदयपुर' संस्करण की विद्वत्-समिति और अतिथि-समिति में कोई मेरा गुरु है, तो कुछ गुरुवत् हैं, अन्य सब मित्र हैं। वयोवृद्ध विद्वान् पं. विशुद्धानन्द जी महाराज अध्यक्ष के नाते 'भीष्म पितामह-स्वरूप' हैं जिनकी छत्रछाया में संस्करण का यह 'कांड' लिखा गया है। मेरी सारी समालोचनाएँ, सारे प्रश्न, अध्यक्ष के नाते उन्हीं को सम्बोधित हैं। इन समालोचनाओं के लिए मैं सभी विद्वानों से पहले ही क्षमा माँग लेता हूँ, क्योंकि सब अपने हैं। मैं यह भी नहीं मानता कि किसी 'आस्तीन के साँप' ने 'ऋषिहत्या' की 'दुष्चेष्टा-कुचेष्टा' की है, अथवा सत्यार्थप्रकाश पर 'हठधर्मितापूर्वक' 'अनैतिक आक्रमण' करके 'ऋषिद्रोह' किया है और उस आक्रमण में 'ऋषि-प्रवास के निवास' को किसी 'घर के चिराग' से आग लग गई है।' भावना सबकी हित की है, किन्तु बुद्ध के शिष्यों के समान एक ही विषय में बुद्धिभेद होकर हित-अहित की सोच में अन्तर आ गया है।

मीमांसाः- मित्रवर कोई आपका गुरु है, कोई गुरुवत् या मित्र है। फिर भी इनके लिए जिस निन्दित अर्थ प्रधान व्यंग्य का प्रयोग किया है वह शास्त्रानुसार उपयुक्त नहीं है। शास्त्र प्रतिपादित सिद्धान्तानुसार इस प्रकार के आचार्यों के लिए न तो निन्दा करे,न निन्दा सुने। प्रतिवाद न कर सकता हो तो स्थान छोड़ देवे। परन्तु आप तो स्वयं इस निन्दा में रस लेकर प्रवृत्त हो रहे हैं। धन्य हैं। पूज्य विशुद्धानन्द जी पर, जो सरल निश्छल,निष्कपट स्वभाव प्रधान विद्या वयोवृद्ध हैं, अपनी औकात भूलकर,जो,भीष्म पितामह स्वरूपता, का आरोप गढ़ दिया है कि जिनकी छत्रछाया में यह कांड लिखा गया, औचित्यपूर्ण कृत्य नहीं है।

यहाँ अविवक्षित वाच्य ध्वनि 'भीष्म पितामह- स्वरूप' शब्द से प्रकट हो रही है। आपको विदित है कि यह ध्वनि अर्थान्तर संक्रमित तथा अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य प्रधान होती है। यह अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से भीष्म पितामह स्वरूप शब्द को अपने वाच्यार्थ का सर्वथा त्याग करके अन्यार्थ लक्षक वा बोधक बना दिया है। आप जैसे 'प्रकाण्ड' के सामने उनका 'काण्ड' ही होगा। इसमें आश्चर्य ही क्या ? उस समय आपका प्रकाण्ड पांडित्य कहाँ गया था कि जब आपके निर्देशन वा सुझावों द्वारा परोपकारी संस्करण काण्ड लिखा गया था। वृद्धावस्थापन्न,विपन्न,अशक्त, दंतविहीन सिंह के समक्ष श्रृगालों का सिंह बनना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। 'वेदार्थ पारिजात ग्रन्थ से व्याप्त रात्रि के अंधेरे के पर्दे को चीरकर 'वेदार्थ कल्पद्रुम सत्य-भास्कर उदित हुआ था। क्या वह याद नहीं है? मित्रवर ! मैं आपकी तरह उस भाषा का प्रयोग नहीं कर रहा हूँ जो आपने प्रयोग की है। बड़ी प्रिय भाषा में समझा रहा हूँ कि आचार्य जी के लिए सुगत बुद्ध मानकर शेष विद्वानों को उनके अंतर्गत बुद्धि-भेद से शाखा वाला माना है। क्या यह समीचीन है ? क्या विशुद्धानन्द जी बुद्धवत् नास्तिक मत प्रवर्तक की भाँति वहाँ पर अपना कार्य कर रहे थे। लिखने से पहले विचार कर लेते तो अच्छा था। मित्र डॉ. महोदय लिखते- लिखते मनगर्भित अव्यक्त को इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं -

डॉ. साहब –'न्यास' ने ईमानदारी से सत्यार्थप्रकाश के शोध पर बल देने की अपेक्षा विद्वानों की 'लॉबिंग' पर अधिक बल दिया है। 'सत्यार्थप्रकाश' किसी राजनीतिक पार्टी का 'घोषणापत्र' नहीं है जिसका वोटिंग के बहुमत को प्रदर्शित करके निर्णय किया जा सके। मेरा मानना है कि इसके पाठों का निर्णय और सम्पादन- युक्ति-प्रमाणाधारित मानदण्डों, सिद्धान्तों और उसके दूरगामी हित को दृष्टि में रखकर किया जाना चाहिए, शेष सब बातों को गौण मानना चाहिए।

मीमांसाः- यद्यपि इस लेख का लेखक मैं,स्वयं विद्वत् समिति में नहीं था,परन्तु स्मरण है कि सत्यार्थ प्रकाश पर विचार विमर्श हेतु एक बैठक उदयपुर में आमंत्रित की गई थी, जिसमें आप भी गए थे। आपने स्वीकार भी किया कि मैं डॉ.धर्मवीर जी की ओर से परोपकारी पक्ष का पक्षी बनकर गया था। इस विद्वत् समिति में विद्वानों को आमंत्रित तो किया था परन्तु आपकी जुण्डली ने तो किसी को हवा तक नहीं लगने दी और **सब कुछ चुपचाप भीतर ही भीतर तैयार हो गया।** न्यास द्वारा विद्वानों की लाबिंग की बजाय लाबिंग तो आप सबकी हुई। **लाबिंग का आरोप तो 'उल्टा चोर कोतवाल को दण्डे' के समान ही है।** आपके मित्रों व आपने मिलकर किन मानदण्डों सिद्धान्तों पर आधारित परोपकारी संस्करण निकाला ? क्या आपने उस समय यह सलाह उनके मस्तिष्क में प्रदान की थी ?

चलिए मित्रवर ! आपका आदेश मानकर आपकी सम्पादन युक्ति प्रमाणाधारित मानदण्डों, सिद्धान्तों और उन दूरगामी हितों की दृष्टि स्वीकार कर लेते हैं तो क्या सत्यार्थ प्रकाश को इस दुर्गति से बचा पाते जिसकी व्यथा में आप व्यथित हैं। महर्षि के मन्तव्यों की रक्षा कैसे हो पाती? जबकि आपने स्वयं अपने द्वारा गठित उपर्युक्त सिद्धान्तों, मानदण्डों को मनुस्मृति के भाष्य में अपनाया है। फिर भी उल्टा ऋषि को उन मानदण्डों व मान्य सिद्धान्तों से बहिर्भूत कर अपमानित किया है। भला ! आपके वैदुष्य वा विद्या के समक्ष ऋषि की औकात क्या है?

डॉ. साहब - अध्यक्ष महोदय! वयोवृद्धता की अवस्था में आपने इस दुर्भार को अपने कन्धों पर अति-उदारतापूर्वक ले लिया है, पता नहीं क्यों? इसका पूरा सच जिस दिन सामने आयेगा, हो सकता है आपको फिर 'दूयमान' होना पड़े। इस लेख के माध्यम से अभी तो 'छोटा-सा सच' आपकी सेवा में प्रस्तुत है।

मीमांसाः- मित्रवर ! घुड़की मत दिखाओ। उस दिन की प्रतीक्षा क्यों करते हो,जिस दिन उसका पूरा सच सामने लाया जावेगा जिस विद्या से आपने यह लघु सत्य प्रकट किया है, उस विद्या से वृहद् सत्य का स्वरूप प्रछन्न नहीं रहा है। हाँ ! इतना अवश्य है कि उस दिन रहा सहा सत्यार्थ प्रकाश का स्वरूप नहीं रहेगा। उस दिन मात्र आप व आपके मित्रवर ही विजय वैजयन्ती पताका फहराते नजर आयेंगे। आपको चिताता हूँ कि आप यह न समझें कि आपके सिवाय अब और विद्वान् नहीं रहे। यह व्याघ्र की खाल किसी दिन उधड़कर सब कलई खुल जावेगी। जिसको आप लघु अथवा अधूरा सत्य कह रहे हैं

पूर्ण प्रयत्न के साथ लिखने का प्रयास किया है ,उससे आप ही दूयमान हो रहे हैं। क्या करें हमारी मजबूरी है कि इतनी विद्या नहीं जिसका आपकी तरह दम्भ कर सकें और किसी को घुड़की देकर घुड़क सकें वा भयाक्रान्त कर सकें। परन्तु थोड़ी बहुत विद्या व बुद्धि के अनुसार इतना तो कह सकते हैं कि आप अब तक अपने किए शोधों पर सन्मुख होकर शास्त्रार्थ कर लें। इससे विद्या का पता भी लग जावेगा और जो कलम घिसाई वा लेख से कई सौ वर्षों में कोई निर्णय नहीं हो पाता,आमने सामने बैठकर कुछ ही दिनों में सत्य और झूठ का सिद्धान्त स्थिर हो सकता है। आप आमंत्रित हैं।

इस विवेचना वा मीमांसा के पश्चात् निष्पक्ष रूप से उन स्थलों वा पाठों पर मीमांसा करेंगे।

क. डॉ. साहब – पृष्ठ २६३, (क) "जो इन बातों को अर्थात् जीव-ईश्वर की एकता, जगत् मिथ्या आदि व्यवहार, सच्चा नहीं मानते थे, तो उनकी बात सच्ची नहीं हो सकती।"

मीमांसा- अति सामान्य मुद्रण भूल या अनवधानता है। इस वाक्य में 'सच्चा नहीं के स्थान पर 'सच्चा ही' सम्यक् है।

ख. डॉ. साहब- (ख) अनेक ऐसे वेदमंत्र हैं जिनमें अवशिष्ट त्रुटियों को आपने संशोधित किया है। कुछ ऐसे वेदमन्त्रांश हैं जिनको आपने असंशोधित रखकर चौंका देने वाली टिप्पणियाँ दी हैं, जैसे- पृ. २७६ 'त्रयस्त्रिंशत् त्रिंशता' ('त्रयस्त्रिंशतास्तुवत' यजु. १४. ३१), पृ.३१३ पर है- ' आचार्य उपनयनमानो ब्रह्मचारिणमिच्छते' ('आचार्य उपनयनमानो' अथर्व. ११.५.३; 'ब्रह्मचारिणमिच्छते अथर्व. ११.५.१७) 'अतिथिर्गृहानुपगच्छेत्' (अतिथिर्गृहानागच्छेत्' अथर्व. १५.१३.११) आदि। आपने टिप्पणी में तुलनात्मक वेदमंत्रो के पते दिये हैं। इसका निहितार्थ यह हुआ कि वेदमंत्रों में भी पाठान्तर होते हैं और वे 'दश विद्वानो' के सिद्धान्तानुसार स्वीकार्य हैं तथा दोनों-तीनों पाठान्तर युक्त वेदमंत्रों की तुलना भी स्वीकार की जा सकती है। अब, महर्षि दयानन्द का 'नित्य शब्दाक्षरार्थसम्बन्ध' और 'नित्य अक्षरानुपूर्वी' का सिद्धान्त, बेचारा कहाँ जाकर मुँह छिपायेगा?

मीमांसा – 'त्रयस्त्रिंशतूत्रिंशता' के स्थान पर 'त्रयस्त्रिंशतास्तुवत' यजु. १४.३१ का पाठ है। पृष्ठ ३१३ पर आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिण मिच्छते' इस पाठ में दो मंत्रों के दो भाग मिल गए हैं। वे मंत्र इस प्रकार हैं-

'आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणंकृणुते गर्भमन्तः' अथर्व. का. ११/अनु.३/व. ५/मंत्र ३ और **'आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते'** अथर्व. काण्ड ११ /अनु ३/ व. ५ /मंत्र १७। इन दो मंत्रों के उद्धरणों में मध्य का 'ब्रह्ममचारिण कृणुते। आचार्यो ब्रह्मचर्येण भाग अनवधानतावश छूट गया है और **आचार्य उपनयमानो** भाग और **ब्रह्मचारिणमिच्छते** का यह भाग मिल गए हैं तथा 'अतिथिर्गृहानागच्छेत्' अथर्व. १५/१३/११ का 'अतिथिर्गृहानुपगच्छेत्' छप गया है। तुलनात्मक वेदमंत्रों का आरोप आपके मित्र श्री

देवकरणि पर भी आता है, परन्तु आपने उनके नाम की चर्चा नहीं की। **आलोचना तो निष्पक्ष होनी चाहिए।**

आपने लिखा है कि 'वेद मंत्रों में भी पाठान्तर होते हैं ? तो मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या वेदमंत्रों में पाठान्तर नहीं होते ? यह प्रकरण पाठान्तरों का नहीं है। यह अनवधानतावश वेद मंत्रों के दो भाग मिल गए हैं। अब रही बात इन विद्वानों की कि ये विद्वान् नित्य शब्दाक्षरार्थसंबंध' और नित्यअक्षरानुपूर्वी के सिद्धान्त को नहीं मानते। एक तरफ आप कहते हैं कि इनमें कोई गुरु है या गुरुवत्, तो जब आपको यह सिद्धान्त विदित है तो आपके गुरु या गुरुवत् आचार्यों को सिद्धान्त विदित नहीं होगा ?

मित्रवर! प्रश्न यह नहीं कि इनको आता है या नहीं, यह तो आप भी जानते हैं, पर प्रश्न तो अपनी विद्या व पांडित्य दिखाकर पाठकों के समक्ष आचार्य विशुद्धानन्द मिश्र का मजाक उड़ाने का है। तो जान लीजिए कि एतत् संबंध में समस्त आर्य जगत् ही नहीं आर्य समाज से इतर संस्कृत जगत् भली प्रकार जानता है कि वह किस कक्षा के विद्वान् हैं। मैं आपकी विद्या व बुद्धि का स्तर व पकड़ बहुत दिनों से जानता हूँ। नित्यशब्दाक्षर संबंध वेदों में क्यों व कैसे होता है? यह सिद्ध करना आपके बूते की बात नहीं है। तभी आपसे पूछ लेंगे कि 'नित्यशब्दाक्षर संबंध' और ' नित्यअक्षरानुपूर्वी' का सिद्धान्त बेचारा मुँह कहाँ छिपायेगा ? **विद्याभिमान में डूबना मित्र, इतना अच्छा नहीं। शालीनता भी कोई चीज होती है।**

ग. डॉ.साहब- .पृ.१३१ 'इसी ध्यान योग से जो अयोगी,अविद्वानों के दुःख से जानने योग्य,छोटे-बड़े पदार्थों में परमात्मा........को देखे।' यह कौन-सा नया 'योगदर्शन' लिखा गया है जिसमें अविद्वानों के दुःख से परमात्मा का ज्ञान होता है ?

मीमांसा- सम्माननीय विद्वद्वर ! यह वह योगदर्शन है जिसको आपने किसी परम्परा में नहीं पढ़ा है और न समझने की सामर्थ्य है। आपने मात्र संस्कार विधि का अर्थ जो मनुस्मृति में दर्शाया है,पढ़कर,बिना विचारे इस विचित्र **अर्थ भूषण को दूषण** में बदल डाला । श्लोक इस प्रकार है

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः। ध्यानयोगेन संपश्येद् गतिमस्यान्तरात्मनः।।

अन्वयः- ध्यानयोगेन अकृतात्मभिः दुर्-ज्ञेयाम् (गतिं संपश्येत्),उच्चावचेषु भूतेषु(गतिं संपश्येत्) अस्य अन्तरात्मनः (गतिं संपश्येत्)।

अन्वयार्थः- इसी (ध्यान योगेन) ध्यान योग से (अकृतात्मभिः) अयोगी,अविद्वानों के (दुर्+ज्ञेयाम्) दुःख से जानने योग्य (गति) बहुत प्रकार की पुण्य-पाप की गति अर्थात् जिस सत्वादि गुण से जिस-जिस गति को जीव प्राप्त होता है, उस गति को (संपश्येत्) देखे। यहां ज्ञेयः नहीं है,जिसका अर्थ **परमात्मा जानने योग्य है,** यह हो जावेगा। ज्ञेयाम्-गति के लिए प्रयोग हुआ है। (उच्चावचेषु भूतेषु) छोटे बड़े पदार्थों में अर्थात् सूक्ष्म स्थूल यानि अलिंग प्रकृति से पृथ्वी, पहाड़, पर्यन्त पदार्थों में परमात्मा की (गतिं) व्याप्ति को (संपश्येत्) देखे। क्योंकि अलिंग अव्यक्त प्रकृति है। इस अव्यक्त प्रकृति से सूक्ष्म

कुछ भी नहीं है, परन्तु पुरुष परमात्मा इससे सूक्ष्म है। किन्तु जैसे लिंग अर्थात् महत्तत्व से अलिंग = अव्यक्त प्रकृति की सूक्ष्मता है, वैसी सूक्ष्मता(व्यक्त,अव्यक्त की तुलना में) पुरुष की नहीं है, क्योंकि पुरुष लिंग= महत्तत्व का अन्वयि कारण = उपादान कारण नहीं है,निमित्त कारण तो है। इसलिए प्रधान = प्रकृति में निरतिशय = अतिशयता रहित सूक्ष्मता =व्याप्ति है। (अस्य) इस (अन्तरात्मनः) आत्मा के आत्मा परमात्मा की अपने आत्मा में गति देखे। यह आवश्यक नहीं,सब स्थानों में एक सी भाषा में, एक जैसा अभिप्राय हो। कहीं साधारण अल्पाभिप्राय तथा कहीं विशेष गूढ़ाभिप्राययुक्त अर्थ होता है। यही ऋषित्व है। विरोध न हो । उसे समझने वा संगत करने की आवश्यकता है। अपनी विद्या व बुद्धि के दंभ से ऋषि-अभिप्राय से व्यक्ति बहुत दूर चला जाता है। पुनः आपको ज्ञात हो कि यही पाठ रफ हस्तलेख, प्रेस हस्तलेख,परोपकारी ३९ वां संस्करण,द्वितीय संस्करण,आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट संस्करण, वेदानन्द जी संस्करण,भगवद्दत्त संस्करणों में सभी में विद्यमान है।

डॉ. साहब- पृष्ठ २३४''सर्वव्यापक परमात्मा की सत्ता से जैसा कि अग्नि से लोहा, वैसे चेतन हो रहे हैं।' जी! 'अग्नि से लोहा चेतन हो जाता है' यह किस दार्शनिक या वैज्ञानिक की खोज है? ताकि इस दृष्टान्त की दार्ष्टान्त से संगति लगाई जा सके।

मीमांसा - जब व्यक्ति आग्रह छोड़कर विद्या की आँख से देखता है, तब उसको सत्यासत्य का ज्ञान यथावत् होता है और जब इस प्रकार की ठीक ठीक विद्या ही नहीं तो उसको सत्यासत्य का विवेक कभी नहीं हो सकता। मद में चूर डॉ. महोदय ने यह भी नहीं देखा कि यह प्रश्न है या समाधान। अनुसंधानकर्ता की प्रसिद्धि की चाह में, इन विद्वानों को मूर्ख सिद्ध करने की ललक में लिखना मात्र उद्देश्य बना बैठे हैं।

देखिए- जीव ब्रह्म के प्रकरणान्तर्गत उपाधिभेद से 'ब्रह्म के ईश्वर और जीव नाम नहीं' का वर्णन करते हुए 'ब्रह्म के कारण अन्तःकरणों में चैतन्य नहीं' विषयान्तर्गत यह प्रश्न उठाया है। देखें।

प्रश्नः-' जैसे समुद्र के बीच में मच्छी, कीड़े और आकाश के बीच में पक्षी आदि घूमते हैं, वैसे चिदाकाश ब्रह्म में सब अन्तःकरण घूमते हैं। वे स्वयं तो जड़ हैं परन्तु सर्वव्यापक परमात्मा की सत्ता से **जैसाकि अग्नि से लोहा वैसे चेतन हो रहे हैं।' मित्रवर! यह महर्षि दयानन्द सरस्वती जैसे दार्शनिक या वैज्ञानिक की खोज है जो अज्ञानवश आपकी समझ में समा नहीं सकी।** अच्छा आप तो अप्रतिम, अद्भुत, विद्यासम्पन्न विद्वान् हैं। दृष्टान्त की परिभाषा बताइये - क्या आप समर्थ हैं। यदि समर्थ होते तो यह इतनी हल्की अल्प अभिप्राययुक्त बात समझ में नहीं आती ?

चलो मैं ही समझाने की धृष्टता करता हूँ:-

लौकिकपरीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्तः। न्याय १।१।२५।

यस्मिन्नर्थे-यस्मिन् पदार्थे लौकिकानाम्= शास्त्रीयज्ञानरहितानां,परीक्षकाणां=शास्त्रीयज्ञानवतां च बुद्धिसाम्यं- साध्यसाधनयोः समानाधिकरण्यविषयक बुद्धिः साम्यं भवति स दृष्टान्तः ।

अर्थात् जिस पदार्थ में शास्त्रीय ज्ञान रहित और शास्त्रीय ज्ञान वालों का बुद्धिसाम्य होता है, वह दृष्टान्त कहाता है। इस प्रश्न में साधारण सी बात है कि जैसे अग्नि से लोहा अर्थात् अग्नि से लोहा उष्ण- व्याप्ति वाला होता है, वैसे ब्रह्म व्याप्ति के कारण अन्तःकरण चेतन हो रहे हैं। इस न्याय को न समझकर आप अन्याय कर बैठे। आप जैसे वैज्ञानिक क्या लिखते, यह पता नहीं । फिर यह रफ हस्तलेख, मुद्रण प्रति, द्वितीय संस्करणादि सभी में है। और खास बात यह है कि आप द्वारा प्रेरित व संशोधित संस्करण परोपकारिणी संस्करण ३६ वें में भी है।

ड. डॉ. साहब- पृष्ठ ४०३, आर्यजन! सत्यभाषण के लिए भी एक निर्धारित समय होता है। चौंकिए मत,हमारे 'दश विद्वानों' ने इस सिद्धान्त को स्वीकार और प्रस्तुत करके अपनी मोहर लगा दी है। अब आप सूर्यास्त के बाद सत्यभाषण कीजिए,बस,फिर दिनभर आपकी छूट है! जी हाँ, देखिए उदयपुर संस्करण का पाठ-'जैसे सूर्यास्त होने में जार पुरुष परस्त्रीगमन और विद्वान् सत्यभाषण आदि श्रेष्ठ कर्म करते हैं।' हो गई न सत्यभाषण की निर्धारित दिनचर्या !! यह कबाड़ा मुद्रण प्रति बनाते समय मुद्रण लिपिकर ने मनमाना पाठ बदलकर किया है। यदि हमारे 'दश विद्वान्' बौद्धदर्शन को देख लेते तो उनसे यह हास्यास्पद भूल नहीं होती।

मीमांसा- मेरे मित्र डॉ. महोदय अपना मतलब सिद्ध करने में इतने प्रवीण हैं कि प्रकरण में से चोर की तरह कुछ वाक्यांश उठाकर प्रकरण की पूर्णतः अनदेखी कर,किसी की व्यर्थ मिथ्या आलोचना कर, साधारणजनों से सहानुभूति वा प्रशंसा बटोर लेते हैं। मैं आश्चर्य से यह सोचता हूँ कि साधारण आर्य भाषा के समझने में इन विद्वान् महानुभाव का यह हाल है, तो अन्य ऋषि ग्रन्थों को समझने में इनका क्या हाल होगा ?'

बौद्ध मत की आलोचनान्तर्गत बौद्धों के चार भेद और सिद्धान्त का वर्णन करते हुए बौद्ध दर्शनानुसार शिष्यों के बुद्धि भेद से हुई चार शाखा कैसे हुईं, उक्त वाक्य से बौद्धों की शाखाओं की निःसारता प्रकट करते हैं।

बौद्ध दर्शन में आता है ' यद्यपि भगवान बुद्धः एकएवबोधयिता तथापि बोद्धव्यानां बुद्धिभेदाच्चातुर्विध्यम्। यथा गतोस्तमर्क इत्युक्ते जार चोरानूचानादयः स्वेष्टचेष्टानुसारेणा भिसरण-परस्वहरण-सदाचरणादि समयं बुध्यन्ते।" अर्थात् यद्यपि भगवान बुद्ध एक ही बोधन कराने वाला है तथापि बोद्धव्यों के बुद्धिभेद से बौद्धों के चार भेद हैं। जैसे सूर्य अस्त हो गया,ऐसा कहने पर जार, चोर और अनूचानादि अपने-अपने इष्टचेष्टानुसार अभिसरण,परस्वहरण,सदाचरण करने के समय को जानते हैं।' इसी दर्शन पर आधारित अभिप्रायिक बौद्धों की शाखा संबंध में,यह वाक्य है कि-जैसे सूर्य अस्त होने पर जार पुरुष परस्त्रीगमन और विद्वान् सत्यभाषणादि श्रेष्ठ कर्म करते हैं। समय एक है पर अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार भिन्न-भिन्न चेष्टा करते हैं। इस यथार्थ को न समझकर सत्यभाषण के लिए समय निर्धारण होता है,यह कहकर, इन दश विद्वानों की मोहर भी लगवा दी । इसका यह अर्थ कैसे हो गया कि सूर्यास्त के बाद सत्य भाषण कीजिए,फिर

दिनभर की छुट्टी है? मित्रवर! यथार्थ न समझकर कबाड़ा आपने किया है और व्यर्थ आरोप विद्वानों पर लगा रहे हैं। हास्यास्पद ये विद्वान् नहीं बल्कि आपकी बुद्धि की बेहूदगी पर जरूर हँसी आती है। मेरे विद्वान् मित्र को क्या हो गया, जो साधारण सी बातें समझ में नहीं आईं?

च. डॉ. साहब - पृष्ठ २१० ' यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था,अभाव न था।' अध्यक्ष महोदय! इससे क्या सिद्धान्त स्थापित हो रहा है,'जगत् जीवात्मा, ब्रह्म और प्रकृति में लीन था',अथवा 'जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन था' अथवा अन्य कोई है? यह कौन-सा वेदान्त दर्शन लिखा गया है ?

मीमांसा- आपके मस्तिष्क में एक बात घर कर गई है कि जो वात हमारी समझ में आ जावे वह सही है, और समझ में न आवे, वह गलत है। चाहे ऋषि की ही क्यों न हो। मित्र ! इस बात को जड़ से मस्तिष्क से निकाल दीजिए क्योंकि आप प्रभु के साक्षातूद्रष्टा व अनुग्रह प्राप्त आप्त पुरुष नहीं हैं, जो पृथ्वी से परमेश्वर पर्यन्त सब पदार्थों के यथार्थ ज्ञान= आप्ति से युक्त हैं। कितना ही पढ़ लिया हो वह सब हल्दी की गाँठ पर बने पंसारी के समान ही है।

यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश का तात्पर्य इस प्रकार समझना चाहिए। असत् अर्थात्

१. असत् शून्य नाम आकाश अर्थात् नेत्रों से देखने में नहीं आता,वह भी नहीं था।
२. असत् जो सत् अर्थात् सत्व गुण, रजोगुण और तमोगुण मिलाकर जो प्रधान कहाता है, वह भी नहीं था।
३. असत्- परमाणु जो होते हैं, वह भी नहीं थे।
४. असत्- विराट्- जो सब स्थूल जगत् का निवास का स्थान है, वह भी नहीं था, इत्यादि ।

ये तो असत् के अर्थ हुए,परन्तु यहाँ पाठ है असत् के सदृश अर्थात्, था तो सब कुछ,पर नहीं होने के समान था। क्योंकि सृष्टि के पूर्व महाप्रलय में इनका वर्तमान में व्यवहार नहीं था। ऐसा वह जगत् जो असत् सदृश,और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था। सार यह है- यह जगत् ब्रह्म और प्रकृति में लीन था और जीवात्मा ब्रह्म में विद्यमान था। एक साथ कहने से भाषा की पुनरुक्ति बच गई। पूर्ण संगतिपूर्वक समासयुक्त वाक्य संरचना का व्यास इस प्रकार से होगा -

यह जगत् असत्य के सदृश ब्रह्म और प्रकृति में लीन था,और जीवात्मा ब्रह्म में । मित्रवर! स्थूल जगत् सूक्ष्मता को प्राप्त होकर प्रकृति में लय होता है और प्रकृति ब्रह्म में और जीव अपने सूक्ष्म शरीर सहित ब्रह्म में । तभी वह ब्रह्म नान्तःप्रज्ञ,न वहिःप्रज्ञ, न दोनों अवस्थाओं से मिश्रित, न प्रज्ञानधन। किन्तु वह व्यवहार में न आने योग्य,ग्रहण न करने योग्य,लक्षण से भी परे, चिन्तन में न आने योग्य, दूसरे को संकेतया समझाने के

अयोग्य होता है। फिर वह क्या है? तब कहते हैं- वह एकात्मप्रत्यसार अर्थात् एक आत्मा में ही प्रत्यय-प्रतीति-अनुभव का सार ही स्वरूप है जिसका ऐसा वह शान्त,अब कोई न प्रवृत्ति है न निवृत्ति। दोनों व्यापारों से पृथक् निर्विकल्प शान्त है। शिवम्= कल्याणस्वरूप है । अद्वैतम्=जहाँ दूसरा और कुछ भी नहां है। मात्र वही केवल है। चूंकि सब कुछ ब्रह्म में समा गया। अभाव न था अर्थात् सब कुछ था, पर व्यवहार नहीं था। यही असत् के सदृश था। मित्र क्या कहूँ । शास्त्र समझा तो ऋषि पर आस्था करने से ही जायेगा, तिरस्कृत करने से नहीं। अब आप समझ लीजिए कि जो लिखा है वह ऋषि अभिप्राय युक्त सब शास्त्रयुक्त सिद्ध स्थापित हो रहा है । हम भी आपसे आकांक्षा करते हैं कि अन्य सिद्धान्त विरुद्ध भी चर्चा करिए । इसी प्रकार उत्तर भी दे दिया जावेगा।

विरोधाभासी और अव्यवस्थित सम्पादनः- शीर्षक के विषय में -

मित्रवर! आपको सभी संस्करणों में सम्पादन विरोधाभास और अव्यवस्थित सम्पादन आदि कई प्रकार के दोष दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यह सत्य है इस पर मैं आपको एक परामर्श देता हूँ कि ये विद्वान् तो आपके ज्ञान के समक्ष अल्पत्व दोष से प्रभावित हैं। इस दोष के अपाकरण के लिए आप एक अपना सत्यार्थ प्रकाश का सुरेन्द्र संस्करण निकाल दीजिए। यह आपके मन में गर्भित भी है। गर्भ को गर्भ ही क्यों रहने दिया जावे, उसका प्रसव भी होना चाहिए।

इस मिथ्या दम्भ से प्रकाशित उस संस्करण की वही दुर्दशा होगी, जो आपके मनुस्मृति भाष्य में स्पष्टतया प्रतीत होती दीखती है। देख ली आपकी विद्या की पकड़, जिसके बल पर दोषरहित संस्करण की कल्पना आप मन में संजोए बैठे हैं। वैसे, आपकी समझ है, पर यह सत्य है कि कोई मानव सामर्थ्य ऐसा हो जो पूर्ण ज्ञानयुक्त संस्करण दे पाये। यही कारण है कि अब तक के संस्करणों का यही हाल है, आगे भी यही रहेगा। आपके मत में यह संस्करण फिर भी मानक है, क्योंकि कोई गरीब भी अपनी संतान का नाम 'गरीबदास' थोड़ा ही रखता है । हम प्रतीक्षारत हैं आपके गर्भ से उत्पन्न अमीर सन्तान को देखने की। उत्पन्न तो कीजिए। अभी तो यह दुर्दशा कम हुई है पर आप जैसे विद्वान् की आहुति जिस दिन पड़ गई, उस संस्करण की भयंकर दुर्दशा भी अकल्पनीय होगी।

३.१ डॉ. साहब- उदयपुर संस्करण ने घोषित ८२५ और अघोषित १२०० अर्थात् कुल २००० के लगभग संशोधन परिवर्तन-परिवर्धन या पाठान्तर किए हैं। कई-सौ जो अन्य असंशोधन अवशिष्ट रह गए उनको क्यों नहीं किया? कृपया,यह तर्क मत दीजिए कि'ऐसा ही पाठ पाण्डुलिपि में था।' यह आपका तर्क इस कारण व्यर्थ है क्योंकि आप बहुत कुछ उसका संशोधन कर चुके हैं जो पाण्डुलिपि में था, और शुद्ध भी था। यदि आप 'समग्र संशोधन' कर देते तो पुनः सत्यार्थ प्रकाश का स्वरूप विकृत नहीं होता और न संस्करणों में भिन्नता रहती।

मीमांसाः- आपकी दृष्टि में यदि पाण्डुलिपि का पाठ ही स्वीकार्य है तो फिर आप द्वारा अनुमोदित ऋषि की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का संस्करण इसको क्यों नहीं ग्रहण कर पाया। उन मित्रों के अनुसार मूल प्रति स्वतः प्रमाण थी तो मुद्रण प्रति अथवा द्वितीय संस्करण की क्या आवश्यकता थी ? अन्य परिवर्तन वा परिवर्द्धन क्यों स्वीकार किए गए। अगर मूल प्रति से ही सब कुछ ठीक हो जायेगा तो ठीक करके दिखाइये। फिर आलोचना क्यों ?

३.२ डॉ. साहब- आपने मूल हस्तलेख के दो-सौ के लगभग पाठ ग्रहण कर लिए हैं। अवशिष्ट पाठों में कितने ही वैशिष्ट्ययुक्त एवं पूर्ण हैं। आपने उन ऋषिप्रोक्त पाठों को क्यों छोड़ दिया है? जैसे -

क. मूल हस्तलेख का पाठ- "यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर आकाश में घूमता जाता है अर्थात् सूर्य के चारों ओर भूमि घूमा करती है।"

उदयपुर सं. पाठ- "यह भूगोल सूर्य के चारों और घूमता जाता है। इसलिये भूमि घूमा करती है।" (पृ.२२१) विद्वत्गण! इस पाठ को पढ़कर पाठक हँसें कि रोयें ? 'भूगोल और भूमि' में अन्तर आपने माना है? मुद्रण लिपिकर द्वारा बिगाड़े हुए पाठ को विद्वत्-समिति ने भी "सश्रद्ध नमन" पूर्वक स्वीकार कर लिया है।

मीमांसा- मित्रवर! आपने उदयपुर संस्करण का पाठ आलोचनार्थ प्रस्तुत किया है, वह पूर्णरूप से उसका ग्रहीत नहीं है। कुछ पाठ छूट गया है। वहाँ का पाठ इस प्रकार है कि- **यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है, इसलिए भूमि घूमा करती है।**

आपने ' जल के सहित' इस अंश को छोड़ दिया है। आप निर्भ्रम वा भूल नहीं करने वाले विद्वान् हैं। फिर यह पाठ कैसे छूट गया ? आश्चर्य है, इसमें क्या रहस्य था ? यह आप ही जानें।

उदयपुर संस्करण का पाठ बिल्कुल सत्य व ठीक है। आपने प्रश्न की ओर बुद्धि नहीं दौड़ाई जिसका यह उत्तर है। देखिए प्रश्न इस प्रकार है।

प्रश्न- पृथिव्यादि लोक घूमते हैं वा स्थिर

उत्तर- घूमते हैं।

प्रश्न- कितने ही लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता है और पृथ्वी नहीं घूमती। दूसरे कहते हैं कि पृथ्वी घूमती है सूर्य नहीं घूमता। इसमें सत्य क्या माना जाये।

उत्तर - ये दोनों आधे झूठे हैं । क्योंकि वेद में लिखा है कि - आयं गौ पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः।

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है इसलिए यह भूमि घूमा करती है।

डॉ.महोदय प्रश्न दो भागात्मक है। यह प्रथम भाग का उत्तर है। जिसमें पृथ्वी घूमती है, यह सिद्ध करना है। अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता

है। यह मंत्र प्रमाण से भूमि घूमने का सिद्धान्त ज्ञात करा दिया गया। अब इस मंत्रार्थ के अभिप्रायानुसार प्रश्न का उत्तर दे दिया कि इसलिए भूमि घूमा करती है। भ्रातृवर्य्य इस पाठ को पढ़कर पाठक हँसे या रोये। भूगोल और भूमि में यहाँ अन्तर नहीं जान पड़ता है। फिर आप जानना चाहेंगे तो जना दिया जायेगा।

(ख) मूल. पाठ- "तुम और तुम्हारी भार्या, कन्या, पुत्रवधू तथा पुत्रादि असमर्पित रहने से अशुद्ध रह गये या नहीं"।

उदयपुर सं. पाठ- "तुम्हारी स्त्री, कन्या, पुत्रवधू आदि असमर्पित रह जाने से अशुद्ध रह गये वा नहीं?..... पुनः उनसे उत्पन्न हुए तुम लोग अशुद्ध क्यों नहीं? (समु. ११)" छिः! छिः!! छिः!!! कोई अपनी स्त्री, कन्या, पुत्रवधू से स्वंय उत्पन्न होता है क्या ? विद्वत् जन! इस अनर्गल पाठ को स्वीकृत करने पर एक बार अपना माथा तो पीट लीजिए।

मीमांसा- प्रतीत होता है कि डॉ.महोदय को नासागत श्लेष्मा के कारण जीर्ण प्रतिश्याय का रोग है जिससे उनको छिः छिः करना पड़ता है। मेरी, भाई जी को सलाह है कि किसी अच्छे सद्वैद्य से इसकी चिकित्सा आवश्यकीय है। उदयपुर संस्करण का पाठ, प्रदर्शित पाठ से कुछ भिन्न है। वहाँ का पाठ- तुम्हारी स्त्री, कन्या,पुत्रवधू से प्रारम्भ न होकर 'परन्तु तुम और तुम्हारी स्त्री,कन्या तथा पुत्रवधू' से प्रारम्भ होता हैं। परन्तु शब्द बताता है कि पीछे कोई प्रसंग है जिससे सम्बद्ध यह वाक्य है। प्रकरण है कि गोसाईं लोग अपने शिष्य और शिष्याओं को अपने साथ समर्पित करके शुद्ध करते हैं ,परन्तु गुंसाई लोग स्वयं (तुम) और अपनी स्त्री,कन्या तथा पुत्रवधू आदि को समर्पित नहीं करते। इस प्रसंग में ऋषि ने कहा है कि तुम और तुम्हारी स्त्री, कन्या तथा पुत्रवधू आदि असमर्पित रह जाने से अशुद्ध रह गए । पुनः इनसे उत्पन्न हुए तुम लोग अशुद्ध क्यों नहीं'? यहाँ पर प्रयुक्त तुम लोग सम्पूर्ण गुसाईयों के लिए प्रयुक्त हुआ है। गुसाईयों की कन्या, स्त्री, पुत्रवधू आदि से गुंसाई ही पैदा होंगे। इन विद्वद्जनों को माथा पीटने की तो कोई बात नहीं है। अपना माथा तो पीट ही लीजिए क्योंकि आपके भेजे (माथे=मस्तिष्क) में यह बात आई ही नहीं।

३.३ डॉ. साहब :- अव्यवस्थित संशोधन-कुछ वर्तनियों,व्यक्तिवाचक नामों और प्रमाणों का संशोधन कर दिया है किन्तु अनेक अभी भी अशुद्ध हैं, जो सत्यार्थ प्रकाश में कलंक के समान विद्यमान हैं। उनको शुद्ध न करने के कारण यह संस्करण पाठकों पर यह प्रभाव छोड़ रहा है जैसे महर्षि दयानन्द को संस्कृत शब्दों का भी ज्ञान नहीं था!!

मीमांसा:-यह उपरोक्त कथन मात्र डॉ. साहब के मन का भ्रम है। आपके मत में तो ऋषि को सैद्धान्तिक व भाषा ज्ञान भी नहीं था। संस्कृत शब्दों का ज्ञान तो बहुत दूर की बात है। आप अपने स्व मतानुसार तथ्य घुमाने में सिद्धहस्त हैं। क्या परोपकारी संस्करण में किया संशोधन कलंक के समान नहीं है?

३.४ डॉ.साहब- अव्यवस्थित वाक्य शोधन- टिप्पणियों में सामान्य स्तर के अनेक वाक्यों का शोधन किया दर्शाया है किन्तु अब भी दर्जनों वाक्यरचना संबंधी अशुद्धियाँ विद्यमान हैं-

क. पृष्ठ १३, 'जहाँ जहाँ स्तुति, प्रार्थना,उपासना, सर्वज्ञ....सृष्टिकर्ता आदि विशेषण लिखे हैं।' स्तुति, प्रार्थना,उपासना किस व्याकरण के अनुसार विशेषण हैं ? कोई प्राचीन व्याकरण मिल गया है अथवा रचा है ?

मीमांसा- इस प्रसंग में भी मेरे मित्र ने पूर्ण प्रकरण संगत न करके आधे अधूरे से विचार कर लिया । प्रकरण में उपनिषदों वेद मंत्रों के प्रमाणों को धरके इनमें आये नामों की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि इन प्रमाणों के ठीक ठीक अर्थों के जानने से इन नामों से परमेश्वर का ही ग्रहण होता है। क्योंकि ' ओ३म्' और अग्न्यादि नामों के मुख्य अर्थ से परमेश्वर का ही ग्रहण होता है। ओ३म् तो परमात्मा ही का नाम है और 'अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में **प्रकरण और विशेषण ही नियमकारक है।** यहाँ **प्रकरण और विशेषण ही नियमकारक** यह दर्शाया गया है। दोनों को साथ लेकर आप जहाँ-जहाँ स्तुति, प्रार्थना और उपासना सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध सनातन और सृष्टिकर्ता आदि विशेषण हो- यह समस्त वाक्य लिखा है। दो अभिप्राय समझे जा सकते हैं-

१. ऊपर से प्रकरण और विशेषण अनुवृत्ति में आ रहे हैं अर्थात् स्तुति,प्रार्थना उपासना प्रकरण हैं और सर्वज्ञ आदि विशेषण हैं। लेकिन स्तुति प्रार्थना उपासना भी अग्न्यादि से होती हैं। अग्नि नाम भी विशेषण ही है, गुण भी है, इसलिए दोनों बातें वाक्यगर्भित तथ्य से समझीं जा सकती हैं।

मैं बार बार यह सोचता हूँ कि हमारे मित्र सीधे अभिधा में प्रियता से बात न करके, तीखी वक्रोक्ति में बात कर अपना महत्व प्रदर्शित करते हैं। कह ही डाला कि कोई प्राचीन व्याकरण मिल गया अथवा रचा है ? ध्वनित यह हो रहा है कि ये सब विद्वान् व्याकरण ज्ञान से शून्य मूर्ख हैं। पर आपको होश में आकर यह जान लेना चाहिए कि आपकी योग्यता से कहीं अधिक योग्यता वाले यह वैयाकरण पंडित हैं। दूसरे पंडितों की की गई टिप्पणियों से उधार लेकर बात करते हो। यदि नहीं तो उसी पृष्ठ पर लिखे हुए इस वाक्य पर दृष्टि क्यों नहीं पड़ी कि 'जहाँ-जहाँ उत्पत्ति,स्थिति,प्रलय,अल्पज्ञ, जड़,दृश्य आदि विशेषण हों'। उत्पत्ति,स्थिति और प्रलय किस व्याकरण के आधार पर विशेषण हैं? मित्र महोदय ! जैसे यह 'व्यवहार''विशेषण' नाम से प्रयुक्त हो गए, वैसे स्तुति प्रार्थना और उपासना भी विशेषण कह दिए गए। एक का वर्णन बाद में 'व्यवहार' कहकर कर दिया, और एक का वर्णन पूर्व में '. प्रकरण' कहकर कर दिया। सब व्यर्थ की बातें हैं। थोड़ी सी बुद्धि से विचार कर लें, तो अप्रियता को स्थान कहां से मिलेगा ?

(ख) डॉ.साहब-पृष्ठ २४ ' जो अधर्म से रहित धर्म ही का प्रकाश करता है.......... धर्मराज है।' क्या कोई ऐसा भी धर्म होता है जो 'अधर्म से सहित' होता है? किस धर्मशास्त्र में है यह धर्म ?

मीमांसा- मित्रवर! यदि आपने वेद और उसका व्याख्यान ग्रन्थ शतपथ पढ़ा होता तो वेद धर्म शास्त्र की निन्दा न करते। वेद निन्दक नास्तिक होता है। महर्षि अपने ग्रन्थों में वेद व ऋषियों के शास्त्र अनुसार ही लिखते हैं। आपने जो कुछ भी जानने की कोशिश की है, वह मात्र दूसरों की आलोचना के लिए ही । लेकिन भूल गए कि विद्या के दो प्रयोजन हैं- स्वार्थ और परार्थ। यदि वेद का दर्शन किया है तो इस मंत्र पर प्रीतिपूर्वक द्वेष रहित होकर जरा विचार कर लीजिए । आप ऋषि पर कृपा तो करेंगे ही लेकिन अपने ऊपर भी । मंत्रः-

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मेराध्यताम्।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि। यजु १। म ५।।

भाषार्थः- हे अग्ने व्रतपते ! सत्यपते! (व्रतं) सत्यधर्म का अनुष्ठान करूँगा ।

इस मंत्र पर शतपथी व्याख्या रूप प्रमाण- सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या इदमहमनृतात् सत्यमुपैति.............सत्यमेव वदेत्। एतद्धवै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यम्।।

सत्याचरण से देव और असत्य के आचरण से मनुष्य होते हैं। अतः सत्याचरण ही धर्म कहाता है। (तच्छकेयं) जैसे मैं सत्याचरण धर्म को करने में समर्थ होऊँ (तन्मे राध्यताम्) उस मेरे सत्यधर्मानुष्ठान में आप ही सिद्धि करने वाले हैं। (इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि) यत्सत्यधर्मस्यैवाचरणमनृतादसत्याचारणादधर्मात् पृथग्भूतं तदेवोपैमि प्राप्नोमि। अर्थात् जो सत्यधर्म का आचरण, जो अनृत-असत्य-अधर्म से पृथग्भूत है उसको प्राप्त होऊँ। इसमें आपका सहाय चाहिए। इस मंत्र में स्पष्ट है कि अनृतात् पृथक् सत्यमस्ति+ अर्थात् झूठ अधर्म से रहित सत्य धर्म है,और संपूर्ण भाव इस प्रकार है- **'जो झूठ से अलग होकर सत्य को प्राप्त होवें वे देव और सत्य से अलग झूठ को प्राप्त होवें वे मनुष्य संज्ञा को प्राप्त होते हैं।** सत्य - अनृत से रहित और अनृत सत्य से रहित है। आपकी सोच के विद्वान् तो आप ही हैं,अन्य तो कोई ऋषि मुनियों में हुआ नहीं और न होगा। यह भी सोचा जाए कि ऐसा भी धर्म होता है जो अधर्म से रहित हो,भला आपके अलावा किसकी हिम्मत है जो सोचे?

द्वितीय उदाहरण भी वेद का दृष्टव्य है।

'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्' यजुर्वेद

अर्थात् 'आदित्यवर्णं स्वप्रकाशविज्ञानस्वरूपं,तमसोऽज्ञानाविद्यान्धकारात्पृथक् वर्तमान' आदित्य वर्ण=सबका प्रकाश करने वाला स्वप्रकाश और अविद्या अन्धकार अर्थात् अज्ञान आदि दोषों से पृथक् है,यह अर्थ हुआ। यह अर्थ दोनों ओर संगत होता है। मित्र! बुरा न मानिए, शास्त्र संगत करने की युक्ति वा रीति आपको जाननी चाहिए। धर्म अधर्म से रहित ही है। और अधर्म धर्म से रहित है। अब आप ऋषि कथन को समझ लीजिए

जो धर्म में ही प्रकाशमान है अर्थात् जिसका धर्म ही स्वरूप है, वह तो अधर्म से रहित धर्म ही का प्रकाश करेगा। इसीलिए उसका नाम धर्मराज है। आप पूछते हैं कि किस धर्मशास्त्र में है? तो उत्तर यह है कि वेदशास्त्र में है जिससे बड़ा धर्मशास्त्र कोई और नहीं। अब वेद को नहीं मानते हो,तो ऐसे नास्तिक के सामने हाथ जोड़ने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है।

ग. डॉ.साहब -पृष्ठ २८०' ईर्ष्या,द्वेष के अंकुर उगे थे जो बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गए।' वाह ! अंकुर भी बढ़कर बूढ़े होने लगे!! हमने तो अभी तक सुना था कि मनुष्य आदि प्राणि ही बूढ़े होते हैं।

मीमांसा- आपने अभी तक यही सुना था कि मनुष्यादि प्राणी ही बूढ़े होते हैं। लेकिन अब यह सुन लीजिए कि मनुष्यादि प्राणियों से अतिरिक्त वृक्षादि में भी यह प्रयोग होता है कि यह वृक्ष बहुत बूढ़ा हो गया अर्थात् पुराना हो गया। वैसे आपने भाषाविद् होने की उपाधि प्राप्त की हुई है फिर भी वृद्ध का अर्थ संगत नहीं कर पाये। 'ईर्ष्या,द्वेष के अंकुर उगे थे।' इस वाक्य पर आपत्ति क्यों नहीं की? सूक्ष्मदर्शी पुरुष ! यहाँ पर यह क्यों नहीं कहा कि कोई ईर्ष्या,द्वेष किसी वृक्ष व पौधे के बीज थे,जो उगे। अस्तु। ईर्ष्या-द्वेष के अंकुर उगे थे, जो बढ़ते बढ़ते वृद्ध हो गए।

मित्रवर ! बढ़ते-बढ़ते के साथ वृद्ध को जोड़कर देखो तो अर्थ यह हुआ जो बढ़ते बढ़ते बहुत बढ़ गए।

साहित्य के चतुर चितेरे, हम आपसे पूछते हैं कि साहित्य में ऐसी भाषा प्रयोग नहीं होती और उस भाषा का क्या नाम है?

घ. डॉ. साहब- पृष्ठ ३०७'उसने (परमेश्वर) ने शिव,विष्णु,गणेश,सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण कर राम,कृष्ण-आदि अवतार लिए।' मान्यवर विद्वद्गण ! इतना बड़ा चमत्कार तो अभी तक तो पौराणिक भी नहीं दिखा पाये जो आपने दिखा दिया कि शरीर धारण किए देवी,शिव आदि के और उससे अवतार राम, कृष्ण बन गए ? आप सचमुच महान् हैं!!!

मीमांसा- आपको इस ऋषि-कथन में विद्वानों का चमत्कार दीखता है। वाक्य ऋषि का,चमत्कार विद्वानों का ? यह समझ का फेर है। आप कहते हैं उसने शिव, विष्णु, गणेश और देवी आदि शरीर धारण किए और उससे अवतार राम कृष्ण के बन गए ? ....वाक्य के स्वरूप को बिगाड़कर अर्थान्तर में क्यों पलट रहे हैं? देखिए- उससे राम कृष्ण के अवतार बन गए । यह वाक्य तो सत्यार्थ प्रकाश में नहीं है। वहाँ तो 'राम कृष्ण आदि अवतार लिए।' यह वाक्य है। कृपया संगति लगाकर तात्पर्य निकाल लेते तो न्यायान्याय में अन्याय न होता। मित्रवर ! यह प्रश्न है जो ऋषि ने प्रचलित धारणाओं के परिप्रेक्ष्य में अवतारों की असंभाव्य कल्पना को समझाने के लिए लिखा है। शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण कर राम, कृष्ण आदि अवतार लिए।

इसमें दो बातें कहना चाहते हैं कि वह शरीर धारण करता है, और रामकृष्णादि अवतार लेता है। जो शरीर धारण करेगा वही अवतार लेगा। दोनों स्थानों और आदि पद जुड़ा है। अभिप्राय यह निकलता है शिव............देवी आदि में अन्य राम कृष्ण आदि भी आते हैं और रामकृष्ण आदि के आदि में पूर्वोक्त शिवादि भी संगत होते हैं। मित्र! अवतार शिव,गणेश,देवी आदि भी हो सकते हैं और रामकृष्णादि के भी। उन दोनों में,शरीर धारण करना अवश्य होगा। इसलिए यह भाषा है,इसमें कुछ असंगति नहीं है।

ड. डॉ. साहब- पृष्ठ १६०(सन्धि)शत्रु से मेल अथवा उससे विपरीतता करे।' अध्यक्ष महोदय! यह कौन से युद्धशास्त्र की परिभाषा है कि 'शत्रु से विपरीतता करना' संधि है? कम से कम मूल हस्त/मूल प्रति संस्करण को देखकर शुद्ध कर लेते? बेशक उसका नाम नहीं देते। पाठ तो सुधर जाता।

मीमांसा-'शत्रु से विपरीतता करे' यह कौन से युद्धशास्त्र की परिभाषा है? आपने इसके अतिरिक्त और कौनसा युद्धशास्त्र पढ़ा है जो इस विपरीतता का निषेध करता है? क्या मनु से भी बड़ी और कोई औषध है जो आपके इस रोग को ठीक कर सके? महर्षि ने अत्यन्त सामान्य अर्थ में 'समानयानकर्मा' का शत्रु से मेल अर्थ कर दिया, 'विपरीतस्तथैव च' अथवा शत्रु से विपरीतता करे। समानयानकर्मा का अर्थ संगत कर दीजिए, विपरीतता अपने आप स्पष्ट हो जावेगी। रही बात सब समझ सकें,ऐसा अर्थ होना चाहिए, सो मित्र, ऐसा न कभी हुआ, न होगा। सत्यार्थ प्रकाश के ऐसे कतिपय स्थल हैं, जो विद्वानों के द्वारा भी अस्पष्ट हैं। तब साधारणजनों की बात ही क्या?

४. डॉ. साहब -"मक्खी पर मक्खी" मार सम्पादन- सत्यार्थ प्रकाश के पाठों की समीक्षा करते हुए वयोवृद्ध विद्वान् डॉ. रामनाथ जी वेदालंकार ने एक पंक्ति लिखी थी, वह मुझे उदयपुर संस्करण के सम्पादन के संबंध में स्मरण हो आई-' हम लोग सम्पादन का मर्म यह समझ बैठे कि मक्खी पर मक्खी ही मारनी है, लेखक की भूल से जो अशुद्ध लिखा,उसे भी शुद्ध नहीं करना है।'

मीमांसा-'इस संदर्भ में हम अपने ज्ञानवृद्ध व वयोवृद्ध विद्वान् आचार्य श्री रामनाथ जी वेदालंकार के प्रति इस प्रकार का कोई निन्दित आक्रमण नहीं करना चाहेंगे, जैसा आपने किया है। वे हमारे लिए समादरणीय हैं। इस विषयक एक बात कहकर हम आपको समझाने की कोशिश करते हैं कि कोई विद्वान् चाहे कितना हो पर ऋषि हुए बिना वह पूर्ण नहीं हो सकता। सब बातें पूर्ण नहीं होतीं,सब अधूरी नहीं होतीं। पर ऋषि जो कहता है वह पूर्ण सत्य ही होता है। एतदर्थ उनका सामवेद भाष्य प्रमाणस्वरूप उपस्थित है, अवलोकन किया जा सकता है।

क. डॉ. साहब- तो देखिए दश विद्वानों का सम्पादन-

पृष्ठ २६४, 'स्वयं आप अपना और सबका अधिपति रहता है'? पाठकगण! कुछ समझें! थोड़ा-सा दिमाग पर जोर दीजिए,समझ जायेंगे। 'दश विद्वानों' द्वारा स्वीकृत गंभीर पाठ है जरा ?

मीमांसा-'मित्रवर! यहाँ पर यह सैद्धान्तिक तथ्य नहीं है अपितु जीव ब्रह्म की एकता दिखाने के लिए वेदान्तियों द्वारा यह प्रश्न उठाया गया है कि ' क्या व्यास जी ने जो शारीरक सूत्र बनाए हैं,उनमें भी जीव ब्रह्म की एकता नहीं दीखती है? फिर वे सूत्र दिए हैं, जिनका, वेदान्ती गलत अर्थ करके जीव ब्रह्म की एकता- ब्रह्मस्वरूपता सिद्ध करना चाहते हैं। उनमें से अन्तिम सूत्र का यह अर्थ है, जो आपने दिया है। लेकिन दुःख इस बात का है कि आपको तो आलोचना करनी है। पूरी बात न कहकर कुछ अंश उठाकर विद्वानों को नीचा दिखाने की भावना से लिख बैठते हैं। पूरा अर्थ इस प्रकार है 'योगी ऐश्वर्य सहित अपने ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होकर अन्य अधिपति से रहित अर्थात् स्वयं आप अपना और सबका अधिपतिरूप ब्रह्मस्वरूप से मुक्ति में स्थिर रहता है। कहाँ आपका वाक्य और कहाँ यह ? दोनों में कितना अंतर है। वेदान्तियों के मत में मुक्ति में जीव की ब्रह्मस्वरूपता ही मानते हैं। तब यही भाषा प्रश्न की अभिव्यक्ति के लिए बनेगी। पुनः ऋषि ने इसका यथार्थ अर्थ देकर वास्तविकता प्रकट की और लिखते हैं **'यह इन सूत्रों का वास्तविक अर्थ नहीं है।'** यथार्थ इस प्रकार है-' **जब योगी का सत्य संकल्प होता है, तब स्वयं परमेश्वर को प्राप्त होकर मुक्ति सुख को पाता है। वहाँ स्वाधीन स्वतंत्र रहता है। जैसा संसार में एक प्रधान दूसरा अप्रधान रहता है,वैसा मुक्ति में नहीं। किन्तु सब मुक्त जीव एक से रहते हैं। '**

मैं आपसे विनम्र निवेदन करता हूँ कि इसी विद्याबल पर शास्त्र समझना चाहते हैं? मित्र इरादा छोड़ दीजिए। इस मिथ्या पांडित्य प्रदर्शन में मात्र प्रदर्शन ही रह जायेगा,दर्शन समाप्त हो जावेगा। पाठकगण! दिमाग पर जोर देकर क्या समझेंगे ? आप समझिये, समझ सकते हैं तो, नहीं तो यह जीवन कोरा ही विद्याविहीनता में व्यतीत हो जायेगा।

ख. डॉ. साहब- पृष्ठ १०१ 'जिनका अच्छा धर्म करने का सुखरूप समय हो,वे सुकालिन।' अब इन विद्वानों को यह भी 'मानक' खोज प्रकाशित कर देनी चाहिए कि 'बुरा धर्म' करने का कौन सा समय है?

मीमांसाः- इसमें 'मानक खोज का तो प्रश्न नहीं है, अपितु आपकी नासमझी का जरूर प्रश्न खड़ा होता है। सामान्य सी बात समझ में नहीं आई, तो गंभीर बात तो समझ आयेगी ही नहीं। सुकालिनः- 'शोभनः कालो विद्यते येषान्ते सुकालिनः' जिनका अच्छे धर्म के करने और सुखरूप समय हो।' इसका अर्थ यह है कि मनुष्य शरीर प्राप्त होकर ईश्वर और सत्यविद्या के उपदेश का जिनका श्रेष्ठ समय हो। यद्वा ईश्वर ज्ञान प्राप्ति से सुखरूप सदैव काल है जिनका, वे सुकालिन् हैं। इनको यों भी कह सकते हैं कि ईश्वर ज्ञान प्रभाव से बुरे अधर्म से पृथक्, अच्छे धर्म करने में ही सुखरूप समय=सदैव काल जिनका होता है। मित्र 'बुरा धर्म' होता ही नहीं है, धर्म सदा अच्छा ही होता है । बुरा तो अधर्म ही होगा। यह भी लिखने की तमीज नहीं कि बुरा अधर्म के साथ लगना चाहिए या धर्म के साथ। प्रतीत होता है कि धर्म और अधर्म की विवेचनी शक्ति आपके पास नहीं है।

(ग) डॉ. साहब- पृष्ठ १४६(साहस)'विना विचारे बलात्कार से किसी की स्त्री से बुरा काम करना।' जो विचारकर बलात्कार होगा उसकी क्या संज्ञा होगी, अध्यक्ष महोदय!

मीमांसाः-हमारे मित्र डॉ. महोदय में वह विलक्षण प्रतिभा है, जिसके बल पर यह बात कहते हैं, जो कोई ऋषि व शास्त्र नहीं कह सकता। जो विचारकर बलात्कार होगा उसकी संज्ञा क्या होगी? इनसे पूछो कि विचारकर बलात्कार होगा? जिसकी संज्ञा पूछी जा रही है। बुद्धि की ऐंठ में शास्त्र सर्वथा त्याग दिए जाते हैं। जहाँ का यह प्रकरण है वहाँ क्रोध से उत्पन्न दुर्गुणों की चर्चा है। क्रोध से सम्मोह होता है,सम्मोह से स्मृति विभ्रम,स्मृति भ्रंश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश अर्थात् ज्ञान के नाश से पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है। मैं समझ सकता हूँ कि मित्रवर्य को 'साहस' शब्द समझ में नहीं आया। हे मनुस्मृति के शोधकर्त्ता विद्वान् ! निम्नलिखित श्लोकों में आये 'साहस' का क्या अर्थ करोगेः-

ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम्।
नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम्।।
वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसतः।
साहसस्य नरः कर्त्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः।
साहसे वर्तमानं तुयो मर्षयति पार्थिवः।
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषंचाधिगच्छति।।
न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात्।
समुत्सृजेत साहसिकान्तसर्वभूतभयावहान्।।
यस्यस्तेनःपुरे नास्ति नान्यस्त्रीगोनदुष्टवाक्।
न साहसिक दण्डघ्नौ स राजा शक्रलोक भाक्।।

मनु के अनुसार तो इन श्लोकों में आए साहसिक,साहस का अर्थ निम्न प्रकार हैः-
राज्य के अधिकारी धर्म और ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला राजा बलात्कार-काम करने वाले डाकुओं को दण्ड देने में एकक्षण भी देर न करे। इस प्रकार-

साहसिक-बलात्कार काम करने वाले डाकू,
साहस- बलात्कार काम करने वाला
साहस-साहस में वर्तमान पुरुष दण्डनीय
साहसिक- डाकू

मित्र! इस प्रसंग में भी पैशुन्य, साहस, द्रोह, ईर्ष्यासूयार्थदूषण, कठोर वचन बोलना और बिना अपराध कड़ा वचन बोलना वा विशेष दण्ड देना ये आठ दुर्गुण क्रोधज हैं। यहाँ पर भी साहस का अर्थ बिना विचारे बलात्कार करना ही है। क्रोध की कितनी सूक्ष्म स्थितियाँ हैं यह जानना आपके वश की बात नहीं है क्योंकि आप रहते ही निरन्तर क्रोध में हैं,जिससे बुद्धिनाश होता है। अतः आप भी साहस=बिना विचारे काम करते हैं। यह

अध्यक्ष महोदय से मत पूछिये, आप अपने से पूछिये कि मेरी समझ में इतना विद्यादम्भी होने पर भी, यह मौलिकता नहीं आ सकी ।

घ. डॉ. साहब- पृष्ठ २६८, 'प्रश्न- क्या आपने ही हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं? उत्तर-जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं। ' इस स्थिति पर संस्कृत में एक व्यंग्योक्ति है- 'आम्रान् पृष्टः कोविदारान् आचष्टे'- आम के बारे में पूछा जा रहा है, कचनार के बारे में बताया जा रहा है।

मीमांसा- यह बात तो सामान्य अभिधावृत्ति में भी, प्रियता से कही जा सकती थी। परन्तु व्यंग्योक्ति से क्या उपलब्ध हुआ? अब तक एकाध को छोड़कर आप द्वारा सब उद्धृत प्रसंग लगभग अज्ञानमूलक वा व्यर्थ हैं,तब आपके लिए कौनसी व्यंग्योक्ति प्रयोग की जावे? हमारा उद्देश्य सत्य को मानने वा मनवाने में है। अतः यह स्वीकार किए जाने में कोई हिचक नहीं है कि यहाँ पर प्रश्न के उत्तर में यही होना चाहिए कि "जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के हाथ का खाने में कुछ भी हानि नहीं ।" आर्यों के साथ खाने के स्थान पर ' आर्यों के हाथ का खाने में' यह पाठ समीचीन है।

(ङ) डॉ. साहब- पृष्ठ १६८, 'जीव के अल्पज्ञान...सब भ्रान्तित्व और परिच्छिन्नतादि गुण...।' पाठकगण! जीव का यह गुण और शब्द में 'सब भ्रान्तित्व' कभी नहीं सुना था न आपने? यह गुण हमारे दश विद्वानों द्वारा खोज लिया गया है और शब्द को भी शुद्ध घोषित मान लिया है।

मीमांसा- क्या मैं पूछ सकता हूँ कि क्या भ्रान्तित्व गुण जीव का नहीं है? इतनी हिम्मत नहीं हो सकती कि आप इसे गुण स्वीकार न करें। फिर उपहास क्यों और कैसे ? बात केवल 'सब' लगाने की है। 'सब' यहाँ इसलिए प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि परिछिन्न के आगे 'आदि ' लगाकर ऋषि ने **'ईश्वर से भिन्न जीव के सभी गुणों को'** यहाँ संकेतित कर दिया है। पूरे प्रकरण को बार-बार पढ़िये। हां ! **अगर ऋषि-पाठों पर आक्षेप करने की आपने कसम खाई है तो बात अलग है।**

अग्रिम शीर्षकों के अन्तर्गत जिस विषयवस्तु का वर्णन डा. महोदय ने किया है, वह तो मदरूपी ज्वर के वेग में वर्ड़ाने के सदृश है, अतः सम्प्रति उस पर कुछ न लिखकर (५.४) पर जो लिखा है उस पर समाधान रूप में अवश्य लिखा जाता है। डा. लिखते है कि कहीं कहीं अपनी बुद्धि पर जोर न देने के कारण, हास्यास्पद अन्धानुकरण बन गया है।

(क) डा. महोदय- अष्टम समुल्लास पृ. २१५ महर्षि ने नास्तिकों के नौ मत देकर उनका अपनी ओर से खण्डन किया है। नास्तिकों के आठ सूत्र मत-स्थापना के दिये हैं। नौवें चार्वाक का कोई सूत्र नहीं है। सर्वप्रथम स्वामी वेदानन्द जी से यह भूल हो गई कि उन्होंने सूत्र उद्धृत न करने को 'ग्रन्थकार की भूल' समझ लिया और अपनी ओर से अपने संस्करण में न्यायदर्शन का सूत्र 'न स्वाभावसिद्धिरापेक्षिकत्त्वात्' नौवें नास्तिक मत

की स्थापना में उद्धृत कर दिया। इसका अन्धानुकरण पंडित युधिष्ठिर जी मीमांसक ने कर लिया। फिर अन्यों ने किया। जिस-जिसने इस अन्धानुकरण को किया, वह सम्पादक उपहास का पात्र विद्वानों में बन गया। आज उसी स्थिति में दश विद्वान् हैं, उदयपुर न्यास के अधिकारी हैं। यह भूल तो स्वामी वेदानन्द जी की थी,विद्वत्- समिति ने शोधन के चाव में, अपना नाम देकर राह चलती बुराई मुफ्त में अपने सिर ले ली।

मीमांसा- अष्टम समुल्लास के पृ. २१५ में नवम नास्तिक के वर्णन में' न-स्वभावसिद्धिः आपेक्षिकत्वात्' सूत्र को रखने का कोई औचित्य नहीं। यह तो ठीक है। पर आपका यह कहना कि **"यह समाधान पक्ष का सूत्र है"**, सिद्ध कर दें, तो हम आपको ऋषि की दार्शनिकता से बड़ी दार्शनिक हस्ती मान लेंगे। दर्शनों के पढ़ने की बात तो बहुत बड़ी है, मुँह भी नही देखा है।

किसी कारणवश हुई भूल पर चल पड़े पूज्य वेदानन्द जी और श्री युधिष्ठर जी मीमांसक की व्यर्थ आलोचना करने! मैं आप द्वारा उद्धृत इस सूत्र पर समाधान लिखने को उत्सुक था, पर विधादम्भी के लिए आवश्यक नहीं कि यर्थाथस्वरूपता का वर्णन किया जावे!

आपको हमारा इस कथन से निवेदन है कि लिखिये कि वस्तुतः किस समाधान पक्ष का सूत्र है। हस प्रतीक्षा में रहेंगे।

(ख) डा. साहब- एकादश समुल्लास पृ.३४२ पर 'यमेन वायुना सत्यराजन्' प्रमाण है। विराम चिह्नों के अभाव में पहले वेदानन्द जी को यह भ्रान्ति हो गई कि ये मंत्रों के प्रतीक तीन स्वतंत्र पद हैं। उन्होंने 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा' की शैली में ये शब्द मंत्रों में ढूंढ़कर तीन मंत्र कहीं कहीं से ढूढ़ लिये और उदहरण तथा पते टिप्पणी में दे दिये। उनका अन्धानुकरण मीमांसक जी जैसे विद्वानों तथा अन्य परवर्ती प्रायः सभी संस्करणों ने कर लिया। उदयपुर संस्करण,भला,क्यों पीछे रहता, उसने भी बहती गंगा में हाथ धो लिया! हमारे दश विद्वानों ने यह नहीं सोचा कि 'यमेन' तृतीया वचन है और 'वायुना' तृतीयावचन के रूप में उसका अर्थ है। 'सत्यराजन्' यम का अर्थ है। यदि ध्यान से हिन्दी को पढ़े तो यह अर्थ स्पष्टतः समझ में आ जाता है। यही तृतीयान्त वाक्य प्रयोग वेदभाष्य में हुआ है।

मीमांसा - आप यमेन वायुना सत्यराजन् को एक प्रमाण संज्ञा दे रहे हैं, किस आधार पर ?

जबकि ऋषि इनको वेदवचन कहकर यह प्रमाणित कर रहे हैं कि 'इत्यादि वेद वचनों से निश्चय है कि.........।' इन वचनों को आप एक प्रमाण कह रहे हैं। ऋषि 'वेदवचनों' की संज्ञा दे रहे हैं। इससे तो सुनिश्चित होता है कि ये भिन्न-भिन्न मंत्रों में आए शब्दरूपी वचन हैं। उन्ही वचनों से यह निश्चय है कि 'यम' नाम वायु का है और सत्यराजन् सत्यकर्ता पक्षपातरहित परमात्मा धर्मराज है। अन्य किसी स्वतन्त्र प्रामाण्य से नहीं।

स्वामी वेदानन्द जी को भ्रान्ति हो गई कि मंत्रों के प्रतीक तीन स्वतन्त्र पद हैं- जो कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा है। क्या वेद मंत्रों में अर्थ के प्रकाशन के लिए मन्त्रप्रतीकें नहीं हैं? जिनका ऋषि ने स्वयं भाष्य किया है। देखिए- यजु. ३२ वें अध्याय मन्त्र ३ में।

हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्नजात इत्येषः। ये भिन्न-भिन्न अध्याय में प्रयुक्त अनुवाकों अथवा मन्त्रों की प्रतीक हैं। प्रमाणार्थः- हिरण्यगर्भ इत्येष (२५।१०-१३) तक अनुवाक, मा मा हिंसीदित्येषा (१२/१०२) यस्मान्नजात इत्येषः (८ वें अध्याय-३६व३७ तक दो मन्त्रों का अनुवाक है) फिर वेदानन्द जी से युधिष्ठिर जी पर्यन्त वा इन विद्वानों पर वहती गंगा में हाथ धोने का आरोप क्यों? **क्या सत्य से हटकर असत्य स्वीकार करना श्रेयस्कर होता?**

इस तथ्य को मान लेने में भला किसको आपत्ति होगी कि यमेन तृतीया का वचन है। वायुना में भी तृतीया है। सत्यराजन् धर्मराज यम=नियन्ता है। यही तृतीयान्त वाक्य प्रयोग वेदभाष्य में हुआ। मित्र! किस वेद के मन्त्र भाष्य में। कृपया पता उल्लिखित हो जाता तो सब रहस्य ही खुल जाता।

ध्यान रहे कि पौराणिकों ने राम, कृष्ण, शिव आदि पदों से उनका वेदों में वर्णन इस प्रकार सिद्ध नहीं किया है। पूर्वापर प्रसंग वा प्रकरण में आए वेदमन्त्रों, मंत्रांशों, वा वेदवचनों = शब्दों का अर्थ परमेश्वर के साक्षात्कर्ता वा ईश्वरानुग्रह प्राप्त ऋषि ही समाधियोग से कर सकते हैं। साधारण असत्य का आचरण करने वाले अल्पज्ञ, मनुष्य को इस प्रकार दुःसाहस नहीं करना चाहिए। वेदानन्द जी आदि ने अपने किसी स्वतन्त्र अर्थ की अभिव्यक्ति इन वेद वचनों से नहीं की है अपितु ऋषि अर्थ को ही प्रदर्शित किया है। सो यह कथन आपका असंगत है। फिर भी आपसे विनम्र प्रार्थना है कि ये तीनों वचन यमेन वायुना सत्यराजन् जिस मन्त्र में एक ही साथ प्रयोग हुए हों, उस मन्त्र को कृपया बताने का कष्ट करें। 'इत्यादि' से इतने ही वचनों से नहीं अन्य वेद मन्त्रो में आए वचन भी इसमें प्रमाण हैं, यह भी निष्कर्ष प्राप्त होता है। जैसे ऋ. ११/१६४/१५, ऋ. २/५/१, ऋ. १०/१४/१३, यजु. ८/५७, यजु. ३९/१३, ऋ. १/१६४/४६/४६ आदि में भी यम, वायु, विद्युत्, सूर्य, ऋतु तथा नियन्ता परमेश्वर एक वायु लक्षण से, नाम हैं। मित्रवर! यहॉ यम नाम केवल वायु का नहीं है, अपितु अन्तरिक्ष जिसमें वायु रहता वा वहता है, का नाम है और अन्तरिक्ष में वायु के साथ विद्युत सूर्य आदि पदार्थ रहते हैं। **अतः जब जीव शरीरों को छोड़ के विद्युत सूर्य के प्रकाश और वायु आदि को प्राप्त होकर जाते हैं और गर्भ में प्रवेश करते हैं तव किरण उनको छोड़ देती हैं। यह यजु. ३५/म.३ पर महर्षि जी का भाष्य है। यही कुल सुसंगति है!**

(५.५) डा. साहब- २७. (५.५) किये गये दावों और किये गये कार्य के अध्ययन से आभास होता है कि उदयपुर संस्करण की सम्पादक विद्वत्-समिति किसी मनोवैज्ञानिक भय से आक्रान्त रही है, क्योंकि वह जिसका दावा कर रही है वह कार्य किया नहीं है

और जो किया है उसको स्पष्ट शब्दों में कह नहीं रही है। उदयपुर सं. दावा कर रहा है कि "द्वितीय संस्करण में परिवर्तन या संशोधन करना उसका लक्ष्य नहीं था अपितु इसमें जहाँ कहीं असंगतियाँ (विसंगतियाँ) प्रतीत हो रही थीं..... उन स्थलों की संगति लगाना हमारा उदेश्य था" (पृ. 'ड.')। अब देखिए, २००० के लगभग अशुद्धियों का संशोधन इन्होंने किया है, सम्पादकीय में ६-१० अशुद्धियों के शोधन विधि के शीर्षक दिये हैं, फिर भी उन्हें ' असंगति' नाम दे रहे हैं ! अर्थात् 'असंगति' शव्द की आड़ में शुद्धि-पर शुद्धि कर रहे हैं किन्तु 'शुद्धि' का नाम लिखते-कहते डर रहे हैं!! अब इन बड़े-बड़े दश विद्वानों को 'असंगति' और 'शुद्धि' के अर्थ का अन्तर भी बताना पड़ेगा क्या?

<u>मीमांसा</u>- मित्र डा. महोदय! अब इन बड़े-बड़े विद्वानों को 'असंगति' और 'शुद्धि' के अन्तर को भी बता दीजिए। समित्पाणि होकर आपके चरणों में सीखने के लिए अज्ञ बालक की तरह,इन विद्वानों के भेजने के लिए, मैं विनम्र प्रार्थना कर सकता हूँ। आप अपनी अनुमति तो प्रदान कर दीजिए। तब तक के लिए असंगति और अशुद्धि के अन्तर को इस प्रकार प्रकट करते हैं। **जो विषय ऋषिमुनियों वा वेद के अनुसार सैद्धान्तिक दृष्टि से अयुक्त हो, वह अशुद्धि कहाती है। तथा उस अयुक्त को हटाकर युक्त के द्वारा संशोधन शुद्धि कहाती है।** इसके अतिरिक्त ऋषिमुनियों के वे वेदादि सत्य शास्त्रों में प्रतिपादित वचन जिनमें गूढ़ अभिप्राय प्रयत्न से भी किसी साधारण अल्पश्रुत पंडित से न संगत हो रहा हो, वह **असंगति**, तथा किसी पारोवर्यवित् वेदज्ञ पंडित से शास्त्रान्तरों के वचनों से संगत कर दिया जाय, वह **संगति** कहाती है।

महर्षि द्वारा लिखित 'इसी प्रकार पाणिनि महर्षि ने सहस्रश्लोकों के बीच में अखिल शब्द, अर्थ और सम्बंधों की विद्या प्रतिपादित कर दी है।' इस लेख से इस उदयपुर संस्करण में की गई टिप्पणी व्यर्थ है। सम्भवतः कहना कुछ चाहते हों और कह कुछ गए। वास्तविकता तो यह है कि किसी गद्यग्रन्थ का परिमाण कहने के लिए श्लोकों रूप आधार ही है।

(क) पृ.४६ पर, " चतस्रोऽवस्था की संगति हिन्दी-पाठ से कैसे लगेगी? २५ वें वर्ष के अन्त से 'यौवन' अवस्था आरम्भ और २५ वें वर्ष से ही लेके 'सम्पूर्णता' अवस्था कैसे संभव है?

मीमांसा- चतस्रोऽवस्था - इस सूत्र की संगति इस प्रकार लगेगी!

१६ वें वर्ष से लेकर २५ वें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की बढ़ती होती है। २५ वें वर्ष के अन्त और २६ वें वर्ष के आदि में युवावस्था का आरंभ होता है। अब रही सम्पूर्णता- सो यह वहीं से शुरू होगी-जहाँ बढ़ती समाप्त हुई थी- बढ़ती २५ वें के अन्त तक हुई, अतः वहीं से अर्थात् २५ वें वर्ष अर्थात् इसके अन्त से ४० वें वर्ष पर्यन्त पुष्टि होती है। भाई जी। बढ़ती के बाद पुष्टि से युवावस्था प्रारम्भ होती होती जो ४० वें की

सम्पूर्णता पर्यन्त चलती है। सम्पूर्णता का अर्थ ही सांगोपांग शरीरस्थ सकल धातु की पुष्टि से है।

(ख) पृ. ७० पर, गान्धर्ववेद, अर्थवेद की शिक्षण अवधि एक दिन भी नहीं है। आपने भी नहीं बताई। यदि इनकी अवधि पूर्व अवधियों के समान संशोधित कर भी दी जाये तो ''समग्रविद्या प्राप्ति'' की अवधि ''बीस या इक्कीस वर्ष'' कैसे बनेगी? आपने दोनों में से कोई भी संगति नहीं लगाई?

मीमांसा- मैं समझता हूँ कि इस प्रकार आप संगति लगाने की बात करते हैं तब तो सत्यार्थ प्रकाश स्वरूप भाव-भाषादि के साथ समाप्त हो जावेगा। आपने आजकल की तरह पढ़ने पढ़ाने वालों की दृष्टि से तो यह प्रश्न किया है। लेकिन पूर्णविद्या वाले जितेन्द्रिय अनूचान आचार्य पुरुषों के द्वारा ब्रह्मचारी पढ़े, तब उसके लिए उतने समय में इनका अभ्यास हो जावेगा। जब ६ वर्षों के भीतर चारों ब्राह्मण तथा चारों वेदों को स्वर, शब्द, अर्थ सम्बंध तथा क्रिया सहित पढ़ लेगा तब इसमें पृथक् से समय की आवश्यकता नहीं। चारों ब्राह्मणों में साम भी है। चारों वेद भी गान विद्या में अनुसार ही हैं। क्रिया के अर्न्तगत सब कुछ आ जाता है। इस प्रकार की संगति लगाना समिति का उदेश्य नहीं था।

(ग) पृ. ३२५, क्या आप सिद्ध कर सकते हैं कि 'गीतगोविन्द' के रचयिता जयदेव का भाई बोपदेव (बोबदेव) था? यह इतिहासाधारित प्रसंग है, ध्यान रखिए।

मीमांसा- ऋषि सन्देह योग्य नहीं होते, क्योंकि उपकार करने की इच्छा से वह कहते और लिखते हैं- अतः उनका कहा वा लिखा हुआ प्रामाण्य करने योग्य होता है। सिद्धांत अथवा इतिहास विद्या हो, वे निश्चयात्मक ज्ञान ही कराते हैं। अगर आपको योग्य है कि यह तथ्य गलत है, तब वह अन्वेषणीय होगा। पर ऋषि सदा मान्य होते हैं।

(घ) पृ. २४४-२४५, एक स्कूल का बालक भी इस असंगति को पकड़ लेता है और त्रुटि का समाधान पूछता है, किन्तु विद्वत्-समिति के दश प्रकाण्ड पंडितों को यह असंगति नहीं दिखाई दी, या देखकर उसको अनदेखा कर दिया गया।

मनुष्यों की दसवें वर्ष तक बाल्यावस्था। पच्चीसवें वर्ष तक कुमारावस्था। उसके पश्चात् छब्बीसवें वर्ष से युवावस्था का आरम्भ पुरुष का और सत्रहवें वर्ष से कन्या की युवावस्था का आरम्भ होता है.................।'

ऋ.१.१५५.६ (महर्षि कृत भाष्य)

(यौवन १६ वर्ष से प्रारम्भ लिखने वाले व महर्षि के ग्रन्थ में घुसेड़ने वाले ध्यान दें)

जड़ बुद्धि(छात्र) जितना एक वर्ष में पढ़ता है उतना बुद्धिमान् एक दिन में ग्रहण कर सकता है।

ऋ.१.१६१.१३ (महर्षि कृत भाष्य)

यहाँ पाँच मुक्तियों की गणना है किन्तु कुल योग उनका 'चार' लिखा है। कुछ पंक्तियों के बाद चार की गणना है और 'चार' ही कुलयोग हैं। इस असंगति या अन्तविरोध का न तो उदयपुर संस्करण ने उत्तर दिया और न संशोधन किया।

मीमांसा- मित्रवर! पौराणिक लोगों ने पाँच मुक्तियाँ भी लिखी हैं, परन्तु निष्कर्ष रूप में एक को अनादृत किया है। अतः चार ही शेष बचीं। उनका वर्णन कर दिया तथा वेद विरुद्ध मतखण्डन में भी सीधी चार ही मानकर उनका वर्णन किया है। मित्र! अतः इसमें कुछ भी पृथक् से लिखने की आवश्यकता नहीं थी।

मुझे आपसे एक बात कहनी है प्रथम इसमें तो कोई खास नहीं है। और अगर है भी तो प्रियता का अभाव कैसे ? हम आपसे निवेदन करते हैं कि आप दावा कर सकते हैं कि आपने जो लिखा है, वह सब युक्तियुक्त है। अगर युक्तियुक्त है तो आप साधारण मनुष्य नहीं ऋषि संज्ञा को प्राप्त अद्भुत व्यक्ति हैं। एक स्कूल का बालक भी असंगति पकड़ लेता है। आपको सिवाय स्कूल के कुछ दिखाई नहीं देता। वहीं बच्चों वाली बुद्धि, बच्चों वाली हल्की भाषा प्रयोग भी की है। अच्छी बात नहीं।

(ड.) पृ. २६१, विद्वत्-समिति ने यह नहीं स्पष्ट किया कि यह कहां लिखा है कि व्यास का निवास अमेरिका था? और यह भी स्पष्ट नहीं किया कि किस स्थान पर था और क्या वास्तव में था? सत्यार्थप्रकाश में महाभारत के उद्धृत प्रसंग में तो सुमेरू (हिमालय) पर्वत पर लिखा है। यह भी समाधान की अपेक्षा रखता है कि शुकाचार्य को मिथिला आते हुए 'यहूदी' कैसे मिल गये? कहां और किस इतिहास में लिखा है कि यहूदियों को 'हूण' कहते हैं?

मीमांसाः- व्यास का निवास अमेरिका था, यह कहां लिखा है? इसको स्पष्ट करने की आवश्यकता भी नहीं थी। क्योकि इन श्लोकों का प्रसंग भी उसी सन्दर्भ में है। ये श्लोक व्यास-शुक सम्वाद के ही हैं। अगर नहीं - तो इन श्लोकों के स्वतन्त्र अर्थ कैसे और क्या करोंगे? किस स्थान पर था और क्या वास्तव में था ? मित्रवर! यह खोज आपकी ही हो सकती है कि किस शहर के, किस मुहल्ले में, किस मकान में निवास था। वास्तविकता और अवास्तविकता भी आपके ही वश की बात है। हम यह जानते हैं कि प्राचीन इतिहास तथ्यों पर आधारित सम्पूर्ण संसार के लोग यहाँ पर शिक्षा लेने आते भी थे और यहाँ के विद्वान्, ऋषि-मुनि शिक्षा देने जाते भी थे। धर्मोपदेश के लिये ऋषि पुलस्त्य आंध्रालय (आस्ट्रेलिया) में वहां राजा तृणबिन्दु के यहाँ गए ही थे और उनकी पुत्री से उनका विवाह हुआ। उससे विश्रवा हुआ, जिसका पुत्र रावण था। उद्दालक मुनि अमेरिका में प्रचार के लिए निवास करते ही थे। ऐसे ही व्यास जी भी अमेरिका प्रचार के लिए ही गए थे।

वर्तमान के इतिहास में इसके साक्ष्य ढूंढ़ने की आवश्यकता है तो ढूंढ़िये। पर शक की गुंजाइश कैसे? एक पंक्ति भगवान पतन्जलि के महाभाष्य की इस प्रसंग में लिख रहा हूँ

कृपया उसका अर्थ समझा दें। फिर बतायें कि किस इतिहास में लिखा है ? 'प्रागदर्शात् प्रत्यक् कालकवनात् दक्षिणेन हिमवन्तमुत्तरेण पारियात्रम्'

(च) डा. साहब- (च) एक लाख का पुरस्कार लें- पृ. ४४७ पर विद्वत-समिति ने "भुड.क्ते न केवली" श्लोक के महाभ्रष्ट अर्थ का संशोधन करके प्रशंसनीय कार्य किया है, किन्तु पृ. ४०७ पर "बौद्धानां सुगतो देवो" के महाभ्रष्ट अर्थ को महाअशुद्ध छोड़ दिया। यदि आप अपने श्लोक और श्लोकार्थ को मूलपाठ, बौद्धों के चार तत्वों और संस्कृत पदार्थ के अनुसार शुद्ध सिद्ध कर दें, तो मैं विद्वत्-समिति को एक लाख रुपयों का पुरस्कार देने की घोषणा करता हूँ। साहस हो तो विद्वत्-समिति स्वीकार करे, नहीं तो यह स्पष्ट करे कि ऋषि दयानन्द को लांछित करने वाले पाठ को आपने स्वीकार्य क्यों माना ? इस प्रकार के पाठ छापकर न्यास ने श्रम, समय, जन-धन का अपव्यय क्यों किया?

मीमांसा- मित्रवर! डा. महोदय! आपके व्यक्तित्व के इस पार्श्व से यह जाना सकता है कि 'मैं' देखने में बहुत छोटा सा है किन्तु वस्तुतः यह बहुत बड़ा है। क्योंकि, यह अपने व्यक्तित्व की रक्षा के लिए अच्छों-अच्छों को धूल चटाने के लिए अकेला खड़ा हो जाता है। आखिर 'मैं' मैं ही है, जो सबके साथ बाँधने वाली समता का जाल तोड़कर अकेला दिखाई देता है। ' मैं' अद्वितीय है और सबसे अतुल्य है। विश्व की चुम्बकीय शक्तियों के आकर्षण की अवहेलना कर जब 'मैं' अपना स्वरूप प्रदर्शित कर सकता है तो ये विद्वान् आपके सामने आखिर किस हैसियत में हैं ? इससे आप क्या प्रदर्शित करना चाहते हैं। अगर इसकी प्रतिक्रियास्वरूप आपसे कोई सत्यार्थ प्रकाश में से ही कुछ पूछकर २ लाख रुपये का पुरस्कार देने की घोषणा करे-तब ? समस्त दम्भों में सबसे अधिक भयंकर दम्भ विद्या का होता है जो एक क्षण के लिए स्थाई होता है। 'विद्यादम्भः क्षणस्थायी'। अस्तु!

आपने अपने परामर्श व सलाह से तैयार करवाये शुद्धतम संस्करण, जिसमें एक भी अशुद्धि नहीं है, उस पर एक लाख के पुरस्कार की घोषणा क्यों नहीं की। उसमें भी तो यही पाठ है। फिर यह आक्रोश किस पर आप दिखा रहे हैं? रही बात रफ प्रति की तो उसमें भी यही है। तब क्या करोगे?

ऐसा करो मित्र ! आप अपना एक ग्रन्थ इस सत्यार्थ प्रकाश के विरोध में ही लिख दीजिए उसमें आपकी पूर्णता, सर्वज्ञता, सर्वान्तर्यामिता के दर्शन करने का सौभाग्य मिलेगा।

डा. साहब -(छ) दश विद्वानों की समिति ने इस परस्पर विरोधी, हास्यास्पद विसंगति और अशुद्धि का न तो कोई समाधान किया, न संशोधन किया कि एक लोम के खण्ड़ों का जैनोक्त कुलयोग पृ. ४२० पर २०६७१५२ है और पृ. ४५६ पर २०५७१५२ है। चमत्कार देखिए, दोनों स्थलों पर दोनों ही कुलयोग अशुद्ध हैं। यहाँ विद्वत्-समिति ने

"मूलस्वरूप को अक्षुण्ण" वास्तव में रखा है, सम्पादन में अपने विवेक का लेशमात्र भी हस्तक्षेप नहीं होने दिया। अब हस्तक्षेप करेंगे क्या?

मीमांसा- आपके द्वारा एतद्विषयक इसे परस्पर विरोधी, हास्यास्पद कहना, ऋषि दयानन्द का मजाक उड़ाना है। जो अपने ऋषि मुनियों का उपहास करता है, उसको शास्त्र क्या मानता है? यह लिखने की आवश्यकता नहीं। यहाँ पर एक लोम के खण्डों का योग नहीं है अपितु एक बाल के एक अंगुल बाल के सात-सात बार टुकड़े करने पर जो कुल टुकड़े हुए, उनका योग है। जैनियों की इस संख्या को बोलने के कारण गलत लिखा गया है। बीस लाख सत्तानवे सहस्र एक सौ वावन की जगह बीस लाख सत्तावन सहस्र एक सौ वावन लिख गए । सत्तानवे सहस्र का सत्तावन सहस्र अथवा सत्तावन सहस्र का सत्तानवे सहस्र छपने में ऐसा लिखा जा सकता है। पर आप कह रहे हैं कि दोनों कुल योग भी गलत हैं तो जैनियों की की गई गणना गणित रीति से कौनसी शुद्ध है? कृपया इसे शुद्ध करने का प्रयास भी मत कीजिए। ऋषि इसकी समीक्षा में स्वयं लिखते हैं-

अब देखिए! इनकी गिनती की रीति। एक अंगुल प्रमाण लोम के कितने खण्ड़ किए, यह कभी किसी की गिनती में आ सकता है ? और उसके उपरान्त मन से खंड कल्पते है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि पूर्वोक्त खण्ड हाथ से किए होंगे। जब हाथ से न हो सके, तब मन से किए। भला यह बात कभी संभव हो सकती है कि एक अंगुल रोम के असंख्य खण्ड हो सकें?

डा. साहब -(५.६) ऐसी ही अनेक विसंगतियाँ अर्थों के सम्बन्ध में विद्यमान हैं जिनका कोई समाधान विद्वत्-समिति ने नहीं दिया। बारहवें समुल्लास में पृ. ४१३-४१५ पर जैनियों के खण्डन विषयक 'तौतातिक-उक्त' श्लोकों को पूर्वपक्ष अर्थात् मण्डन में रखकर कबतक कबूतर की तरह आँखें बंद किये रहेंगे ? किसी संकलनकर्त्ता लेखक की करतूत को महर्षि के कलंक के रूप में क्यों स्वीकृत किया जाये? क्या वह कार्य "सश्रद्ध नमन" करने का है?

मीमांसा- सम्मान्य डा. महोदय! आपकी बुद्धि सदा प्रतिकूलगामिनी क्यों है? क्या वाममार्ग स्वीकार कर लिया है? देखिए मित्र! यहाँ पर जो आपने लिखा है कि 'तौतातिक-उक्त' श्लोक पूर्वपक्ष अर्थात् मण्डन में रखकर कब तक कबूतर की तरह आखें बन्द किये रहेंगे। कबूतर तो बिल्ली के भय से आँखे बंद कर लेता है। इन विद्वानों को किस भय से आँखें बन्द करने की बात कर रहे हैं ? आप आँखे बंद किये ही रहिये, क्योंकि आपकी समझ से यह प्रसंग दूर हो गया है। आप स्वयं कह रहे हैं कि जैनियों के खण्डन विषयक 'तौतातिक श्लोक हैं। तो मित्र! फिर खण्डनीय पक्ष को प्रथम पक्ष बनाना ही होगा। उसके बाद इस खण्डनीय तौतातिक श्लोकों के आख्यान= कहे हुए का प्रत्याख्यान करना ही होगा। जैसा कि ऋषि ने आगे चल कर इसका प्रत्याख्यान= खण्डन किया है। आपने यह कहकर कि पूर्वपक्ष=अर्थात् मण्डन होता है, कमाल कर

दिया। अगर यह मण्डनात्मक पक्ष होता है तो फिर तौतातिकों के इस कथन को स्वीकार कर लीजिए! काश! अगर आमने सामने होकर बात करते, तब इसका मजा ही कुछ और होता है। वास्तविकता यह है कि दर्शन समझना आपके वश की बात है भी नहीं। तभी तो ' न स्वभाव सिद्धिः-आपेक्षिकत्वात्' को समाधान पक्ष का सूत्र लिख डाला। साधारण पाठक या जनता इस वास्तविकता को थोड़ा ही समझ सकती है, वह तो सूत्र देखकर ही 'वाह' कर उठेगी! पर विद्वान् इस मूर्खता पर 'आह' कर उठेगा। वाह दार्शनिकता। फिर यह दम्भ।

इसके अलावा सम्मान्य डा. महोदय की अत्यन्त साधारण बातें जिसको सामान्य पाठक अपने आप समझ लेते हैं, मीमांस्य नहीं हैं। अतः उस पर अब कुछ नहीं लिखा जा रहा है।

डॉ. साहब सत्यार्थ प्रकाश आदिम युग की ओर- एक विषय जो अत्यन्त गंभीर वा विवेच्य है कि सर्त्याथ प्रकाश आदिम युग की ओर= अर्थात् पीछे की ओर ले जाया जा रहा है, उस समय भाषा अपरिष्कृत थी, सवा सौ वर्षो में भाषा ने अपनी विकास यात्रा में अनेकों सुधार किए हैं, संदेहयुक्त व अपरिष्कृत जिस शैली को हिन्दी व्याकरण त्याज्य घोषित कर चुका है, उसको अपनाकर सत्यार्थप्रकाश का गौरवमान घटाया है।

मीमांसा-वर्तमान आधार पर भाषा का विकास या परिष्कार कहना बुद्धि का विग्लापन मात्र है। संसार में यह नियम भाषा के विस्तार में पाया ही नहीं जाता है कि परिष्कार से भाषा बढ़कर समृद्ध बनती है। वस्तुतः भाषाएँ संकोच और अपभ्रंश से बढ़ती हैं और बनती हैं। भाषा के ज्ञान के विकास में विकासवाद का प्रवेश करना भी सर्वथा सारहीन है। विकास नहीं, संकोच वा ह्रास पाया जाता है।

सृष्टि के आदि में मानव ने पृथ्वी पर अवतरण कर बोलने और समझने में सामर्थ्यता प्राप्त की। यदि बोलने की शक्ति थी तो यह मानना पड़ेगा कि वर्ण भी थे। यदि यह माना जावे कि वर्ण नहीं थे,तो सिद्ध करना पड़ेगा कि मनुष्य आदिम अवस्था में गूंगे थे। यदि गूंगा था तो फिर बोलने वाला नहीं हो सकता। यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि यदि मनुष्य के कर्ण थे तो ध्वनियाँ भी थीं, जिनको वह सुन सकता था, नहीं तो बहरा ही होता। शब्द दो ही प्रकार के होते हैं- एक ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक। अतः आदिम मानव में बोलना और समझना ये दोनों शक्तियाँ जिसमें होती हैं, उस वाक् शक्ति से युक्त था। समझना और विचारना ज्ञान का द्योतक है। और संसार में कोई ज्ञान बिना भाषा और भाषा बिना ज्ञान के नहीं रह सकते। अतः कह सकते हैं कि बाह्य विचार व ज्ञान का नाम भाषा है और आन्तरिक भाषा वा ज्ञान का विचार है। भाषा और ज्ञान साथ-साथ रहते हैं, यह अटल सिद्धान्त है, अतः आदिम मानव के पास ज्ञान और भाषा भी साथ-साथ आए थे। वह केवल वेद भाषा ही थी जो पूर्ण ज्ञान से युक्त थी। अब इस वेद भाषा में सब शक्तियाँ विद्यमान थीं- आगे समस्त भाषाएँ इसी से उत्पन्न होती हैं। उत्पन्न होना भाषा का विकास नहीं अपितु संकोच, अपभ्रंश और म्लेच्छित होकर

ह्रास को प्राप्त होती हैं। इसी को भाषा वैज्ञानिक विकास का नाम देते हैं। भाषा का विकास होता है, वस्तुतः यह भी एक भूल-भुलैया है। विज्ञान वा परिष्कार वा सुधार का नाम देना डा. साहब जैसे व्यक्तियों की मनः प्रसूत निराधार कल्पना है।

जब भाषा का शैशव काल था- अपरिष्कृत रूप था तब ऋषि ने भाषा को अपना सहारा देकर उँगली पकड़कर चलाना पूर्ण रूप से सिखा दिया। ऋषि ने भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध करके भाषा की परिपाटी सुधारने के लिए सत्यार्थ प्रकाश प्रकाशित किया। इस भाषा में ज्ञान और विचार दोनों सम्पूर्ण रूप से सम्मिलत हैं। विचारों शब्द और अर्थ की सम्पृक्ति शब्द और अर्थ की प्रतिपत्ति के लिए ही होती है। ऋषि लोग पहले अर्थ का साक्षात्कार करते हैं तदनन्तर शब्द। जिससे शब्द समस्त सुधारों में समर्थ होकर, व्यर्थ नहीं होते हैं।

अतः सत्यार्थ प्रकाश की भाषा का परिवर्तन परिवर्द्धन मानो भाषा को अर्थ भाव सम्पृक्त विहीन भाव-भ्रष्ट करना ही है। सत्यार्थ प्रकाश की भाषा में ज्ञान या विचार सुगुम्फित हैं- **जो पूर्ण परिष्कृत हैं।** अब उससे परिष्कार करना तो अपरिष्कृत करना ही होगा।

हमारा निवेदन है कि मौलिक भाषा के शुद्ध रूप को स्वीकार करने में, हमारा गौरव है।

विज्ञापन- मैं विज्ञापन करता हूँ कि आदरणीय डॉ. सुरेन्द्र कुमार को मनुस्मति भाष्य तथा अन्य लेखन पर आमुख सामुख होकर वाद करने के लिए आह्वान् करता हूँ। जब वह कहें तो मैं अपने कार्यक्रम छोड़कर निश्चित स्थान पर आने के लिए तैयार हूँ।



सत्यासत्य के स्वयमेव निर्णयार्थ एक बार 'मानक संस्करण' स्वयं पढ़ें

आर्यभाषा के जन्म काल में जो लेखक भाषा को शब्द या वाक्य रचना का परिधान पहना रहे थे, जिनमें महर्षि दयानन्द सरस्वती का स्थान प्रमुख था, उनकी भाषा आधुनिक रूपान्तर का परिधान पहनाकर बदली जा रही है तो भाषा के प्रथम या स्वरूप खोजियों को भाषा का वह आदिम रूप तो सर्वथा अलभ्य हो जायेगा तथा भाषा के इतिहास में उदाहरणीय भी नहीं रहेगा, तब उसे मिटाने की शपथ इन्होंने क्यों खाई है ?

-आचार्य विशुद्धानन्द जी मिश्र

'ओ३म्'

सत्यार्थ प्रकाश के मानक संस्करण की निन्दा का उत्तर

-वेदप्रिय शास्त्री

परोपकारी पत्रिका में दो प्रसिद्ध आर्य विद्वानों ने उदयपुर से प्रकाशित मानक संस्करण की निन्दा की है और विद्वत् समिति के विद्वानों की भर्त्सना भी की है, मानो इन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के साथ कोई बड़ा अनर्थ कर डाला हो। ये दो विद्वान् हैं 'पंडित विरजानन्द जी दैवकरणि' तथा 'डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी'। इन्होंने जो भी स्वलेखों में लिखा है वह इतना स्तरहीन है कि एक ही शब्द उसके लिए उपयुक्त लग रहा है,पर शिष्टाचारवशात् नहीं लिख रहा,वरना इनमें और हममें क्या भेद रहेगा? श्री विरजानन्द जी वही हैं जिनके ऊपर सत्यार्थ प्रकाश को विकृत करने का आरोप अनेक प्रबुद्ध और ऋषि भक्तजनों ने लगाया है। श्री विरजानन्द जी दैवकरणि सम्भवतःऐसा समझते होंगे कि मानक संस्करण को पाखण्ड लिख देने से उन्हें उनके द्वारा किए गए पापों से छुटकारा मिल जायेगा और वे मोक्ष को प्राप्त कर लेंगे। यद्यपि उनको महापुरुष बनाने के लिए उनके योजक मित्र ने अभी कुछ समय पूर्व ही उनका परोपकारी के पिछले आवरण पत्र पर बड़ा भारी चित्र छापा है। परन्तु हमें नहीं लगता कि ये महापुरुष बनकर मुक्ति लाभ कर सकेंगे। इनसे इतना ही निवेदन है कि -

किसी की आँख का तिनका तुम्हें झट दीख जाता है।
तुम अपनी आँख के भीतर घुसा शहतीर तो देखो।।

दूसरे विद्वान् हैं डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी'। ये ऐसे हैं कि इनसे कुछ भी लिखवा लो। मित्रता निभाने और दम्भ को प्रदर्शित करने के लिए ये किसी की भी मिट्टी पलीद कर सकते हैं। चाहे रजस्वला को पवित्र और स्पृश्य तथा यज्ञ कराने योग्य सिद्ध करना हो,चाहे ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणियों को ऋत्विक बनाने के पक्ष में हो,ये ऐसा गजब का लिखते हैं कि ऋषि दयानन्द को भी उठाकर ताक पर रख देते हैं। इसी कारण इनका लेखन महत्वहीन होता है। ये भी नियोजित होकर लिखा करते हैं। अतः इनके द्वारा मानक संस्करण का सच उजागर करना अप्रत्याशित नहीं है। किसी की समीक्षा लिखना कोई बुरी बात नहीं है। परन्तु वह अच्छी नीयत से सत्य- सत्य और शिष्टतापूर्ण ढंग से लिखनी चाहिए। उक्त दोनों विद्वानों ने ऐसा नहीं किया। बहुत ही ओछेपन पर उतर आये हैं । इस द्वितीय संस्करण को शुद्ध किए गए मानक संस्करण सत्यार्थ प्रकाश में मुश्किल से पाँच त्रुटियाँ रह गई हैं जो इतने बड़े कार्य की दृष्टि से असंभव नहीं हैं।

प्रेस कार्य से जुड़े लोग इसे समझ सकते हैं। समिति के विद्वान् भी कोई परमात्मा नहीं हैं,इनसे भूल हो जाना संभव है। परन्तु इन दोनों ने तो ताड़ ही बना दिया है। हमसे पूछो तो हम यह कहते हैं कि उक्त दोनों ही विद्वान् मानक संस्करण की आलोचना के योग्य ही नहीं हैं, क्योंकि ईर्ष्या,द्वेष और पक्षपात-युक्त हैं।

श्री विरजानन्द जी दैवकरणि से हमारा कहना है कि ...

'सूप बोले तो ठीक भी है,छलनी (चालनी) क्या बोलती है,

जिसमें पहले से ही बहत्तर छेद हो रहे हैं।'

यह तो हमारा प्रथम संस्करण ही है,जो आपके कचरा संस्करणों से लाख गुणा उत्तम है। जो लोग अनेक संस्करण निकाल कर भी सत्यार्थ प्रकाश को शुद्ध न बना सके,उसकी दुर्दशा कर डाली,वे हमारी त्रुटियाँ किस मुँह से प्रदर्शित कर रहे हैं? फिर भी हम उक्त दोनों महाविद्वानों को धन्यवाद देते हैं, उनके आभारी हैं कि इन्होंने किसी भी भाव से सही'मानक संस्करण' को पढ़ा तो सही। हमारी त्रुटियाँ बताने का श्रम किया। हमें प्रसन्नता है कि इससे हमारा अगला संस्करण और अधिक शुद्ध निकल सकेगा।

निन्दक नियरे राखिए आंगन कुटी छवाय ।

बिन पानी साबुन बिना,निर्मल करे सुभाय।।

हम इसी भाव से आपकी समीक्षा, आलोचना, निन्दा और भर्त्सना को शिरोधार्य कर रहे हैं। आप दोनों से हमारा कहना है कि 'मानक संस्करण' पर कुछ परामर्श देने और त्रुटियाँ दिखाने से पूर्व आप दोनों बैठकर परामर्श या विचार विमर्श तो कर लेते। आप अपने द्वारा सम्पादित सत्यार्थ प्रकाश के सैंतीसवें, अड़तीसवें और सर्वोत्तम उनचालीसवें संस्करणों को निहार तो लेते। श्री विरजानन्द जी दैवकरणि की नैया को पार लगाने के लिए डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी ने अपनी सुदृढ़ भुजाओं और परिपक्व मस्तिष्क का सहारा दिया, फिर भी वह नैया पार न हो सकी, भँवर में डूब ही गई। अतः

इब्तदाए इश्क है,रोता है क्या। आगे आगे देखिए,होता है क्या।।

यह मानक संस्करण बनाकर हमने स्वेच्छाचारियों की नाक में नकेल डाल दी है,देखते हैं कि अब कैसे संशोधन परिवर्धन करते हैं।

श्री विरजानन्द जी दैवकरणि के द्वारा प्रदर्शित अशुद्धियाँ -मुखपृष्ठ पर 'सत्यार्थ प्रकाश' इस तरह असमस्त विसर्गरहित छपना तथा परमहंस परिव्राजकाचार्यादि का असमस्त रहना।

उत्तर –मुख पृष्ठ और कवर पृष्ठ बाद में बनने से हमारे द्वारा देखे नहीं गए, जो देखने वाले थे उन्हें इसका ज्ञान न होने से यह त्रुटि रह गई है। यह कोई बड़ी भूल नहीं है,न ही इससे सत्यार्थ प्रकाश की महत्ता में कोई फर्क पड़ता है। आप अपने संस्करणों का कवर पृष्ठ भी तो देख लेते, जहाँ यही भूल आपने भी कर रखी है।

२. भावोऽपिनश्यति सूत्र का शोधन–

उत्तर– यह सूत्र शुद्ध किया गया था, जैसा कि सम्पादकीय में लिखा भी है;परन्तु किसी प्रकार छपने में छूट गया है। अतः जानबूझकर या अज्ञानवश नहीं छोड़ दिया गया।

३. संख्या सुधार

उत्तरः– संख्या सुधार कर छापना कोई संशोधन नहीं है, न ही अपराध। हमने तो बताकर किया है,आपने बिना बताए।

४. 'पृ पालनपूरणयोः' से बने 'पृणाति' को 'प्रीणाति' करना।

उत्तरः– वस्तुतः 'प्रीञ्तर्पणे कान्तौ च' में बने पृणाति को काटकर प्रीणाति किया था। भूलवश ऊपर उपस्थित पृणाति को भी 'प्रीणाति'कर दिया गया । इसे सुधार दिया जावेगा।

परन्तु आपके संस्करण में 'प्रीञ्तर्पणे कान्तौ च' से बनने वाले प्रीणाति शुद्ध पाठ के स्थान में पृणाति अशुद्ध छप रहा है जो आपके व्याकरण ज्ञान की दाद दे रहा है।

५. स्त्र्यादि को हटाकर शरीरादि करना।

उत्तरः– यहाँ जो किया गया है, ठीक ही किया गया है। यहाँ न स्त्री की जरूरत है न पुरुष की है। आवश्यकता है अपवित्र शरीर की, सो कर दिया है। शरीर तो स्त्री–पुरुष दोनों के अपवित्र ही होते हैं।

६. वाड्.मनसे को वाड्.मनसी करना

उत्तर– वर्तमान में मनुस्मृति में यही पाठ है और शुद्ध भी है। जब पता मनुस्मृति का दिया गया है तो पाठ भी वही दिया जाएगा जो वहाँ उपलब्ध होगा। वाड्.मनसी किस सूत्र से बनता है,यह सुरेन्द्र जी से पूछ लेना। उनकी टीका में यही पाठ है।

७. 'दीर्घरोगी पुरुष की स्त्री'पाठ बनाना–

उत्तरः– द्वितीय संस्करण का पाठ है' गर्भवती से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष वा स्त्री से न रहा जाय...इत्यादि। अतः स्त्री को सार्थक करने की दृष्टि से 'दीर्घरोगी पुरुष की'पाठ उपयुक्त ही है। शेष सब अविचारणीय है । मात्र दो त्रुटियाँ ही हैं। एक पृणाति को प्रीणाति करना तथा दूसरी भावोऽपिनश्यति का शुद्ध न होना, बस ।

इतने बड़े काम में दो-तीन त्रुटियों को रह जाना कोई विशेष महत्व नहीं रखता। मानक संस्करण की मानकता पर कोई प्रभाव पड़ने वाला नहीं है। वह तो मानक ही रहेगा। एक छोटा सा शुद्धिपत्र बनाकर लगा देंगे। समस्या हल हो जायेगी। अगले संस्करण में इन छूटी हुई त्रुटियों को सुधार देंगे।

डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी के आक्षेपों पर विचार-

श्री सुरेन्द्र कुमार जी ने 'छोटा सा सच' मानक संस्करण विद्वत् समिति के अध्यक्ष आचार्य विशुद्धानन्द जी की सेवा में प्रस्तुत किया है,जो 'परोपकारी(पाक्षिक)' पत्रिका नवम्बर (द्वितीय) २०१० पृष्ठ ७०४ से प्रारम्भ होकर क्रमशः छप रहा है।

विदित हो कि आचार्य विशुद्धानन्द जी इस समय जराजन्य जीर्णता से ग्रस्त, अत्यन्त निर्बल और पढ़ने लिखने में असमर्थ हैं। उन्हें पता भी नहीं चलेगा कि किसने मेरी सेवा में क्या लिखा है। वे उत्तर भी नहीं दे सकेंगे, जब तक कि कोई उन्हें पढ़कर सुनावे नहीं और उनका दिया गया उत्तर लिखकर किसी पत्रिका में छपाए नहीं। अतः नखदन्त विहीन वृद्ध सिंह के समक्ष वीरता प्रदर्शन अशोभनीय है।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी को चाहिए था कि आचार्य श्री के समीप जाकर सन्मुख हो सब निवेदन कर देते और उत्तर भी ले लेते। पश्चात् पत्रिकाओं में छाप देते। अथवा मानक संस्करण के सम्पादक और समिति के संयोजक को सम्बोधित करके लिखते ।

परोपकारी नवम्बर (द्वितीय) २०१० पृष्ठ ७०४ पर (क) और (ख) क्रम से दो अशुद्धियाँ दर्शायी गई हैं। क्रमांक (क) में दर्शायी गई त्रुटि बिल्कुल ठीक है। परन्तु यह हमसे छिपी नहीं थी। हमने इस स्थान पर 'नहीं' को काटकर 'ही' किया था लेकिन वह हमारी संशोधन सूची में आने से किसी प्रकार बच गई, इसलिए पाठ अशुद्ध छप गया। प्रूफ पढ़ते समय भी ध्यान में नहीं आ पाया।

क्रमांक (ख) जिन वेदमन्त्रों को असंशोधित रखने की बात कही गई है, वे वेदमंत्र न होकर मन्त्रांश हैं और पृथक् पृथक् मन्त्रों के टुकड़े हैं। यथा'त्रयस्त्रिंशत त्रिंशता' ये दो मन्त्रों के हिस्से हैं। पहला अथर्ववेद काण्ड १०.७.२३,२७ का है दूसरे त्रिंशता में पूर्व का त्रयस् जोड़कर ही यजुर्वेद १४-३१ का मन्त्रांश दिया गया है। एक 'त्रयस्त्रिंशत्' है, दूसरा त्रयस्त्रिंशतास्तुवत है।

इसी प्रकार आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं' मन्त्रांश अथर्व ११.५.३ का है और 'ब्रह्मचारिणमिच्छते' पद अथर्व ११.५.१७ का है। 'ब्रह्मचारिणं' पद दोनों मन्त्रों में समान है। अतः ये वेदमंत्र न होकर वेदोक्त वचन के रूप में ही उद्धृत किए गए हैं,और शुद्ध ही हैं। जहाँ तक 'अतिथिर्गृहानुपगच्छेत्' की बात है यह अथर्ववेद में अतिथिर्गृहानागच्छेत्

है। परन्तु संभव है कि कहीं पर उपगच्छेत् भी हो। जैसे अथर्ववेद में 'अभयं मित्राद्' मन्त्र में'अभयं पुरोयः ' पाठ है,परन्तु संस्कार विधि में 'अभयं परोक्षात्' पाठ है जो राथह्टिनी के संस्करण में है। अतः **गृहानुपगच्छेत् को वैसा ही रखा है।** जहाँ तक तुलना की बात है,तो समान से दिखने वाले दो मंत्रों में **अर्थ की दृष्टि से** तुलना सर्वथा संभव है। अनेक मंत्र ऐसे हैं,जो थोड़े से शब्द भेद से एक जैसे ही हैं। यहाँ वेदमंत्रों के पाठान्तर का प्रश्न ही नहीं पैदा होता,आरोप व्यर्थ है। **आपके उनचालीसवें संस्करण में भी तो तुलना उपलब्ध हो रही है।**

अब परोपकारी दिसम्बर (प्रथम) २०१० पृष्ठ ७११ के प्रदर्शित पाठों पर विचार करते हैं। इस अंक में जो पाठांश दोषपूर्ण बताए गए हैं, उनके बारे में हमारा कहना है कि लेखक ने यहां वाक्यार्थ बोध के उन चारों कारणों आकाङ्.क्षा,योग्यता,तात्पर्य और आसत्ति की सर्वथा उपेक्षा करके व्यर्थ आरोप लगाए हैं,और इस दृष्टि से लेखक(महर्षि दयानन्द) के अभिप्राय से सर्वथा विरुद्ध कल्पना की गई है।

प्रदर्शित सभी पाठ,एक आध को छोड़कर, सभी संस्करणों में समान रूप से सैंकड़ों वर्षों से छपते आ रहे हैं,किसी ने भी ऐसे आरोप नहीं लगाए। **लगता है कि 'मानक संस्करण' पढ़ने के बाद डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी में दिव्य विलक्षण प्रज्ञा का उदय हो गया है,अन्यथा उन्होंने अपने मित्र दैवकरणि के संस्करण में इसका उपयोग क्यों नहीं किया?** फिर भी देखते हैं कि इनके आरोप में कितना दम है।

(ग) पृष्ठ १३१' इसी ध्यान योग से जो अयोगी अविद्वानों के दुःख से जानने योग्य,छोटे बड़े पदार्थों में परमात्मा....देखे।

उत्तर-यहाँ 'अविद्वानों के' से तात्पर्य 'अविद्वानों के द्वारा' है। आशय है- इसी ध्यानयोग से अविद्वानों के द्वारा प्राप्त दुःख से जानने योग्य गति, छोटे बड़े पदार्थों में परमात्मा की व्याप्ति तथा अपने आत्मा में परमात्मा की गति = व्याप्ति देखें। **यहाँ, अविद्वानों के दुःख से परमात्मा का ज्ञान होता है ऐसा अर्थ किसी प्रकार नहीं निकलता।**

(घ) सर्वव्यापक परमात्मा की सत्ता से जैसा कि अग्नि से लोहा,वैसे चेतन हो रहे हैं।

उत्तरः- यहाँ व्यापक की व्यापकता व्याप्य में आ जाने की बात कही गई है। जैसे लोहा, अग्नि के व्यापकत्व से युक्त हो जाता है, उसी प्रकार जड़ अन्तःकरण भी परमात्मा की व्यापकता से युक्त होकर चेतन हो जाते हैं, यह पूर्वपक्षी का प्रश्न है। कोई असंगति नहीं है।

(ङ.) पृष्ठ ४०३ जैसे सूर्यास्त होने में जार पुरुष परस्त्रीगमन और विद्वान् सत्याभाषण आदि श्रेष्ठ कर्म करते हैं।

उत्तरः- यहाँ मुद्रण लिपिकार ने कोई कबाड़ा नहीं किया और न ही सत्य बोलने की दिनचर्या निर्धारित की गई है। **केवल यह बताया गया है कि एक ही समय में भिन्न भिन्न प्रवृत्ति के लोग भिन्न भिन्न कार्य करते हैं।** यहाँ कोई भी हास्यास्पद भूल नहीं हुई,लेखक स्वयं हास्यास्पद हो गया है।

(च) पृष्ठ २१० ' यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था, अभाव न था।"

उत्तर :- उक्त पाठ देकर आपने छल से काम लिया है। उदयपुर संस्करण का पाठ इस प्रकार है। 'यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश,और जीवात्मा, ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था,अभाव न था।" **पाठ बिल्कुल शुद्ध है।** कोई नया वेदान्त नहीं लिखा गया। रही सत्यार्थ प्रकाश की दुर्दशा की बात सो उसका श्रेय भी इन्हीं श्रीमान् जी की मित्र मंडली और स्वयं इनको ही जाता है।

पुनः परोपकारी दिसम्बर(प्रथम) २०१० पृष्ठ ७१२ पर लिखते हैं:-

(क) उदयपुर संस्करण पाठ -' यह भूगोल सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है इसलिए भूमि घूमा करती है।'

आपने पूछा है कि इस पाठ को पढ़कर पाठक हँसे कि रोयें? भूगोल और भूमि में क्या अन्तर है ?

उत्तरः- हमारा कहना है कि यहाँ भी श्रीमान् ने छल किया है। उदयपुर संस्करण का सही पाठ ही नहीं दिया। वह इस प्रकार है। देखें पृष्ठ २२६ 'अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है। इसलिए भूमि घूमा करती है।'

श्रीमान् सुरेन्द्र कुमार जी ने 'अर्थात्' और 'जल के सहित' को उड़ा दिया है। विदित हो कि उक्त पाठ से पहले'आयं गौ....इत्यादि' वेदमंत्र हैं। उसी के लिए अर्थात् का प्रयोग है। ऊपर की पंक्ति मन्त्र का भावार्थ है जो प्रमाण स्वरूप है और नीचे की पंक्ति प्रश्न का उत्तर है। इनको इतनी सी भी समझ नहीं है? पाठक तो रोयेंगे कि नहीं,आप तो रो लीजिए।

(ख) 'तुम्हारी स्त्री, कन्या, पुत्रवधू आदि असमर्पित रह जाने से अशुद्ध रह गए वा नहीं? ....पुनः उनसे उत्पन्न तुम लोग अशुद्ध क्यों नहीं।' आक्षेप है कि क्या कोई अपनी स्त्री, कन्यादि से उत्पन्न होता है?

उत्तर- उदयपुर संस्करण का पाठ इस प्रकार है-'परन्तु तुम और तुम्हारी स्त्री, कन्या, पुत्रवधू आदि असमर्पित रह गए वा नहीं। ...पुनः उनसे उत्पन्न तुम लोग............ ....इत्यादि

यहाँ विचारणीय है कि ये तुम और तुम लोग कौन हैं ? ये गोसाई लोग हैं। गोसाई लोगों की स्त्री मात्र कन्या, पुत्रवधू आदि से ही यहाँ तात्पर्य है सो गोसाई लोग, अपनी स्त्रियों,कन्या पुत्रवधू आदि ही से उत्पन्न होंगे। आक्षेपकर्ता के यहाँ संभवतः पुरुषों के पेट से उत्पन्न होते होंगे। **यहाँ कुल स्त्रियों का कथन है।** भार्या या पत्नी का नहीं। स्त्री का अर्थ भार्या नहीं होता। आप बेशक माथा पीट लीजिए।

वही परोपकारी पृष्ठ ७१३

(क) 'जहाँ-जहाँ स्तुति प्रार्थना ....इत्यादि

उत्तरः- इस पूरे प्रकरण को ध्यान से देखिये। ऊपर प्रकरण तथा विशेषण नियामक उल्लिखित हैं। इसके साथ पढ़ने पर सही आशय प्राप्त हो जाता है।

(ख) जो अधर्म से रहित.................

धर्म अधर्म से रहित ही होता है। ऋषि की यह शैली अनेकत्र है। पाठ शुद्ध है।

(ग) ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर ..... वृद्ध हो गए...

उत्तरः- यहाँ पर पहले वृक्ष संशोधन हुआ था, परन्तु प्रेस हस्तलेख में वृक्ष को काटकर वृद्ध किया पाया गया। अतः वृद्ध ही रखा है, ठीक भी है।

(घ) पृष्ठ ३०७ 'उसने (परमेश्वर) ने शिव,विष्णु,गणेश,सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण कर,रामकृष्णादि अवतार लिए।

उत्तरः- श्रीमान् जी परमेश्वर ने विष्णु का शरीर धारण किया कि नहीं? रामकृष्णादि उसी विष्णु के ही तो अवतार थे। आप सचमुच महान् हैं। धन्य हो।

(ङ.) पृष्ठ १६०'(सन्धि) शत्रु से मेल अथवा उससे विपरीतता करे"।

उत्तरः-आपसे प्रश्न है कि क्या आपको युद्ध शास्त्र में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का अर्थ आता है? यदि आपको आता होता तो विपरीतता का अर्थ समझ जाते और आक्षेप न करते। बहुत ही घटिया स्तर पर उतर कर आक्षेप किए हैं। संधि दो प्रकार की, और दो प्रकार से होती है। एक तात्कालिक फल देने वाली,दूसरी भविष्य में फल देने वाली। एक संन्धि स्वयं कमजोर होने पर किसी के साथ की जाती है, दूसरी स्वयं को सशक्त बना शत्रु को विवश करके की जाती है। यही समान यान और विपरीत का अर्थ है। शत्रु से मेल करना एक प्रकार की संधि है और शत्रु को सन्धि के लिए विवश करना विपरीतता है।

आपने अपनी मनुस्मृति की टीका में इसी अर्थ को द्वितीय संस्करण से उद्धृत किया है। क्यों? स्वामी दयानन्द को नीचा दिखाने के लिए? उनचालीसवें संस्करण में बहुत ही कमाल का अर्थ किया है, आप स्वयं देख लें।

समानयान कर्मा संधि स्वयं के कमजोर होने पर होती है, इसमें स्वयं को कमजोर प्रदर्शित न करके, शत्रु के समान गतिविधि करते हुए मित्रता का प्रयास किया जाता है। दूसरी इससे विपरीत होती है।

पृष्ठ २६४ 'स्वयं आप अपना अधिपति...'

उत्तरः- यह पाठ वेदान्ती पूर्वपक्षी का वाक्य है। जो ब्रह्म होगा वह अपना और सबका अधिपति भी निश्चित होगा।

कुछ भी असंगत नहीं। आपने दिमाग पर ज्यादा जोर डाल दिया लगता है।

पृष्ठ १४६(साहस) विना विचारे,बलात्कार से..............

उत्तरः-साहस तो वही होता है जो बिना विचारे सहसा किया जावे। व्यर्थ बकवास की है।

पृष्ठ २६६ क्या अपने ही हाथ का खाना...................सबके साथ ....

उत्तर-यहाँ पर पूर्व में 'हाथ' का संशोधन किया गया था। बाद में छपने से रह गया है,विचारणीय है।

पृष्ठ १६६ सब भ्रान्तित्व और परिच्छिन्नतादिगुण...

उत्तरः-विरजानन्द जी ने 'सब' में से 'ब' को काटकर सभ्रान्तित्व कर रखा है, जो नितान्त भ्रष्ट पाठ है,भ्रान्तित्व ही गुण होता है सभ्रान्तित्व नहीं। आपने अपनी दिव्य प्रज्ञा को केवल भ्रान्तित्व के साथ 'सब को जोड़ने में लगाया है,आगे परिच्छिन्नतादि भी तो लिखा है, 'आदि' से आने वाले अन्य परमेश्वर से भिन्न जीव के 'सब' गुणों का ग्रहण किया है। सब लगा देना कोई दोष नहीं। व्यर्थ की बात का बतंगड़ बनाया है।

- स्वभावसिद्धि ....इत्यादि सूत्र विचारणीय है। विचार करना होगा।
- 'यमेन वायुना सत्यराजन' ये वेदमन्त्रांश हैं,एक वाक्य नहीं। पृष्ठ २४६में भी यमेन वायुना वेद में लिखा है,ऐसा पाठ है। वेद में कहाँ लिखा है,यह बताना चाहिए।

परोपकारी दिसम्बर (द्वितीय) २०१० पृष्ठ ७४८ पर डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी के लेख की आखिरी किस्त प्रकाशित हुई है। जिसका सार निम्नानुसार है।

१. उदयपुर संस्करण की विद्वत् समिति किसी मनोवैज्ञानिक दबाव में रही है,क्योंकि जो कार्य किया नहीं उसका दावा कर रही है और जो किया है उसको स्पष्ट शब्दों में कह नहीं रही। उसे असंगति और शुद्धि का अन्तर विदित नही है।
२. उसकी कथनी करनी में अन्तर है। उसने अनेक स्थानों में भाषा को बदला है।
३. वह इतिहास से अनभिज्ञ है।

४. सत्यार्थ प्रकाश को आदिम युग में पहुंचा दिया है।
५. दस विद्वानों ने यह कार्य नही किया,केवल आडम्बर के लिए नाम लिख दिए हैं।
६. डॉ. सुरेन्द्र जी ने यह लेख दूयमान होकर शोकाकुल अवस्था में लिखा है। लगभग पन्द्रह पृष्ठों के पूरे लेख में अस्सी प्रतिशत भाग इसी रोदन से भरा हुआ है,बीस प्रतिशत भाग में त्रुटियां प्रदर्शित की गई है।

विद्वत् समिति ने 'द्वितीय संस्करण' जो सम्वत् १६३६ में वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से छपा था,उसको आधार बनाकर,उसी पर कार्य किया है। समिति का उद्देश्य इसी द्वितीय संस्करण की असंगतियां,विसंगतियां और अशुद्धियों को दूर करना रहा है। **समिति ने यह सब कुछ किया है जो करणीय था। न कोई मनोवैज्ञानिक दबाव रहा,न ही कोई भय।** समिति ने जो कछ किया है, वह सब पीछे शुद्धि पत्र में दे दिया है। दो हजार शुद्धियों की बात करने वालों को यह बताना चाहिए कि इन दो हजार में से कौनसी और कितनी ठीक नहीं है।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी द्वारा दर्शायी त्रुटियों में अधिकांश ऐसी हैं जो हमने चिह्नित की हुई थीं परन्तु शुद्धिपत्र में आने से छूट गई हैं इसलिए वे छपने से रह गई हैं। दो तीन स्थानों पर अवश्य ही पाठ शोधन नहीं हुआ। परन्तु इतने बड़े कार्य में पांच सात त्रुटियां रह जाना कोई बड़ा अपराध नहीं है। सुरेन्द्र कुमार जी द्वारा दर्शायी गई त्रुटियां लगभग २५ हैं जिनमें २० व्यर्थ हैं व उनका संबंध मानक संस्करण से नहीं है।

परोपकारिणी सभा की ओर से छपाया गया सत्यार्थ प्रकाश का उनचालीसवां संस्करण डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी के परामर्श से छापा गया है,उसमें डॉ. साहब की बतायी लगभग सभी त्रुटियां और दोषपूर्ण पाठ विद्यमान हैं। ३६ वें संस्करण के अनेक पाठ तो नितान्त मूर्खतापूर्ण हैं। डॉ. साहब ने उस पर कभी कलम क्यों नहीं चलाई ? उसको पढ़कर दूयमान और शोकाकुल क्यों नहीं हुए? उदयपुर संस्करण का सच बताने के पीछे कोई और ही सच छिपा है। जिसने इनको इतने ओछेपन पर उतर आने को विवश कर दिया है। विद्वत् समिति को अपने कार्य पर कोई ग्लानि नहीं है। देखते हैं लोग इस संस्करण में कितनी भूलें दर्शाते हैं। जो वास्तविक होंगी उन्हें अगले संस्करण में ठीक कर दिया जायेगा। **परन्तु सत्यार्थ प्रकाश का यही द्वितीय संस्करण ही प्रामाणिक संस्करण होगा। कोई अन्य नहीं। समिति न रफ प्रति को 'सत्यार्थ प्रकाश' मानती है न मुद्रण प्रति को।** 'द्वितीय संस्करण' को ही मूल सत्यार्थ प्रकाश मानती है और उसे ही ठीक करने की पक्षधर है।

जहां तक सत्यार्थ प्रकाश पर राजनीति करने की बात है,सो उसका श्रेय आप लोगों को ही जाता है।

समिति को सर्वप्रथम उस आदिम संस्करण की आवश्यकता थी,जिससे उस जमाने की भाषा, शैली तथा लेखन प्रणाली का पता चलता हो। अतः समिति ने उसके आदिम स्वरूप को सुरक्षित रखा है। यह एक ऐतिहासिक कार्य हुआ है। समिति पर यह आरोप भी ठीक नहीं है कि उसने दूसरों की नकल की है। समिति ने बिल्कुल नये शिरे से वाचन करके पहले अशुद्धियों को चिह्नित किया है फिर उसे सूचीबद्ध किया है। मूल प्रति (रफ प्रति) व मुद्रण प्रति से मिलाकर देखा है,तब उपयुक्त पाठ निर्धारित किया है। डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी के अधिकांश आरोप युधिष्ठिर जी मीमांसक के संस्करण से लेकर लगाए हैं। यदि समिति ने नकल की होती तो कथित आरोप कैसे लग सकते थे? अन्य सम्पादकों ने पाठ परिवर्तित किए हैं और शोधन किया है परन्तु किसी को बताया नहीं। यदि वही पाठ मानक संस्करण के पाठों से मिलते हैं तो इसमें कोई क्या करे? सुरेन्द्र कुमार जी ने ही कौनसा अपनी अकल से त्रुटियां दर्शायी है,सब दूसरों की बताई हुई हैं। त्रुटियां तो प्रत्येक संस्करण में मिलती हैं, कौन है जो दावा करता हो कि मेरे संस्करण में कोई त्रुटि नहीं है। समिति के अध्यक्ष ने अपने प्राक्कथन में लिख भी दिया है कि समिति के विद्वान् भी सामान्य मानव हैं,अतः भूल संभव है। हम आर्य जगत् के सभी विद्वानों द्वारा दर्शायी गई त्रुटियों पर समिति में विचार करेंगे और उचित लगी तो ठीक करेंगे।

यदि डॉ.सुरेन्द्र कमुार जी पर्दे के पीछे का सच जानना चाहते हैं तो आर्य समाज हिसार में जाकर मई २००५ का आय व्यय देख लें वहां के पुरोहित जी से पूछ लें कि यहां १४ दिन तक कौन कौन से विद्वान् रहे थे। आर्य समाज द्वारा कुछ मानदेय व मार्ग व्यय भी दिया गया था उसका विवरण आय व्यय पत्रक में अवश्य मिल जायेगा।

उसके पश्चात् गुरुकुल आर्य नगर पहाड़गंज दिल्ली में जाकर भवभूतिजी और सत्यकाम जी व पंडित महेन्द्र पाल जी से भी पूछ लें कि वहां कौन कौन विद्वान् थे। वहां हम लोग २००५ में एक सप्ताह रहे थे।

उसके पश्चात् २००६ में अप्रेल माह में तीन दिन आर्य समाज नया बांस में रहकर कार्य किया था और २००७ व २००८ में उदयपुर में रहकर कार्य किया था वहां से भी मार्ग व्यय आदि का विवरण मिल जायेगा। पर्दे का सच बाहर आ जायेगा। सच पर पर्दा तो श्रीमान् जी की कम्पनी ही डालती है और दूसरों को नंगा करने में रुचि रखती है।

एक लाख का पुरस्कार- डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी ने पृष्ठ ४०७ पर 'बौद्धानां सुगतो देवो' के अशुद्ध अर्थ को शुद्ध कर देने पर एक लाख का पुरस्कार देने की घोषणा की है। यह मूर्खता की पराकाष्ठा है।

हम यह परामर्श देना चाहते हैं कि यह पुरस्कार आप अपने प्रिय मित्र विरजानन्द जी दैवकरणि को उनके द्वारा सम्पादित ३९ वें संस्करण के

चतस्रोवस्था के हिन्दी पाठ पर प्रदान कर दें। बड़ा ही दिव्य अर्थ किया है जो न मूल में है, न मुद्रण प्रति में है और न द्वितीय संस्करण में और न ही सुश्रुत के उस स्थान पर ही है जिसका पता अंकित किया है। हमारी इच्छा तो आप दोनों को पुरस्कृत करने की है परन्तु हमारे पास इतने रुपये ही नहीं हैं।

भिन्नतायुक्त संस्करण की वृद्धि क्यों की?

उत्तर- इस भिन्नता युक्त संस्करण की महती आवश्यकता थी। कुछ असंगतियों के रह जाने से संपूर्ण संस्करण अनुपयोगी नहीं हो जाता। आपके कचरा संस्करणों की अपेक्षा यह बहुत ठीक है।

पृष्ठ ४६ चतस्रोवस्था की संगति

यह संगति जैसे अब तक लगती आई है वैसे ही लगेगी । विशेष ज्ञान के लिए टिप्पणी पर लिख दिया गया है। देख लें।

पृष्ठ ७० गन्धर्व वेद,अर्थ वेद की शिक्षण अवधि-

यह अवधि बढ़ाने पर समग्र विद्या प्राप्ति की अवधि ३०-३१ वर्ष हो जायेगी। विचारणीय है।

पृष्ठ ३३५ गीत गोविन्द के रचयिता जयदेव का भाई बोपदेव था क्या?

उत्तर- यह आप पहले सिद्ध करें कि नही था।

पृष्ठ २४४ मुक्ति चार प्रकार की या पांच की।

मुक्ति तो चार ही प्रकार की मानते हैं और चार लिखी भी है। परन्तु कुछ लोग सारूप्य को चार में गिनते हैं और कुछ लोग सानुज्य को अतः दोनों की चर्चा कर दी गई है। कोई असंगति नहीं। स्वयं महर्षि दयानन्द सानुज्य को ही चार में गिनते हैं परन्तु पौराणिक सारूप्य को ।

जैनोक्त लोमखण्डों की गणना-आप गिनती करके लिख भेजना,वैसा ही कर देंगे।

पृष्ठ ४१३ तौतातिकों के श्लोक

यहां कोई असंगति नहीं है,पूर्व पक्ष को प्रस्तुत करते हुए यह दिखाया गया है कि तौतातित अर्थात् कुमारिल के अनुयायी मीमांसक लोग भी ऐसा ही मानते हैं। जैनियों की भांति वे भी किसी सर्वज्ञ ईश्वर को नहीं मानते। अतः दोनों का खण्डन एक साथ कर दिया है।

पाठ निष्कासन-अनावश्यक को निकालना ही चाहिए आवश्यक को जोड़ना ही चाहिए।

पृष्ठ ३३० दश प्रजापति को हमने दक्ष संशोधित किया है छपने में भूल हुई है।

विद्वत् समिति ने कोई पूर्वाग्रह नहीं पाल रखा। वहां हमारा उद्देश्य सत्यार्थ प्रकाश को सब प्रकार से अच्छा और शुद्ध बनाना है। वर्तमान में जो अशुद्धि शेष रह गई हैं जो कि अत्यल्प हैं, उसका एक शुद्धि पत्र तैयार करके, सभी पुस्तकों पर लगा दिया जायेगा।

□□□

सत्यासत्य के स्वयमेव निर्णयार्थ एक बार 'मानक संस्करण' स्वयं पढ़ें

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी का सच

–डॉ. रघुवीर वेदालंकार

'परोपकारी' के नवम्बर तथा दिसम्बर २०१० के अंकों में डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी ने 'मानक संस्करण का सच' के रूप में जो कुछ पाण्डित्य प्रदर्शन किया है उसके विषय में तो क्या कहूं। आप इसी से समझ लीजिए कि जो उदाहरण उन्होंने अपने इन दोनों लेखों में देकर व्यङ्.ग्य बाण छोड़े हैं वे पाठ समिति ने नहीं बदले हैं,अपितु ये सभी पाठ सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संस्करण में ज्यों के त्यों विद्यमान हैं। इस प्रकार इन पाठों पर किया गया आक्षेप समिति पर नहीं है अपितु वह तो सीधा सा द्वितीय संस्करण पर है या ऋषि दयानन्द पर है क्योंकि ऋषि के नाम से अब तक द्वितीय संस्करण को ही प्रामाणिक माना जाता रहा है। पता नहीं सुरेन्द्र जी ने यह छल करके पाठकों को भ्रम में क्यों डाला? क्या उनके पास समिति द्वारा संशोधित पाठों के विषय में कुछ लिखने को न था?

सुरेन्द्र जी, मैं आपको ऐसा सौम्य पण्डित समझता था, कि जो राग-द्वेष से ऊपर उठकर शालीनता से अपनी बात कहता है किन्तु आपके दोनों लेखों को पढ़कर तो यही लगता है कि आपने समालोचक पंडित का कार्य न करके छल कपट मिथ्या युक्त आक्रान्ता का कार्य किया है। क्या आप समझते हैं कि आपके पास ही लिखने को सामग्री है या आप जो लिख रहे हैं वही ठीक है, अन्य नहीं? ये दोनों ही बातें ठीक नहीं। परोपकारी के सम्पादक तभी से तिलमिलाए हुए हैं जबसे परोपकारिणी द्वारा प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश के विभिन्न संस्करणों की पोल खुलने से आर्यजनों में आक्रोश उपजा था तथा मानक संस्करण के निर्माण का निश्चय किया गया था। परोपकारी पर एकछत्र सम्पादक जी का राज्य है । वे किसी से कुछ भी लिखवा सकते हैं किन्तु इससे सत्य का निर्णय तो नहीं होगा। न ही इन लेखों से मानक संस्करण का कुछ बिगड़ेगा या उसका प्रकाशन-विक्रय बन्द हो जायेगा। हाँ, परस्पर का वैमनस्य तथा सत्यार्थ प्रकाश की निन्दा अवश्य ही हो जायेगी, क्योंकि यदि यही हाल रहा तो हमें भी परोपकारिणी द्वारा सम्पादित संस्करणों के विषय में लेखमाला या ट्रेक्ट निकालने होंगे, जिनकी सामग्री पहले से ही तैयार है। परोपकारिणी आक्षेप-भाजक न बने तथा जनता प्रत्येक संस्करण को ही हेय दृष्टि से न देखने लगे इसीलिए हमने अब तक 'परोपकारिणी' के संस्करणों के विषय में कुछ नहीं लिखा । आप लोग बाध्य करेंगे तो लिखा जायेगा किन्तु यह स्थिति 'आ बैल तू मुझे मार' वाली होगी। सुरेन्द्र जी आपने लेखों में जिस छल तथा असत्य का सहारा लिया है तथा जिस भाषा में व्यंग्यपूर्ण आक्षेप किये हैं वह भाषा तथा कार्य पांडित्य के अनुरूप नहीं है। आपने सम्बोधन भी अध्यक्ष जी को किया है,पता नहीं क्यों, ज़बकि वे इस

समय दृष्टिदोष के कारण न तो कुछ लिख पढ़ सकते हैं तथा न ही किसी विवाद में पड़ने की उनकी अवस्था है। मानक संस्करण का मुख्य सम्पादक मैं हूँ। आप मुझ से ही पूछिये, समालोचना कीजिए, किन्तु एक पंडित के रूप में, न कि एक गाली प्रदाता के रूप में। मैं आपको परामर्श देता हूँ, यह एक प्रकार से चैलेंज (आह्वान) भी है कि
(१) आप तथा विरजानन्द जी आदि कोई भी लिखे 'परोपकारी' में हमारा उत्तर भी छपना चाहिए। इस प्रश्नोत्तर से जनता स्वयं सत्यासत्य का निर्णय लेगी।
(२) अथवा आप लिखित या मौखिक शास्त्रार्थ मानक संस्करण पर जनता के मध्य बैठकर कर लीजिए। साथ में हम परोपकारिणी के संस्करणों पर भी शास्त्रार्थ करेंगे।
(३) यदि ये दोनों मार्ग असंभव लगेंगे तो हम पृथक् से आप लोगों के आक्षेपों का उत्तर तथा परोपकारिणी द्वारा प्रकाशित संस्करणों पर ट्रैक्ट बनाकर छपवा देंगे। पत्र हमारे हाथ में नहीं है तथापि पुस्तक या ट्रैक्ट तो छपवाये ही जा सकते हैं। पहले भी ऐसा हुआ है। उक्त तीनों मार्गों में से जो भी आपको अच्छा लगे बतला दीजिए हम तदनुरूप में करेंगे। मैं आपके लेखों के आक्षेपों का उत्तर दूँ, इससे पूर्व इतना कहना अवश्य चाहूँगा कि आप मन में किसी पूर्वाग्रह को लेकर चल रहे हैं, अन्यथा ऐसी मिथ्या बात कभी न लिखते कि 'सम्पादकीय को पढ़कर ज्ञात हुआ है कि समिति को केवल द्वितीय संस्करण को आधार मानकर ही कार्य करने का आदेश न्यास के अधिकारियों ने दिया।' डॉ.सुरेन्द्र जी! यहां **'न्यास के अधिकारियों ने दिया'** इतना भाग आपने अपनी ओर से क्यों मिला दिया? मैंने सम्पादकीय में तो ऐसा नहीं लिखा। यदि आप दिखला दें तो अग्रज होने पर भी मैं आपका शिष्यत्व स्वीकार कर लूँगा। आप भी उस बैठक में उपस्थित थे तथा अच्छी तरह जानते हैं कि समिति का गठन आर्यजनों तथा विद्वानों की सभा में ही किया गया था तथा आदेश भी इसी सभा ने दिया था। न्यास के अधिकारियों ने न तो समिति का गठन किया न ही आज तक उसे कोई आदेश दिया तथा न ही यह समिति न्यास के किसी आदेश को मानने को बाध्य है। प्रिय बन्धु! इतना स्पष्ट होने पर भी आपने इतना बड़ा झूठ क्यों लिख दिया ? अपने पांडित्य प्रदर्शन के लिए या समिति को नीचा दिखलाने के लिए? दोनों ही कार्य इस मिथ्योक्ति से सिद्ध नहीं हो पाये हैं। न ही सत्याग्रही पंडित को ऐसा करना शोभा देता है। इसलिए आप समालोचना कीजिए किन्तु पाण्डित्य पूर्ण शालीन तरीके से।

'कोई प्राचीन व्याकरण मिल गया है क्या? 'मानक खोज प्रकाशित कर देनी चाहिए' पाठक हँसे या रोएँ, जैसे कटाक्षों से ही आपके लेख भरे पड़े हैं। आप ही बतलाएँ कि आपके छल कपट पूर्ण मिथ्या वचनों के लिए पाठक क्या कहेंगे तथा क्या करेंगे? एक और प्रमाण आपके झूठ का देखें- परोपकारी के पृष्ठ ७१२ पर आपने लिखा है कि 'मुद्रण लिपिकर द्वारा बिगाड़े गये पाठ को भी विद्वत् समिति ने सश्रद्ध नमनपूर्वक स्वीकार कर लिया' पंडित जी यह 'नमन' मानक संस्करण के प्रकाशक

महोदय का है। समिति ने ऐसा कहीं भी नहीं लिखा। फिर आपने यह असत्य लिखकर 'बेरों में गुठली मिलाने' की कहावत को चरितार्थ क्यों किया? वैसे प्रकाशक जी ने ऐसा लिख कर गलत कार्य नहीं किया है। आप जो कुछ भी लिखें, शिष्ट एवं संक्षिप्त (To the point) में लिखिए। आप पंडित हैं, मैंने भी आपके साथ ही थोड़ा सा अक्षराभ्यास किया है। आप मेरी तथा अपनी शास्त्रीय सीमा जानते भी हैं। मैं निरन्तर उत्तर दूँगा। किन्तु कृपा करके 'परोपकारी' में उनके छपने की व्यवस्था तो कीजिए।

अब आपके आक्षेपों के उत्तर दिये जाते हैं- आपने जितने भी आक्षेप किए हैं, वे वस्तुतः मानक संस्करण पर न होकर सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संस्करण अथवा इसके प्रणेता महर्षि दयानन्द पर हैं क्योंकि आपके द्वारा उद्धृत सभी उद्धरण ज्यों के त्यों द्वितीय संस्करण में विद्यमान हैं। इनके विषय में समिति ने कुछ भी नहीं कहा है। आपके ये सभी आक्षेप कितने थोथे एवं उपहासास्पद हैं, यहां केवल एक दो को उद्धृत कर रहा हूँ:-

१. परोपकारी के पृष्ठ ७१३ पर लिखते हैं "शत्रु से मेल अथवा उससे विपरीतता करे" भला यह कौन से युद्ध शास्त्र की परिभाषा है कि शत्रु से विपरीता करे?" सुरेन्द्र जी यह उसी मनुस्मृति की परिभाषा है जिसके भाष्यकार होने का श्रेय आप ले रहे हैं। मनु का श्लोक है- समानयान कार्य च विपरीतस्यथैव च।' स्वामी जी ने इसी का अनुवाद उक्त पंक्ति में किया है। यह अनुवाद आपको यदि गलत लगता है तो यह तो ऋषि दयानन्द पर आक्षेप है,समिति ने तो इसमें कुछ भी नहीं किया। हमारी दृष्टि में तो यह बिल्कुल ठीक है। हो सकता है आप ऋषि दयानन्द से भी उत्कृष्ट भाष्यकर्ता हों। यहाँ यह भी कह दूँ कि आपका मनुस्मृति का भाष्य तथा संशोधन मैंने भी देखा है। मित्रतावश उस पर कुछ नहीं लिखा। यदि आपका यही क्रम चलता रहा तो मैं आपकी मनुस्मृति पर भी लिखूंगा । जिससे सबको पता चल जायेगा कि आप कितने उत्कृष्ट संशोधक तथा भाष्यकर्त्ता हैं।

२. 'जिनका अच्छा धर्म करने का सुखरूप समय हो वे सुकालिन्।' द्वितीय संस्करण के इस पाठ पर आपने व्यंग्य बाण छोड़ा है कि 'अब इन दश विद्वानों को यह भी 'मानक' खोज प्रकाशित कर देनी चाहिए कि बुराधर्म करने का कौन सा समय है? मुझे हंसी आती है आपके इस आक्षेप पर।

मेरे विद्वान् बन्धु, आप सत्यार्थ प्रकाश का स्वाध्याय तो कर लिया करें। आश्चर्य है कि आप पढ़ने में भी ऐसी भूल कर जाते हैं। देखिए, स्वामी जी लिखते है "शोभनः कालो विद्यते येषां ते सुकालिनः यहां शोभन का अनुवाद ही अच्छा के रूप में स्वामी जी ने दिया है। आपका साहस दयानन्द को भी मूर्ख बतला रहा है।

३. आपकी साक्षेप बुद्धि का एक अन्य उदाहरण- द्वितीय संस्करण पृष्ठ ३६६ का पाठ 'तुम्हारी स्त्री, कन्या, पुत्रवधु आदि असमर्पित रह जाने से अशुद्ध रह गए वा नहीं? इस पर आप घृणा पूर्वक तीन वार छिःछिः लिखकर विद्वानों को अपना माथा पीटने की सलाह देते हैं। यह छिःछिः तो जुकाम का रोगी किया करता है जिसके मस्तिष्क में कफ भर जाता है। आपको इसकी क्या आवश्यकता पड़ गई। मेरे भाई आप क्यों अपने उर्वरक मस्तिष्क को छलयुक्त आक्षेप करने में लगा रहे हैं। सत्यार्थ प्रकाश की भाषा को समझिए। यहाँ प्रश्न गुरु को समर्पण तथा असमर्पण का चल रहा है। गोसाईं कहते हैं कि जो शिष्य शिष्याएँ उन्हें समर्पित हो जाते हैं वे ही शुद्ध हैं, असमर्पित नहीं । इसी पर स्वामी जी आक्षेप करते हैं कि यदि असमर्पित व्यक्ति अशुद्ध रह गए तो सभी असमर्पित स्त्रियाँ भी अशुद्ध रह जाने से उनसे उत्पन्न होने वाले पुरुष भी अशुद्ध ही रह जायेंगे। यहाँ पर प्रसंग नहीं है कि कौन किससे उत्पन्न हुआ है। सन्तानें तो स्त्रियों से ही उत्पन्न होती हैं। लोक में चाहे वह किसी की माँ लगे या बहन, पत्नी आदि। इस बात को न समझ कर डॉ.सुरेन्द्र जी ने छिःछिः कर डाली। स्वामी जी ने वहाँ 'आदि' पद भी लिखा है। इससे माता का ग्रहण भी हो जाता है। सभी प्राणी माता से ही तो उत्पन्न होते हैं।

डॉ.सुरेन्द्र जी अपनी विद्वता पर इतने गर्वीले हो गए कि उन्होंने स्वामी वेदानन्द जी जैसे बहुभाषाविद् विद्वान् के लिए भी लिख दिया कि 'उनसे यह भूल हो गई' 'उनको भ्रान्ति हो गई।' इसके बाद पंडित युधिष्ठिर जी मीमांसक जैसे प्रौढ़ विद्वान् वैयाकरण के लिए लिख दिया कि 'उन्होंने स्वामी वेदानन्द जी का अन्धानुकरण किया है।' क्या साहस हैं इस युवा विद्वान् का कि, जो ऐसे सन्मान्य विद्वानों का अपमान एवं उपहास करने से भी नहीं चूकता। मैं उनके इस कार्य की घोर निन्दा करता हूँ। क्या केवल 'अनुकरण' शब्द से कार्य नहीं चल रहा था कि उन्होंने मीमांसक जी को अन्धानुकर्ता कह दिया? क्या आर्यजनता को यह स्वीकार्य है? सुरेन्द्र जी! आप अपनी शेष पूरी आयु लगाकर भी उक्त दोनों विद्वानों की योग्यता को प्राप्त नहीं कर सकते। क्या केवल आपकी ही आँखें खुली हैं तथा आप निर्भ्रान्त हैं, जो ऐसे विद्वानों को अन्धा तथा भ्रान्तिग्रस्त कह रहे हैं?

आप अध्यक्ष जी पंडित विशुद्धानन्द जी को संबोधित करके यह भी लिखते हैं कि 'जिस दिन मानक संस्करण का पूरा सच आपके सामने आ जायेगा, हो सकता है फिर आपको दूयमान होना पड़े।' सुरेन्द्र जी शीघ्र ही इस सच को प्रकट कर दीजिए आपका मैं कृतज्ञ रहूँगा । मुझे भी उस गुप्त सच का पता नहीं है। अन्यथा ऐसी भ्रमित बात कहने की कुचेष्टा न करें। हम आपको निग्रह स्थान में खड़ा कर देंगे।

आपने इन दोनों लेखों में एक सच अवश्य बोला है कि 'अब तक की मनमानी सम्पादन नीति के कारण सत्यार्थ प्रकाश की यह दुर्दशा हो गई है <u>कि कोई भी संस्करण परस्पर</u>

नहीं मिलता। सबमें भिन्नता है। यहाँ तक कि एक प्रकाशक के संस्करण भी परस्पर नहीं मिलते । आपके इस कथन से स्पष्ट सिद्ध है कि परोपकारिणी द्वारा प्रकाशित संस्करण भी परस्पर भिन्न हैं। हम भी तो यही कह रहे हैं। इसीलिए मानक संस्करण का उपक्रम किया था, किन्तु इसमें भी परोपकारिणी सभा ने सहयोग नहीं दिया। इसके विषय में फिर लिखूंगा । यह अहम्मन्यता ही मानक संस्करण की निन्दा एवं अप्रसिद्धि करा रही है। मान्यवर डॉ. सुरेन्द्र जी! आप भी किसी संस्करण का सम्पादन कर रहे थे। परोपकारिणी के विभिन्न संस्करणों की विद्यमानता में आपको उसकी क्या आवश्यकता पड़ गई थी तथा आवश्यकता थी तो आपने उसके प्रकाशन का विचार छोड़ क्यों दिया? क्या आपका वह संस्करण सर्वथा निर्दोष होगा, यदि हाँ, तो आप उसे प्रकाशित करके शीघ्र ही जनता को उपकृत करें। यदि नहीं, तो आप स्वयं ऐसा उद्यम क्यों कर रहे हैं ?

सुनिए, परोपकारी में या किसी अन्य पत्र में सूचना देकर मानक संस्करण तथा परोपकारिणी के संस्करणों के विषय में विद्वानों तथा आर्यजनों के विचारों को आमंत्रित कीजिए, उससे दोनों का स्वरूप सबके सामने आ जायेगा। परोपकारिणी के संस्करणों से असहमत होते हुए भी मैंने तथा समिति ने उनके विषय में कुछ नहीं लिखा। इसमें परोपकारिणी के प्रति आदर तथा उसके अधिकारियों एवं सम्पादकों की मैत्री ही कारण थी, किन्तु इन सबकी परवाह न करके आप लोगों ने जो यह मार्ग अपनाया है, यह श्रेयस्कर तो नहीं है, किन्तु हमें भी उत्तर तो देना ही होगा। मैं इन सभी लेखों को परोपकारी में प्रकाशनार्थ भेज रहा हूँ किन्तु परोपकारी के सम्पादक महोदय उन्हें छापने की उदारता नहीं दिखलायेंगे, यह मैं जानता हूँ किन्तु इससे प्रकाशन का मार्ग बन्द तो नहीं हो जायेगा। यह सभी सामग्री पुस्तक रूप में या ट्रैक्ट रूप में छपाकर सर्वत्र वितरित की जायेगी, जैसाकि पहले भी हुआ है। इससे क्या होगा? हमारी तथा आपकी जो शक्ति, जो चिन्तन, आर्य समाज के सिद्धान्तों की पुष्टि तथा विरोधियों के खण्डन में लगनी चाहिए थी, वह आपसी निन्दा तथा छिछालेदारी में लगेगी। मनुष्यप्रकृति में दोष होना स्वाभाविक है, जैसाकि कहा गया है।

गच्छतः स्खलनं क्वापि मनत्येव स्वभावतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः।।

श्लोक का अन्तिम चरण तो आप पर चरितार्थ नहीं होता। कौन सा होता है,यह निर्णय आर्य जनता स्वयं कर लेगी।

□□□

सत्यासत्य के स्वयमेव निर्णयार्थ एक बार 'मानक संस्करण' स्वयं पढ़े

सत्यार्थ प्रकाश के मानक संस्करण का सच

डॉ. रघुवीर वेदालंकार

डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी के तीन लेख परोपकारी में क्रमशः 'सत्यार्थ प्रकाश के उदयपुर संस्करण का सच'शीर्षक से छपे हैं। इस शीर्षक से ही सुस्पष्ट है कि सुरेन्द्र कुमार जी किस पूर्वाग्रह तथा छल कपट से युक्त भावों को लेकर लिख रहे हैं। बन्धुवर! आपको पता होना चाहिए कि यह **'मानक संस्करण' है उदयपुर संस्करण नहीं।** न्यास ने इसे छापकर आर्य जनता का उपकार ही किया है। यह विद्वत् समिति का प्रयास है। सत्यार्थ प्रकाश न्यास उदयपुर का इसके निर्माण तथा प्रकाशन में सहयोग तो अवश्य रहा है किन्तु नियंत्रण या बाध्यता नहीं । फिर भी आप इसे उदयपुर संस्करण कहकर सत्य को क्यों झुठला रहे हैं। यह एक विद्वान् को तो शोभा नहीं देता। सच्चाई यह है कि श्री अशोक आर्य के आह्वान पर पर्याप्त संख्या में आर्यजन, विद्वान् तथा पूज्य संन्यासी उदयपुर पहुँचे थे। वहीं बृहती सभा में 'मानक संस्करण' के निर्माण का निश्चय उसी सभा द्वारा किया गया था। न्यास का या उसके अध्यक्ष का कार्य तो विद्वानों तथा आर्यजनों को आहूत करना मात्र था। सभा ने ही मानक संस्करण के निर्माण का निश्चय किया तथा उसके लिए एक समिति बनाई। **इसलिए यह उसी विद्वत् समिति द्वारा तैयार किया गया 'मानक संस्करण' है न कि उदयपुर संस्करण।** आप स्वयं संपूर्ण कार्यवाही में विद्यमान थे अतः आप मेरी उक्त स्थापना को झुठला नहीं सकते। इतना होने पर भी आपने इसे किस कारण से उदयपुर संस्करण बनाकर सत्य पर पर्दा डाल दिया,कृपया बताएँ तो सही।

सभा में ही यह निश्चय किया गया था कि 'परोपकारिणी' 'आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट' आदि अन्य संस्थाओं के प्रतिनिधियों को भी समिति में सम्मिलित किया जाए। ट्रस्ट के प्रधान पंडित राजवीर जी शास्त्री तो वहाँ उपस्थित थे, जो कि अन्त तक साथ रहे भी हैं। उदयपुर सभा ने ही 'परोपकारिणी' से एतदर्थ प्रार्थना करने का दायित्व मुझ संयोजक को सौंपा था। मैंने सभा के तत्कालीन उप प्रधान चौधरी मित्रसेन जी आर्य से पत्र तथा दूरभाष द्वारा भी 'परोपकारिणी' का प्रतिनिधि उक्त सभा में भेजने की प्रार्थना की, किन्तु उनकी ओर से कोई भी सकारात्मक उत्तर या सहयोग की भावना हमें प्राप्त नहीं हुई। उपप्रधान जी को भेजे गए पत्र की प्रति हमारे पास सुरक्षित है। इतना ही नहीं अपितु डॉ.धर्मवीर जी से भी मैंने दूरभाष पर, आपस में मिलकर उक्त संस्करण के निर्माण में प्रतिनिधित्व की प्रार्थना व्यक्तिगत रूप से की, किन्तु वहाँ से स्पष्ट

नकारात्मक उत्तर था। इसमें कारण था धर्मवीर जी का हठ तथा अहम्मन्यता। उनका विचार था कि परोपकारिणी से हटकर कोई अन्य संस्था ऐसे संस्करण का निर्माण कैसे कर सकती है? परोपकारिणी ही इस विषय में एकमात्र अधिकृत संस्था है तथा उसके निर्देशन में ही ऐसा प्रयास किया जाना चाहिए। हम उनके इस परामर्श को मानने में इसलिए असमर्थ थे क्योंकि (१) परोपकारिणी द्वारा प्रकाशित संस्करणों में जो परस्पर विभिन्नताएं हैं तथा उनके सम्पादक महोदय ने सत्यार्थ प्रकाश की रफकॉपी को आधार बनाकर जो कार्य किया है, उनके विरोध में ही तो मानक संस्करण निर्माण का निश्चय किया गया, पुनः परोपकारिणी के उन्हीं अधिकारियों की छत्रछाया में मानक संस्करण कैसे तैयार हो पायेगा ? (२) मानक संस्करण निर्माण समिति का निश्चय सभा द्वारा किया गया था। एक दो व्यक्तियों के कहने से उसे भंग नहीं किया जा सकता था। डॉ. धर्मवीर जी ने यह कैसे मान लिया कि परोपकारिणी के निर्देशन में ही यह कार्य हो,उससे अतिरिक्त विद्वानों, विद्वत् समिति तथा आर्यजनों की भावनाओं का कोई महत्व ही नहीं है?

डॉ.धर्मवीर जी, डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी तथा पंडित विरजानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संस्करण को आधार न बनाकर उसकी सर्व प्राथमिक रफ कॉपी को आधार बना रहे थे। यह किसी को किसी भी रूप में स्वीकार्य नही था। इस कारण परोपकारिणी ने कोई सहयोग मानक संस्करण में नहीं किया। सहयोग नहीं दिया,यह उनकी इच्छा । हमने पूरा प्रयत्न किया। अब मानक संस्करण छप ही गया तो इसका विरोध इसलिए किया जा रहा है कि उनकी इच्छा के विरुद्ध यह संस्करण छप कैसे गया। मानक संस्करण के निश्चय से पूर्व परोपकारिणी के संस्करणों की पर्याप्त आलोचना आर्य जगत् में हो चुकी थी। विशेष कर पंडित विरजानन्द जी द्वारा सम्पादित संस्करण की जिनको उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश की रफ कॉपी के आधार पर तैयार किया है। सवा सौ साल से प्रचलित तथा सर्वत्र समादृत द्वितीय संस्करण को तिरस्कृत करके रफ कापी के आधार पर नया सत्यार्थ प्रकाश छापना अति साहस का कार्य है,जिसे बिना किसी उचित तर्क के किया गया। **यह कुत्सित कार्य था तथा आगे भी रहेगा।** इसी कारण विद्वानों तथा आर्य जनता द्वारा इस कार्य की भर्त्सना की गई। शान्त तथा आक्रोशपूर्वक भी बहुत कुछ इसके विरोध में लिखा गया। इस कार्य के पीछे तीन ही विद्वान् हैं। डॉ. धर्मवीर जी, जो सभा के स्वच्छन्द मंत्री होने के कारण दंभपूर्वक इसे करा रहे हैं। दूसरे पंडित विरजानन्द जी, जो कि इसके माध्यम से अपने अन्वेषणपूर्ण सम्पादकत्व की धाक जमा रहे हैं तथा तीसरे हैं इनके सहायक डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी, जो प्रारम्भ से ही

प्रत्येक कार्य में उनके साथ रहे हैं। मेरी भी यही स्थिति थी। हम सभी मैत्री तथा बन्धुत्व भावना से परस्पर सम्बद्ध थे। किन्तु मानक संस्करण समिति का संयोजक बनते ही डॉ. धर्मवीर जी का मेरे प्रति आक्रोश पनपने लगा। उनका वही आक्रोश यह सब कुछ करा रहा है। उन्हें यह सहन नहीं हो रहा है कि परोपकारिणी के कार्यकुशल मंत्री जी के नियंत्रण से पूर्णतः बाहर रहकर यह संस्करण छप कैसे गया? वह भी उन लोगों की सहायता से जिन्होंने परोपकारिणी के संस्करणों के विरोध में लिखा है। व्यक्ति की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। यदि गुणग्राहिता नहीं है तो व्यक्ति उस कार्य तथा उस व्यक्ति या संगठन की निन्दा अवश्य करता है जो कि उसके विरोध में कार्य कर रहा है भले ही वह कार्य कितना ही अच्छा हो। इसीलिए मानक संस्करण, उसके सम्पादको तथा प्रकाशक पर मिथ्या छल कपटपूर्ण आक्षेप लगाये जा रहे हैं। आक्षेप करते समय कभी तो सत्यार्थ प्रकाश न्यास के अधीन मानक संस्करण समिति को बतला दिया जाता है,तो कभी प्रकाशक तथा समिति को एक ही समझ लिया जाता है। यह सब कुछ भूल से नहीं हो रहा अपितु योजनाबद्ध तरीके से किया जा रहा है,जिससे कि मानक संस्करण तथा उसकी समिति की छवि जनता में खराब हो। ऐसा होगा नहीं। संभवतः उन्हें भ्रम हो कि जनता मानक संस्करण को दोषपूर्ण मानकर परोपकारिणी के संस्करणों को आदर देगी। उनका भ्रम शीघ्र ही टूट जायेगा, क्योंकि इस त्रिमूर्ति ने परोपकारिणी द्वारा प्रकाशित संस्करणों में स्वेच्छाचारिता अपना कर जो जो गड़बड़ियाँ की हुई हैं,उन सबका निवारण हमारे पास है। यदि यह त्रिमूर्ति इसी प्रकार दुःसाहस करती रही, तो हमें भी विवश होकर इनके संस्करणों के दोष छपवा कर जनता में वितरित करने होंगे क्योंकि परोपकारी में तो हमारे लेख छपेंगे नहीं। यह एकमात्र मार्ग हमारे पास बच जाता है। मूल समस्या है कि सत्यार्थ प्रकाश का अच्छा,शुद्धतम तथा प्रामाणिक संस्करण तैयार करने में किसको आधार बनाया जाए? क्या सत्यार्थ प्रकाश की रफ कॉपी को या अब तक चले आ रहे द्वितीय संस्करण को। समस्त आर्य जनता द्वितीय संस्करण को ही प्रामाणिक मानती है, किन्तु यह त्रिमूर्ति उसकी अवहेलना करके रफ कापी को ही आधार बनाने के लिए कटिबद्ध है। पता नहीं क्यों? उनका यही प्रयास अभी भी जारी है। इसके लिए मानक संस्करण, उसकी समिति तथा प्रकाशक पर मनमाने मिथ्या आरोप लगाने आवश्यक हैं। डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी के लेख से तो ऐसा लगता है कि ये लोग एक दम नया ही सत्यार्थ प्रकाश रचने को कटिबद्ध हैं। उनके शब्द देखिए **'यथाशीघ्र भाषा और भाव की दृष्टि से सत्यार्थ** प्रकाश का शुद्धतम संस्करण प्रस्तुत किया जाए'। क्या आशय है इन पंक्तियों का, यह स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं। नये संस्करण में आप अब

तक प्रचलित सत्यार्थ प्रकाश की भाषा तथा भाव दोनों ही बदल देना चाहते हैं। पुस्तक में भाषा तथा भाव के अतिरिक्त होता ही क्या है? यह एक घोर दुष्कृत्य है तथा आर्य जगत् को अभी से इस ओर सचेष्ट रहना चाहिए। क्या आप त्रिमूर्ति के इस कार्य को सहन करके, पुराने सत्यार्थ प्रकाश की हत्या कर देंगे ? यदि हाँ, तो यह दयानन्द की हत्या है। उसके विचारों तथा भाषा की हत्या है। यदि नही तो सभी आर्यजनों को इस त्रिमूर्ति के ऐसे दुःसाहस का विरोध करना चाहिए। सिद्धान्त की रक्षा के लिए मैत्री तथा बन्धुत्व भी छोड़ना पड़े तो वही श्रेयस्कर है। मैंने तो यही किया है।इसीलिए मानक संस्करण के सम्पादक तथा प्रकाशक पर इनके तीरों की बौछार हो रही है। ये तीर सरकण्डे के हैं जो कि स्पर्श करते ही टूट जाते हैं।

डॉ. धर्मवीर जी का स्वभाव कुछ ऐसा बन गया है कि वे अपने सामने किसी के भी उत्कर्ष को सहन नहीं कर सकते। यदि उन्हें कोई अपने विरोध में आर्य समाज के सुख्यात विद्वान् दिखलाई दे तो पूरी शक्ति से उसकी निन्दा तथा उपेक्षा वे करते हैं। डॉ. सोमदेव जी जिन्हें वे अधिकांश ब्रह्मा के रूप में समारोह में बुलाया करते थे वे ही शताब्दी समारोह में ऋषि उद्यान में उपेक्षित से घूम रहे थे, क्योंकि उनकी भागीदारी उस समारोह में न थी।

मेरे साथ भी उन्होंने यही किया है तथा कर रहे हैं। ऋग्वेद के जिन मण्डलों पर महर्षि दयानन्द का भाष्य नहीं है,उन मण्डलों पर ऋषि की शैली में ही संस्कृत तथा हिन्दी में भाष्य करने का कार्य मुझे परोपकारिणी सभा ने सौंपा था। मेरे द्वारा किए गए २-४ वेदमंत्रों के भाष्य को देखकर वेदज्ञ विद्वान् डॉ. रामनाथ जी वेदालंकार ने कहा था कि आप इस कार्य को करने में समर्थ हैं। अतः मैंने उत्साहित होकर कठोर परिश्रम से उन मण्डलों का भाष्य स्वामी जी की शैली पर करके धर्मवीर जी के पास प्रकाशनार्थ भेज दिया। यद्यपि भाष्य करने के लिए तात्कालिक सभाप्रधान स्वामी ओमानन्द जी को डॉ.धर्मवीर जी ने ही मेरा नाम सुझाया था,तथापि भाष्य पूर्ण हो जाने पर उन्होंने उसे छापने में रुचि नहीं दिखलाई,क्योंकि उस समय मेरे विचार उनके अनुकूल नहीं थे। कभी कम्पोजिटर का नाम लेकर या कभी कोई अन्य बहाना बनाकर वे उस परिश्रम पूर्ण कार्य के प्रकाशन से बचते रहे। मानक संस्करण समिति का संयोजक बनकर तो धर्मवीर जी की दृष्टि में मैंने मानो कोई अपराध कर दिया था। आज भी वह वेद भाष्य निरर्थक पड़ा है। इस पर परोपकारिणी का जो धन तथा मेरा जो श्रम लगा है परोपकारिणी के मंत्री को उसकी परवाह नहीं है।

मानक संस्करण की निन्दा के पीछे भी यही कहानी है। अशोक जी ने परोपकारिणी द्वारा प्रकाशित संस्करणों के विरोध में उदयपुर में आर्यों की बैठक आहूत की तथा ट्रैक्ट रूप में कुछ लिखा भी। सत्यार्थ प्रकाश न्यास ने मानक संस्करण को प्रकाशित कर दिया, तो धर्मवीर जी इस कार्य को कैसे सहन कर सकते थे ? मेरे प्रति तो उनके विचारों में पहले से ही कटुता आ चुकी थी।

डॉ.धर्मवीर जी ने परोपकारिणी के बाह्य स्वरूप के परिवर्धन में जो कार्य किया है, वह निश्चय ही प्रशंसनीय है। उनसे पहले न तो वहाँ इतने विशाल मेले लगते थे, न ही इस प्रकार की सुन्दर व्यवस्था थी, जो कि वर्तमान में है। मैं उनके इस कार्य का प्रशंसक हूँ तथा रहूँगा ,किन्तु उनके अनुकूल होकर तो मैं नहीं बोल सकता । जो मुझे ठीक लगा,वह मैंने किया। अभी भी मैं अन्य आर्यजनों की तरह अपने मित्र पंडित विरजानन्द जी द्वारा सम्पादित संस्करणों की भर्त्सना करता हूँ, क्योंकि उन्होंने गलत मार्ग अपनाया है। द्वितीय संस्करण को ही आधार माना जाना चाहिए, यही आर्य जनता का विचार है। मैं इस झमेले में था ही नहीं। इस विवाद तथा मानक संस्करण समिति के गठन से पूर्व एक बार पंडित विरजानन्द जी ने मुझसे कहा था कि मैं रफ कापी जिसे मूल प्रति कहते हैं, के आधार पर सत्यार्थ प्रकाश का सम्पादन कर रहा हूँ। मूल प्रति में ऐसी बहुत सी बातें हैं जो द्वितीय संस्करण में नहीं हैं। उन्होंने उदाहरण देकर कहा कि मूल प्रति में खाखियों के प्रसंग में 'गाण्डू' शब्द का प्रयोग भी विद्यमान है। खेद है कि वे ऐसे अनर्गल शब्दों को देखकर उसे आधार मानने को तैयार हो गए। इससे भी बड़ी विडम्बना यह है कि यह त्रिमूर्ति अपने इस निन्दनीय कार्य को ही अभी भी अच्छा बतलाकर मानक संस्करण तथा विद्वत् समिति के विरोध में उतर आयी। अपकीर्ति के सिवाय इससे उन्हें क्या मिलेगा? मानक संस्करण में कमियाँ हो सकती हैं, जिन्हें दूर करने के लिए हम वचनबद्ध भी हैं तथापि यह संस्करण पंडित विरजानन्द जी के द्वारा सम्पादित संस्करणों से लाख गुना श्रेष्ठ है क्योंकि उनमें अशुद्धियाँ तो हैं ही, उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के मूल पर ही प्रहार कर दिया है। इतना करके भी धर्मवीर जी कह रहे हैं कि हमने जो कर दिया वह कर दिया। इसे अहंकार के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है।



सत्यासत्य के स्वयमेव निर्णयार्थ एक बार 'मानक संस्करण' स्वयं पढ़ें

जो विद्या और शुभगुणों से उत्पन्न, सबका हित चाहने वाले,पुरुषार्थी और पक्षपातरहित अतिथिजन उपदेश के द्वारा सबकी रक्षा करते हैं, वे संसार का कल्याण करने वाले होते हैं।
ऋ.५.१८.४(महर्षि कृत भाष्य)

'ओ३म्'

क्या मानक संस्करण दस विद्वानों द्वारा सम्पादित है?

– डॉ. रघुवीर वेदालंकार

'परोपकारी' के दिसम्बर अंक में डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी का तृतीय लेख मानक संस्करण के संबंध में छपा है। मैं नीचे जो कुछ लिख रहा हूँ वह पूर्णतः सत्य लिख रहा हूँ। इसे कोई भी नहीं झुठला सकता। यह सत्य डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी के असत्य की परतें उसी प्रकार उधेड़ देगा,जैसे प्याज के छिलके अनायास ही उखाड़ दिए जाते हैं। मेरे मित्र इस विद्वान् को यह भी नहीं सूझा कि वह किसके विरुद्ध लिख रहे हैं। ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध नितान्त असत्य आक्षेप कि जो अपनी बात राग-द्वेष से रहित होकर कहता है। वह जिसे सत्य समझता है,उसे जम कर लिखता है। वह न तो किसी के दबाव में काम करता है तथा न ही जान पूछ कर असत्य का प्रतिपादन करता है। सुरेन्द्र कुमार जी ने यह सन्देह किया है कि समिति में दस विद्वानों ने कार्य किया भी है या नहीं। संशयात्मा बन्धु ! आप इस बात को कहीं भी प्रमाणित करा लीजिए कि पंडित राजवीर जी शास्त्री तथा स्वामी जगदीश्वरानन्द जी रोगी होते हुए भी अंतिम समय तक हमारे साथ बैठे थे या नहीं। मैंने नहीं लिखा कि पंडित वेदव्रत जी भी हमारे साथ बैठे। हाँ, उनका योगदान रहा है। यह योगदान उसी दिन उदयपुर की बैठक में प्रारम्भ हो गया था, जब 'चतस्रेऽवस्था' की संगति लगाने पर विचार किया गया था। सुरेन्द्र जी ने अपने लेख में पृष्ठ ७४६ पर अभी भी इसे असंगत पाठ कहा है। पंडित वेदव्रत जी संस्कृत के साथ साथ आयुर्वेद के भी विद्वान् हैं। उन्होंने उदयपुर में ही इस प्रसंग का समाधान आयुर्वेद के ग्रन्थों के आधार पर विस्तार से कर दिया था। क्या आप इसे उनका योगदान नहीं मानेंगे ? मैं तो ऐसा नहीं कह सकता। डॉ. भवानीलाल भारतीय जी घुटनों की पीड़ावश आ तो नहीं सके किन्तु दूरभाष तथा पत्रों द्वारा उन्होंने हमें दिशा निर्देश तथा परामर्श दिए हैं। क्या यह उनका योगदान नहीं है? शेष में कोठारी जी को छोड़कर समिति के सभी सदस्य बैठकों में उपस्थित रहे हैं। यह अलग बात है कि कोई कम समय के लिए तो कोई अधिक समय के लिए, तो कोई पूर्णतः सभी बैठकों में उपस्थित रहा है। पुनरपि सुरेन्द्र जी को संशय है तो यही कहा जायेगा कि उनके अन्तः में विद्वता के स्थान पर असत्य एवं संशय ने जगह बना ली है। नीतिकार कह गए हैं 'संशयात्मा विनश्यति।' मैं नहीं चाहता कि उनकी अपकीर्ति हो, केवल इतना ही चाहूँगा कि सुरेन्द्र जी को भ्रामक एवं असत्य बात नहीं लिखनी चाहिए। यह लक्षण एक पंडित का नहीं, अपितु वैतण्डिक का है।

सुरेन्द्र कुमार जी पुनः लिखते हैं कि 'कहीं ऐसा तो नहीं कि न्यास को अपने कार्य स्तर पर पहले से ही अविश्वास हो चला हो और उसने यह दश विद्वानों का आडम्बर की नीति अपना ली हो।' आश्चर्य कि यहाँ सुरेन्द्र जी ने किस छलयुक्त असत्य

का प्रतिपादन किया है। मुझे उनसे ऐसी आशा नहीं थी। सभी जानते हैं कि समिति के दश विद्वानों का चयन वहीं सभा में ही सर्वसम्मति से किया गया था। **न्यास या अशोक जी का इससे किसी प्रकार का कोई लेना देना नहीं। न ही अशोक जी ने ये नाम सुझाये थे।** सुरेन्द्र कुमार जी स्वयं बैठक में उपस्थित थे, पुनरपि उन्होंने यह गपोड़ा क्यों हाँका, समझ में नहीं आता।

इसी प्रसंग में तीसरी बात विद्वान् लेखक यह कह रहे हैं 'यदि एक-एक ने एक-एक, दो-दो समुल्लासों को निपटाया तो फिर यह दश विद्वानों का कार्य नहीं।' सुरेन्द्र जी। मुखमस्तीति वक्तव्यम। लेखनी अस्तीति लिखितव्यम्। मुख है तो बोलना चाहिए, लेखनी है तो लिखना चाहिए, चाहे वह बोला गया तथा लिखा गया कितना भी बचकाना,असत्य तथा छल कपट युक्त हो, यह नीति एक अशिष्ट अशिक्षित व्यक्ति की तो हो सकती है, विद्वान् की नहीं। फिर आप इसे अपना कर क्यों मिथ्या बात लिख रहे हैं? आपने मेरा सम्पादकीय नहीं पढ़ा कि सर्वप्रथम तो समिति के विद्वानों ने एक ही स्थान पर मिलकर बैठकर अक्षरशः सत्यार्थ प्रकाश का वाचन किया। एक-एक, दो-दो समुल्लासों को बाँटने की स्थिति तो सबसे अंत की है, जबकि समग्र रूप में सभी ने मिलकर इस कार्य को पूर्ण कर लिया था। इसके पश्चात् पुनवीक्षण के लिए यह नीति अपनायी गई थी कि व्यक्तिगत स्तर पर विभाजन करके संपूर्ण सत्यार्थ प्रकाश पर विचार किया जाए। **सन्तोष रहा कि व्यक्तिगत स्तर के इस पुनवीक्षण का कहीं भी समिति द्वारा समुदित रूप में किए गए कार्य से विरोध नहीं पाया गया।** यदि कोई स्थल ऐसा होता तो उस पर विचारार्थ पुनः समिति बैठती। खेद है कि इतने पारदर्शितापूर्ण कार्य के विषय में भी आप अनाप शनाप लिख रहे हैं।

आपने पहले लेख में भी लिखा था तथा पुनः इस लेख में भी लिखा है कि 'दाल में कुछ काला है' 'सच से अभी पर्दा उठना बाकी है।' मित्र! दाल में तो नहीं,अपितु आपके मन में अवश्य कुछ कालिमा है, जो 'परोपकारी' के माध्यम से बाहर आ रही है। राग-द्वेष तथा दोष का रंग काला ही होता है। सत्यता धवल स्वच्छ होती है। जिस पर्दे की बात कह कर पाठकों को चौंका रहे हैं, कृपया उसे एक झटके में उसी प्रकार उठा दीजिए, जैसे घर में प्रवेश करते समय पर्दे को हटा दिया जाता है,अन्यथा मिथ्या प्रलाप मत कीजिए।

इसी प्रसंग में मैं आप द्वारा उठायी गई 'चतस्रोऽवस्था शरीरस्य' की शंका का भी उत्तर लिख रहा हूँ। स्वामी जी लिख रहे हैं कि २५ वें वर्ष के अंत तथा २६ वें वर्ष के आदि में युवावस्था का आरम्भ होता है तथा पच्चीसवें वर्ष से लेके चालीसवें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की पुष्टि होती है। सुरेन्द्र जी की शंका है कि पच्चीसवें वर्ष के अंत से यौवन अवस्था का आरम्भ तथा २५ वें वर्ष से ही सम्पूर्णता कैसे संभव है ? यहाँ पर बतला दूँ कि समिति ने इस प्रसंग पर २-३ बार लम्बे समय तक विचार किया है। एक बार स्वल्प संशोधन करके पुनः इसे रद्द करके वर्तमान पाठ ही उचित समझा है।

तथा इसका समाधान यह है कि २५ वें वर्ष से आगे यौवनावस्था चलेगी। इसके साथ ही चालीसवें वर्ष तक आते आते सभी धातुओं की पुष्टि हो जायेगी। इस समय यह सम्पूर्णता है। इससे पूर्व युवावस्था का लम्बा समय है। अतः समिति ने यहाँ कुछ भी परिवर्तन करना उचित नहीं समझा। यदि आपको यहाँ संगति प्रतीत नहीं हो रही है तो समिति आप अकेले की शंका निवारणार्थ तो नहीं बैठी थी। न ही आपकी बुद्धि से कार्य कर रही थी। इस प्रकार तो कोई भी व्यक्ति किसी भी स्थल को असमाधित कह देगा। समिति का यह दायित्व नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति की प्रत्येक शंका का उत्तर दे। हाँ समिति ने जो परिवर्तन या संशोधन किए हैं उनके प्रति वह उत्तरदायिनी है। उन स्थलों पर शंका करेंगे तो यथोचित समाधान दिया जायेगा। **जिस स्थल को हमने छुआ भी नहीं उस पर आक्षेप करना समिति पर नहीं, अपितु दयानन्द पर है।** आप यही चाहते हैं तो कीजिए। स्वामी जी के कुछ प्रयोग अन्यत्र भी इसी प्रकार के हैं। यथा स्वामी जी अन्दर से बाहर आने वाले श्वास को प्राण तथा बाहर से अन्दर जाने वाले श्वास को अपान कहते हैं जबकि लोक में इसके विपरीत मान्यता है। ऐसे स्थलों पर एक ऋषि की बात का खण्डन अपनी अल्पमति से नहीं कर सकते।

एक अन्य प्रसंग देखिए- द्वितीय संस्करण पृष्ठ २४४-२४५ पर पाँच मुक्तियों की गणना है,किन्तु उनका कुल योग चार लिखा है। मतिमान सुरेन्द्र जी ! सत्यार्थ प्रकाश को ध्यान से पढ़ा करें तो आपको ऐसी लघु शंकाए उपस्थित नहीं होंगी। इन पाँचों में सारुप्य नाम कोई मुक्ति नहीं है। अपितु यह जीवित अवस्था की बात है। स्वामी जी ने इसे स्पष्ट कर भी दिया है कि जैसी उपासनीय देव की आकृति है वैसा बन जाना। यह जीवित अवस्था में ही संभव है मरने पर नहीं। इसीलिए आगे सालोक्य,सामीप्य,सायुज्य तथा सानुज्य का ही नाम दिया गया है। सारूप्य का नहीं।

एक अन्य प्रसंग में डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी ने पूछा है कि यह कहाँ लिखा है कि व्यास का निवास अमेरिका में था? जबकि स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में ऐसा लिखा है। आप शंका करते हैं कि क्या वास्तव में व्यास का निवास अमेरिका में था। सुरेन्द्र जी! यह उस ऋषिवर का वचन है जिसने तीन हजार से भी अधिक ग्रन्थ देखे हैं। स्वामी जी ने तृतीय समुल्लास में यह भी लिखा है कि वेदान्त सूत्र पर वात्स्यायन मुनिकृत भाष्य पढ़ें । क्या कहीं वेदान्त सूत्र पर यह भाष्य आपने देखा सुना है ? हमारा बहुत सा साहित्य नष्ट हो गया । स्वामी जी गवेषक व्यक्ति भी थे। हो सकता है उन्हें यह उपलब्ध हो। यही अवस्था व्यास जी के निवास की है। यह समिति का कार्य नहीं था कि वह अमेरिका में व्यास के स्थान को ढूढ़े। आप ढूढ़िए या इसका प्रतिकार कीजिए। हम तो इस पर विश्वास करते हैं। आगे चलिए आप लिखते हैं कि सत्यार्थ प्रकाश में महाभारत के उद्धृत प्रसंग में व्यास का निवास मेरू हिमाचल पर लिखा है। क्या आप ऐसा लिखा दिखा सकते हैं? यदि नही तो सत्यार्थ प्रकाश पर लिखना बन्द कर दीजिए। पहले इसका अच्छी तरह स्वाध्याय कीजिए। देखिए स्वामी जी के इस प्रसंग

का स्पष्टीकरण इस प्रकार है-शुकाचार्य जी अमेरिका से योरोप आये । योरोप हिमाचल के उत्तर पश्चिम में है। योरोप से हूण यहूदियों के देश में आए। वहाँ से चीन आये। चीन से हिमालय तथा हिमालय से मिथिलापुरी । यह तो सीधा सा रास्ता है जिसे भूल से आपने हिमालय पर व्यास जी का निवास समझ लिया। इस प्रसंग को ध्यान से पढ़ेंगे तो यही तथ्य सामने आयेगा। अमेरिका भारत से पश्चिम है तथा यूरोप भारत से उत्तर पश्चिम में है। अतः अमेरिका से यूरोप, वहीं से चीन, वहाँ से हिमालय, यह मार्ग शुक का था। आप समझ गए कि उनको को हूण यहूदी कैसे मिल गए। वे मिथिला आते हुए नहीं मिले थे अपितु यूरोप से आगे चीन की ओर प्रस्थान करने पर मिले थे।

लेख लम्बा होने से यहाँ मैंने आपके २-४ आक्षेपों का ही समाधान किया है। समय मिलने पर सभी का भी दे दिया जायेगा। आपका लेखन वदतोव्याघात दोष से भी युक्त है। एक ओर तो कह रहे हैं कि एक भी असंगति आपको ऐसी नहीं मिली जिसे समिति ने दूर किया हो। दूसरी ओर स्वयं आप ही लिख रहे हैं कि समिति ने भु.डक्ते न केवली के महाभ्रष्ट अर्थ का संशोधन कर प्रशंसनीय कार्य किया है। जादू वह जो सिर पर चढ़ कर बोले । सुरेन्द्र जी, समिति ने अन्यत्र भी अनेक स्थानों पर ऐसा किया है जिसे पूर्वाग्रह दोष रहित व्यक्ति ही देख सकता है, आक्रामक बुद्धि वाला नहीं। यही पर आपने एक लाख के पुरस्कार की घोषणा भी की है। मैं आपको दस लाख दूँगा यदि आप ऐसे सत्यार्थ प्रकाश का सम्पादन कर दें कि जिसमें एक भी अशुद्धि न हो तथा जो सर्वथा आक्षेपशून्य हो। कहिए तैयार हो तो लिखने की कृपा करें।



सत्यासत्य के स्वयमेव निर्णयार्थ एक बार 'मानक संस्करण' स्वयं पढ़ें

> क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आजकाल के, स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा हानि और बन्ध करने में तत्पर होते हैं, वैसे मैं भी होता। परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं।
>
> **महर्षि दयानन्द,सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ५**

> जो पक्षपातरहित न्याय,सत्य का ग्रहण,असत्य का सर्वथा परित्याग रूप आचार है,उसी का नाम धर्म्म और इससे विपरीत जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण,सत्य का त्याग और असत्य का ग्रहण रूप कर्म्म है,उसी को अधर्म्म कहते हैं।
>
> **महर्षि दयानन्द,सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ५२**

'ओ३म्'

आर्य जनता सावधान

क्या सत्यार्थ प्रकाश की भाषा तथा भावों को बदल दिया जाये ?

डॉ. रघुवीर वेदालंक

उक्त प्रश्न अति गंभीर एवं भयावह है। इसीलिए यह आर्य जनता से उत्त की अपेक्षा कर रहा है। कुछ अति बुद्धिमान शोधार्थी विद्वान् इस पक्ष में हैं कि वर्तमा में सवा सौ सालों से प्रचलित सत्यार्थ प्रकाश की भाषा तथा भावों को बदल कर इसक नवीन आधुनिक संस्करण प्रस्तुत किया जाए।

ऐसे विचारशील विद्वानों में हैं,डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी, जो परोपकारी के दिसम्ब अंक में स्पष्ट लिख रहे हैं **'यथाशीघ्र भाषा और भाव की दृष्टि से सत्यार्थ प्रकाश क शुद्धतम संस्करण प्रस्तुत किया जाए।'** यह विद्वान् ऐसा भी कह रहे हैं कि 'हमारे पू विद्वानों ने सवा सौ सालों की सुदीर्घ अवधि में अपना कर्तव्य पूर्णरूपेण नहीं निभाया वाह पंडित जी? क्या कमाल है आपके पांडित्य का ? कि सभी पूर्ववर्ती विद्वानों तथ पूर्वजों को भी आपने कटघरे में खड़ा कर दिया । जो कार्य वे मनीषी नहीं कर पाये,उ अब आप पूर्ण करेंगे,सत्यार्थ प्रकाश के भावों तथा भाषा को बदल कर। किसी भ **पुस्तक में भाव तथा भाषा ही तो उसका सर्वस्व होती है। यदि इन दोनों को ही बद दिया जाए तो पुस्तक में बचेगा ही क्या ?** केवल उसका नाम। तो सुरेन्द्र जी भी ऋ की भाषा तथा भावों को तिलाजंलि देकर सत्यार्थ प्रकाश के नाम पर अपनी भाषा तथ भावों से पूर्ण कोई पुस्तक बनाना चाहते हैं। क्या ही सराहनीय प्रयास है आपका। बिल्ल **थैले से बाहर आ गई है।** अब आर्यजनों को डॉ.धर्मवीर जी,डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी तथ पंडित विरजानन्द जी की त्रिवेणी की योजना का पता चल चुका होगा कि ये लोग क्य चाहते हैं। पंडित विरजानन्द जी से सम्पादित कराकर परोपकारिणी ने तो पहले ह सत्यार्थ प्रकाश की एक रफ कॉपी को आधार बनाकर सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संस्कर का दाह संस्कार कर दिया है। अब विद्वान् भाषा वैज्ञानिक डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी ऋषि भावों तथा भाषा को पूर्णतः तिलांजलि देकर, किसी नये सत्यार्थ प्रकाश की रचना कर चाहते हैं। इसके पीछे उनका तर्क है कि 'यदि किसी दिन किसी शोधार्थी ने सत्या प्रकाश का भाषात्मक विवेचन प्रस्तुत कर दिया तो विश्व समाज के समक्ष सत्यार्थ प्रका की बेचारगी और असमंजस की स्थिति बन जायेगी।' वाह शोधार्थी जी, धन्य हैं आ कृपा करके आप ही इस पुण्य कार्य को कर दीजिए। किन्तु विद्वान् गवेषक! क्या तु पता नहीं है कि ऋषि दयानन्द के समय जो भाषा प्रचलित थी, वही सत्यार्थ प्रकाश अभी तक सुरक्षित है। यह एक इतिहास है। उसकी भाषा को बदल कर क्या आ

तात्कालिक भाषा का गला नहीं घोंट देंगे तथा इससे भी भयावह यह है कि आप ऋषि के भावों को भी बदलना चाहते हैं तो क्या आपकी दृष्टि में दयानन्द मूर्ख, अनाड़ी था जिसने ऐसे भावों से युक्त सत्यार्थ प्रकाश बनाया। क्या उसे पता नहीं था कि एक परम विद्वान् डॉ. सुरेन्द्र जी पैदा होंगे जो मेरे से भी उन्नत भावों का सत्यार्थ प्रकाश बना देंगे? शिष्यों को गुरु से आगे होना ही चाहिए।[१]

इन सवा सौ सालों में तो एक भी शोधार्थी ऐसा नहीं निकला जिसने सत्यार्थ प्रकाश की भाषा तथा भावों को बदलने का प्रयास किया हो,जबकि शोध हिन्दी तथा संस्कृत में निरन्तर हो रहे हैं। डॉ. सुरेन्द्र जी? आप ऋषि की भाषा को समझने की योग्यता भी रखते हैं या नहीं? बदलने की बात तो दूर की है। ऋषि संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का प्रयोग करते हैं। यथा अग्नि जल रहा है। वायु चल रहा है। आप तो लिख देंगे अग्नि जल रही है। इसी प्रकार ऋषि के समय 'जो जो' को 'जो२' लिखा जाता था। सत्यार्थ प्रकाश में यही भाषा प्रयुक्त है जो तात्कालिक भाषा का स्वरूप प्रस्तुत कर रही है। आप इसे जो-जो बनाकर भाषा के उस स्वरूप को ही भुला देना चाहते हैं जो कि सत्यार्थ प्रकाश में सुरक्षित है। आप इस शैली को अपरिष्कृत तथा त्याज्य बतला कर तात्कालिक भाषा को ही दफना देना चाहते हैं।

आर्यजन देखें कि इस युवा विद्वान् ने कितने साहस के साथ यह बात लिखी है कि 'बाप दादा खारा पानी पीते रहे हैं। इसलिए हम भी खारा पानी ही पीयेंगे। अब मीठे पानी के युग में यह सोच समझदारी की नहीं कही जा सकती।' हमारे सभी पूर्ववर्ती विद्वान् तथा आर्यजन अब तक सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संस्करण का खारा पानी पीते रहे। सुरेन्द्र जी के अनुसार यह उनकी मूर्खता ही थी। अब ये सुरेन्द्र नामक युवा अनुसंधाता उसकी भाषा तथा भावों को पूर्णतः बदल कर सभी को मीठा पानी पिलायेंगे तो इसके साथ ही अब तक प्रचलित सत्यार्थ प्रकाश तथा उसमें निहित दयानन्द के भावों तथा भाषा को दफनायेंगे, तो यह ऋषि भक्ति है या ऋषि द्वेष ? इसका निर्णय आर्य जनता करेगी तथा इस त्रिवेणी को यथोचित उत्तर भी देगी कि तुम्हें ऋषि के भावों तथा भाषा को बदल कर सत्यार्थ प्रकाश की हत्या करने का क्या अधिकार है।

---

१ यहाँ पाठक यह भी विचार करें कि परोपकारिणी द्वारा अपने ३८ वें तथा ३६ वें संस्करण में क्या दावा किया है- ' कुछ विद्वान् महर्षि की भाषा में वर्तमान समयानुकूल परिवर्तन करने का तथा भाव को स्पष्ट करने के लिए कुछ शब्द बढ़ा देने का व्यर्थ आग्रह किया करते हैं यह अनुचित है। स्पष्ट है कि डा. सुरेन्द्र जी तथा परोपकारिणी सभा के अधिकारियों एवं श्री विरजानन्द जी के मध्य इस विषय को लेकर मतभिन्नता है, फिर भी 'चुप-चुप' 'छुप-छुप' की नीति में मेल है, यह क्या घालमेल है ?

मैंने मानक संस्करण के सम्पादकीय में यह संकेत कर दिया है। इस त्रिवेणी के कद उसी दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। जिस मानक संस्करण ने ऋषि की भाषा तथा भावों को सर्वथा अपरिवर्तनीय माना है, उस पर मिथ्या आरोप इनके द्वारा लगाये जा रहे हैं।

आर्य जनता सावधान।

❑❑❑

सत्यासत्य के स्वयमेव निर्णयार्थ एक बार 'मानक संस्करण' स्वयं पढ़ें

क्या अन्य कोई भाषाविद् व्यक्ति जैसे इंगलिश भाषी लेखक भी प्राचीन लैटिन आदि भाषाओं में रचित ग्रन्थों का आधुनिक रूपान्तर करके (बीच-बीच में अर्ध या खण्डित वाक्यों की मिलावट करके) उस ग्रन्थ के स्वरूप को बिगाड़ कर छपवाने की दुश्चेष्टा कर रहा है या उसने ऐसी कुचेष्टा कभी की है? जैसे शेफर्ड्स-कलेन्डर आदि की भाषा में परिवर्तन करना। फिर आर्य समाज में छूट क्यों ?

–आचार्य विशुद्धानन्द जी मिश्र

जब इंशा अल्ला खां, लल्लू लाल, सदल मिश्र और मुंशी सदासुख राम स्वामी जी के पूर्व हिन्दी लेखक थे तथा स्वामी जी के समसामयिक लेखक भाषा लिखकर अपने विचार प्रकट कर रहे थे तो क्या आज तक किसी ने 'रानी केतकी की कहानी' आदि पुस्तकों की तथा अन्यों की भाषा का 'आधुनिक रूपान्तर' करने का दु:साहस कर उस समय की भाषा की परिपाटी को ध्वस्त करने का कुप्रयास किया है? और यदि कोई करता तो क्या हिन्दी के समालोचक उस व्यक्ति की धज्जियां नहीं उड़ा देते? स्मरण रखना चाहिए कि महर्षि अपने समय में भाषा के स्वरूप निर्धारण में तथा धार्मिक ग्रन्थों के अनुवाद प्रस्तुत करके भाषा को सक्षम बनाने में जुटे हुए थे और रेंगने में भी असमर्थ आर्य भाषा को अपनी लेखनी की अंगुली पकड़ाकर ऋषिवर ने घुटनों चलना और खड़े होना सिखाया था। उस समय के रेंगने वा घुटनों चलने की भाषा की ठुमकन का, अनुवाद वा रूपान्तरित आधुनिक भाषा द्वारा कैसे प्रत्यक्ष किया जा सकेगा ?

–आचार्य विशुद्धानन्द जी मिश्र

विरोध के लिए विरोध

- अशोक आर्य

एक बार पुनः सत्यार्थ प्रकाश पाठभेद संबंधी चर्चा पत्र पत्रिकाओं में है। अन्य अनेक विद्वानों व आर्यों की तरह हम भी इस चर्चा को आम रूप में करने के पक्षधर नहीं हैं। इसी कारण जब सन् २००४ में हमारा पुस्तक रूप निवेदन **'कब तक मौन रहेंगे'** छपा तो उसे केवल विद्वानों की सेवा में हमने प्रस्तुत किया। पश्चात् जब उस निवेदन पर अपनी प्रतिक्रिया/झल्लाहट पत्रिकाओं में छापी गई,तब हमें भी मजबूरी में उत्तर लिखना पड़ा । हाँ तब एकाध स्फुट लेख भी लिखे हो सकते हैं। परन्तु जब **सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के प्रधान आचार्य विशुद्धानन्द जी मिश्र के नेतृत्व में विद्वत् समिति का गठन हो गया तब से अब तक इस विषय में एक भी लेख हमने नहीं लिखा।** यहाँ तक कि परोपकारिणी सभा का ३६ वां संस्करण भी प्रकाशित हो गया जिसमें पुनः उनकी स्थापित कसौटियों से विरुद्ध अनेक पाठ तथा संस्करण २ से हटकर अनेक पाठ मौजूद थे । इस पर हमने पत्र पत्रिकाओं में कुछ न लिख, परोपकारिणी सभा के मान्य प्रधान जी को प्रमाण सहित पत्र लिखा। उत्तर न आने पर, स्मरण पत्र भी लिखा। पर उत्तर नहीं आया । ज्ञात हुआ कि प्रधान जी अस्वस्थ थे। अतः उत्तर न आना स्वाभाविक था।

अब तक हमने यह मान लिया था कि लिखा पढ़ी का कोई लाभ नहीं होने वाला। इसका एक ही हल था **'मानक संस्करण का प्रकाशन।'** सो प्रभु कृपा से हो गया।

जैसाकि श्री भावेश मेरजा जी ने मुझे व आदरणीय डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी को पत्र लिखा,एक प्रकार यह भी हो सकता था कि पत्रों में लेखादि की बजाय,उक्त संस्करण में रह गई अशुद्धियों से हमें अवगत कराया जाता। यह प्रशस्त पथ था। हमें स्वीकार ही नहीं,हम मानसिक रूप से तैयार थे तथा तैयार हैं कि ऐसी समस्त अशुद्धियों का, जो हमारी जानकारी में लायी जावेंगी, विद्वत् समिति द्वारा निराकरण अवश्य करवाया जायेगा। परन्तु ३७-३६ वें संस्करण के कर्ता-धर्ताओं को सत्यार्थ प्रकाश पाठभेद समस्या का सर्वमान्य हल नहीं, वरन् मानक संस्करण की निन्दा कर उसे पाठकों की नजरों में गिराना था, उसकी लोकप्रियता के मार्ग में बाधा खड़ी करनी थी, अतएव लेख माला का प्रारम्भ हुआ। जिसमें 'राई का पहाड़' बना देने जैसी स्थिति 'तथ्यतः' है।

अब हमारी व विद्वत् समिति की मजबूरी है कि आर्यजनों को बराबर सत्य से परिचित करावें। इसीलिए यह लेख है और आगे भी क्रम रहा तो उत्तर दिया ही जावेगा। हाँ, **हमारा अभी भी निवेदन यही है कि सभी विद्वान् मानक संस्करण में रह गई अशुद्धियों के बाबत हमें बतावें।** विद्वत् समिति उन पर सकारात्मक रूप से अवश्य विचार करेगी, यह हमारा वायदा है। सत्य को ग्रहण किया जावेगा। और कुछ भी गुपचुप नहीं किया जावेगा, जैसा कि अन्य प्रकाशकों की परम्परा है।

परोपकारी पाक्षिक अंक २१ वर्ष ५१ नवम्बर(प्रथम) २०१० पृष्ठ ६४८ से पृष्ठ ६५३ तक में श्री विरजानन्द जी दैवकरणि ने श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास,उदयपुर द्वारा प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश के मानक संस्करण पर **'सत्यार्थ प्रकाश का मानक संस्करण एक पाखण्ड'** नाम से लेख लिखा है। इस लेख के नाम से ही पाठकगण श्री दैवकरणि जी की मानसिकता समझ सकते हैं। विरोध के लिए ही विरोध करने के बजाय लेखक ने अगर मानक संस्करण की स्वस्थ समालोचना की होती तो आपत्ति की बजाय हम आभार मानते। **जो सज्जन स्वयं १९६२ से अब तक न अपनी कसौटियों का निर्धारण कर सके और न ही शुद्ध पाठ का, उनकी सम्पादन कला स्वयमेव प्रत्यक्ष है।**

निरन्तर बदलते हुए पाठों के जनक, किसी अन्य के कार्य पर प्रश्नचिह्न लगायें तो बड़ा अटपटा लगता है। इससे पूर्व कि इनके लेख में व्यक्त आपत्तियों का उत्तर हम दें,मात्र एकाध उदाहरण देकर इनकी सम्पादन कला और मानसिकता को पाठकों के समक्ष रखना हम उचित समझते हैं।

(अ)श्री दैवकरणि जी द्वारा सम्पादित तथा परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित **संस्करण ३७** में स्वीकार्य कसौटियाँ तथा दावे:-

' इस संस्करण के संबंध में' शीर्षक के अंतर्गत-

विशेष वक्तव्य-(१) ' मूल प्रति के पृष्ठ जहाँ अनुपलब्ध थे (जैसे बारहवें समुल्लास में) वहाँ मुद्रण प्रति का आश्रय लिया गया है'

<u>नोट</u>- यहाँ संस्करण २ को कोई महत्व नहीं दिया गया है।

(२) **'इस ग्रन्थ में ऋषि दयानन्द सरस्वती के वाक्यों को ज्यों का त्यों रखा गया है।** इससे उनके भाव और भाषा उसी रूप में सुरक्षित रह गये हैं।

<u>नोट</u>- अपने इस लेख में विरजानन्द जी दैवकरणि पूर्ण संतुष्ट प्रतीत होते हैं कि उन्होंने ऋषि के प्रत्येक वाक्य को सही सही पहचान लिया है। इसीलिये वे अन्य प्रकाशकों को राय देते हैं कि- 'सभी प्रकाशकों को चाहिये कि भाव और भाषा की एकता और एकरूपता के लिये भविष्यत् में इसी संस्करण का आश्रय लें।'

(ब) इन्हीं सम्पादक व इन्हीं प्रकाशक द्वारा प्रकाशित **संस्करण-३८** में वे स्वयं अपनी राय पर स्थिर नहीं रहते। बिना हेतु दिये अपने आगामी संस्करण (३८ वें संस्करण) में **व्यापक फेरबदल कर देते हैं** । कहीं कोई स्पष्टीकरण नहीं।

परन्तु दैवकरणि जी ३८ वें संस्करण में पुनः यह लिखना नहीं भूलते:-

'इस संस्करण में महर्षि दयानन्द सरस्वती के एक-एक अक्षर का मिलान करके उनके वाक्यों को ज्यों का त्यों रखा गया है। '

<u>नोट</u>- ३७ वें संस्करण में भी यही दावा किया था। अब ३८ वें में भी यही दावा है। पर दोनों संस्करणों में व्यापक भेद उपस्थित हैं। क्योंकि **अपारदर्शिता** का पूर्ण आश्रय लिया गया है अतः सत्यार्थ प्रकाश प्रेमियों को कुछ पता भी नहीं चलता।

नोट– इन दोनों संस्करणों अर्थात् ३७ व ३८ वें में संस्करण २ अथवा उसके प्रूफों की, प्रामाणिकता में योगदान की, कोई चर्चा नहीं है।

यहां ३८ वें में भी पुनः दैवकरणि जी राय देने से नहीं चूकते–

' सभी प्रकाशकों को चाहिये कि महर्षि जी के भाव भाषा और मूल पाठों की एकरूपता के लिये भविष्यत् में इसी संस्करण का आश्रय लें और व्यर्थ के वाद विवाद को प्रश्रय न दें।' (यहां भाषा कुछ कुछ फतवे जैसी हो जाती है।) परन्तु हुआ क्या ? एक बार फिर ये विद्वान् सम्पादक अपनी राय पर कायम नहीं रहते।

(स) अब इन्हीं के द्वारा सम्पादित तथा उसी सभा द्वारा प्रकाशित एक और संस्करण प्रकाश में आता है।

३६ वां संस्करण

३६ वें संस्करण में तो हद ही हो गई। अब कसौटियों में भी परिवर्तन हो गया।

पहली बार यह घोषित किया गया ऋषि ने प्रूफ में जो संशोधन किए थे वे भी स्वीकार किये हैं। धन्य हो १३ वर्ष के अन्तराल में भी कसौटियों तक का भी निर्धारण नहीं कर सके। ऐसे सज्जन अगर अन्य कार्यों के प्रति 'पाखण्ड' जैसे शब्द का प्रयोग करें तो क्या आश्चर्य? परन्तु ये प्रूफ क्या परोपकारिणी सभा अथवा दैवकरणि जी के पास उपलब्ध हैं ? उनके वक्तव्य से तो यही प्रतीत होता है कि ये प्रूफ हैं। अगर ऐसा है तो जब १९९२ में आपने महान् शोध कार्य किया और ऋषि के एक एक अक्षर को संग्रहीत करने का दावा किया तब इतने महत्वपूर्ण प्रमाण का उपयोग क्यों न किया? यह प्रश्न उत्तर माँगता है। परन्तु गत १८ वर्षों का इतिहास साक्षी है कि समस्त आर्य जगत् को अपने अंगूठे के नीचे समझने वाले, किसी भी दायित्व के अंतर्गत् स्वयं को नहीं समझते।

कहीं कोई चूक किसी से भी हो सकती है। स्वयं भूलों व चूकों के सम्राट होकर भी, एकाध चूक को लेकर आचार्य पंडित विशुद्धानन्द जी मिश्र, प्रभृत विद्वानों एवं विद्वत् समिति के सदस्यों का अपमान करने में जिन्हें तनिक भी संकोच नहीं, उन्हें स्वयं के गिरेबान में झाँकना चाहिए।

३६ वें संस्करण की कसौटियों का सार यह है कि-प्रथम (मूल) हस्तलेख स्वतः प्रमाण है। (२) प्रेस प्रति में महर्षि द्वारा किए संशोधन ही स्वीकार्य हैं, प्रतिलिपिकार द्वारा बढ़ाया पाठ अमान्य है। ऋषि द्वारा किए गए प्रूफ संशोधन मान्य हैं।

मानक संस्करण विद्वत् समिति ने निर्धारित कसौटियों से तनिक भी इधर उधर कार्य नहीं किया है। परन्तु स्वयं दैवकरणि जी निरन्तर अपनी कसौटियों और पाठों के स्वीकरण में परिवर्तन करते जा रहे हैं और मानक संस्करण विद्वत् समिति की प्रतिज्ञाओं पर आक्षेप कर रहे हैं। इससे बड़ी विडम्बना क्या हो सकती है?

नीचे अति संक्षेप में मात्र एकाध उदाहरण देकर ही हम इनकी मनःस्थिति व इनके कार्य की प्रकृति बताने का प्रयास करेंगे। यद्यपि इनके द्वारा सम्पादित तीनों संस्करण इस प्रकार की बातों से भरे पड़े है।

१. तीनों संस्करणों में पाठ भेद (ये इतने अधिक हैं कि एक पुस्तक ही लिखनी पड़ जाय)

यहाँ केवल यह जानना चाहेंगे कि आपके पास रफ हस्तलेख, प्रेस हस्तलेख व मूल प्रूफ सभी विद्यमान थे, पर क्या कारण रहा कि आप तीनों प्रयासों में भी १४ वें समुल्लास में आयतों की संख्या तक का निर्धारण भी न कर सके।

१४ वें समुल्लास की आयत संख्या

३६ वें में	३७ वें में	३८ वें में	३६ वें में	सं.२(१८८४) में	मानक संस्करण में
१६१	१७०	१७२	१७१	१५६	१५६

पाठक देख लें मानक संस्करण में वही संख्या है जो मूल सत्यार्थ प्रकाश में है। परन्तु परोपकारिणी सभा के चारों संस्करणों में इस संख्या को देख लें । क्या एक मात्र यह तथ्य ही सत्यार्थ प्रकाश की प्रामाणिकता को सन्देह में नहीं डाल देता ? ३६ वें संस्करण में पृष्ठ ३ पर उद्धृत **यजुर्वेद अध्याय १३ मन्त्र १८** में **'भूरसि............. मा हिं सी'** है। 'मा हिं सी' के पश्चात् **पुरुषंजगत् पाठ मूल संहिता में नहीं है यह ज्ञातव्य है,** (देखें यजुर्वेद भाष्यम् (द्वितीयो भाग:) वैदिक पुस्तकालय, अजमेर (१६६३, पृष्ठ २१४) परन्तु सभा के संस्करणों में इस मंत्र के अंत में 'पुरुषंजगत्' पाठ की स्थिति देखें।

३६ वें में	३७ वें में	३८ वें में	३६ वें में	सं.२(१८८४) में	मानक संस्करण में
नहीं है	नहीं है	नहीं है	लिया है	नहीं है	नहीं है

यह भी ध्यान रखें कि 'मूल प्रति' को निरन्तर परम प्रमाण मानने वाले सम्पादक शिरोमणि मूल व प्रेस प्रति में उपस्थित 'पुरुषंजगत्' को ३७ वें व ३८ वें में नहीं लेते। ३६ वें में लेते हैं। क्या ये संशयमुक्त कहे जा सकेंगे ? इतना महान् कार्य (?) करने वाले किस मुँह से अन्यों की आलोचना कर पा रहे हैं ? घोर आश्चर्य है।

इस परिवर्तन यात्रा के इतने उदाहरण हैं कि सत्यार्थ प्रकाश प्रेमी चकरा जायें । हमने केवल दो उदाहरण दिए हैं।

क्या अब भी आप इनकी लुढ़कनियों की दाद नहीं देंगे?

अन्य सम्पादकों को तो हस्तलेख व प्रूफ उपलब्ध नहीं थे। अतः उनसे निष्कर्ष तक पहुँचने में चूक हो सकती है,पर आपके स्वामित्व में तो सब कुछ था, सब कुछ है, फिर भी यह स्थिति क्यों ? क्या यही सम्पादन कला है ?

आपने कसौटियों का निरन्तर परिवर्तन कर,ऐसा भूलभुलैया निर्मित किया है और सम्पूर्ण अपारदर्शिता के प्रति वचनबद्ध हो, वस्तुतः स्वेच्छाचारिता का ऐसा चक्र बनाया है,कि पाठक सदैव भ्रम में रहे।

जबकि मानक संस्करण में प्रत्येक परिवर्तित पाठ को चिह्न सहित दर्शाया है। ऐसा साहस आप क्यों नहीं कर सके? जहाँ विद्वत् समिति ने पाठान्तर स्वीकार किये हैं उन्हें स्पष्ट दर्शाने से दो लाभ सदैव हैं।

(अ) पाठक को पता है कि यह पाठान्तर विद्वत् समिति ने किया है । वे स्वतंत्र हैं कि उसे मानें या न मानें । मूल सत्यार्थ प्रकाश के पाठ को मानें।

(ब) १८८४ का सत्यार्थ प्रकाश सदैव पाठक सामने सुरक्षित है।

आप द्वारा सम्पादित संस्करणों में क्या यह संभव है ? आप कहाँ कहाँ रफ हस्त० से हटे, क्यों हटे, क्या वह प्रेस प्रति का पाठ है अथवा प्रूफ के शोधन का परिणाम ? पाठक कुछ नहीं बता सकता। आप स्वयं कुछ समय पश्चात् नहीं बता सकते। मानक संस्करण की अभूतपूर्व पारदर्शिता में, भूलवश हुई एकाध चूक पर आप बावेला मचा रहे हैं। पक्षपातरहितता तो तब होती जब आप इस पारदर्शिता की प्रशंसा करते हुए, रह गई चूकों को बताते। विद्वत् समति ने साशय कुछ नहीं छिपाया है।

आपने अपने लेख में मानक संस्करण के सम्पादक महोदय को सम्बोधित कर चुनौती दी है कि (३६ वें संस्करण के संदर्भ में) 'क्या वे एक भी ऐसा उदाहरण देंगे जो पाण्डुलिपि व प्रेस प्रति में न हो और बिना आधार व बिना प्रमाण के मनमाने ढंग से किए हों?' **इसका उत्तर है कि इसके विपुल उदाहरण हैं। पर हम केवल दो तीन उदाहरण देंगे ।**

उदाहरण संख्या १:- मूल व प्रेस प्रति में 'मन से भी ध्यान करें' वाक्य है। यहाँ आपने 'मन से भी ध्यान न करें यह लिया है, जो उचित तो, है परन्तु यह मूल, प्रेस, संस्करण २ कहीं भी नहीं है। आपने इस पर [ ] निशान भी नहीं लगाया है। विद्वत् समति ने भी इसे लिया है पर @ लगाकर पाठकों को यह बता दिया है कि इस शब्द को लेने का निर्णय विद्वत् समिति का है। अब आप बतायें कि आपने जो घालमेल किया उसका आधार क्या है ? आपने क्यों यह स्वीकार नहीं किया कि यह आपके द्वारा स्वीकृत पाठ है। (संदर्भ ३६ वाँ संस्करण, पृष्ठ ६३, पंक्ति १२)

यहाँ यह भी ध्यान रखें कि विद्वत् समिति ने सभी चिह्नों के बारे में, कि वे किस आधार को प्रदर्शित करने के लिए प्रयुक्त किये गये हैं, सम्पादकीय में ही बता दिया है। पर आपने [ ] के बारे में ऐसा कुछ भी नहीं बताया है। पाठकों को ठेंगे पर रखने की मानसिकता इसे आवश्यक नहीं समझती ।

उदाहरण संख्या २:-

' विचार के देके पूरी करना उसको भंग होने कभी न देना'

मूल हस्तलेख में यह वाक्य है ही नहीं,जबकि प्रेस हस्तलेख में ऋषि ने स्वयं लिखा है। आपने न तो ऋषि के हस्तलेख में उपस्थित इस वाक्य विन्यास को स्वीकार किया और इसमें प्रतिज्ञा शब्द जोड़ते हुए लिखा है 'विचार के,देके प्रतिज्ञा पूरी करना, उसको कभी भंग होने न देना' (३६ संस्करण, पृष्ठ १००, पंक्ति २३)

(अन्य स्थानों पर भी आपने अपनी कसौटी के विरुद्ध ऋषि-हस्त से हुए संशोधन को स्वीकार नहीं किया है। पर विस्तार भय से सभी उदाहरण अभी नहीं दे रहे हैं।)

इसमें 'प्रतिज्ञा' शब्द स्वीकार करते हुए भी [ ] प्रकार का कोई निशान नहीं लगाया है कि जिससे पाठक को यह पता चल सके कि यह आप द्वारा जोड़ा गया पाठ है। मानक संस्करण में इस पर @ चिह्न लगाया है। आप बतायें ऋषि के हाथ से लिखे हुए वाक्य को भी यथावत् स्वीकार न कर और इस सारे मामले को गुपचुप कर, आपने किन प्रतिज्ञाओं का पालन किया? और क्या पाठक इस 'प्रतिज्ञा' को आपके घालमेल के चलते ऋषि-प्रोक्त समझने को विवश नहीं हो जावेंगे ?

उदाहरण ३:-(३६ वाँ संस्करण, पृष्ठ २२५, पंक्ति १४)। रफ प्रति, प्रेस प्रति तथा संस्करण २ में 'महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी पत्नी मैत्रेयी से कहते हैं कि हे मैत्रेयी' वाक्य है। आपने 'महर्षि याज्ञवल्क्य उद्धालक से कहते हैं कि हे उद्धालक' लिया है। मानक संस्करण विद्वत् समिति ने भी लिया है। पर @ चिह्न दिया है। **आपने कोई चिह्न नहीं दिया।** यह आपके द्वारा स्वीकृत किस कसौटी में यह आता है, यह आप विचार करें। पाठकगण ध्यान दें, कि 'मानक संस्करण विद्वत् समिति' की कसौटियों में तो यह दर्शाया है कि अत्यावश्यक होने पर विद्वत् समिति के पाठ भी लिए जावेंगे, पर मान्यवर दैवकरणि जी द्वारा सम्पादित संस्करणों को देखा जाए तो कहीं भी यह स्वीकार नहीं किया है कि अनेक पाठ सम्पादक जी के स्वविवेक के भी हैं। **बस एक ही राग अलापा गया है कि एक-एक अक्षर ऋषि का है जो पूर्णतः असत्य तथा सत्यार्थ प्रकाश प्रेमियों के साथ एक छलावा है।** पाठकों से विनम्र अनुरोध है कि पारदर्शिता के क्या लाभ हैं इसे समझें। उदाहरण के लिए यह 'प्रतिज्ञा' शब्द परोपकारिणी सभा के संस्करणों में लिया है, वह मानक संस्करण में भी है। पर परोपकारिणी में गुपचुप होने से ऋषि का ही समझा जावेगा जबकि इसे सम्पादक जी ने ग्रहण किया है। कल को यह साबित हो जावे कि यहाँ 'प्रतिज्ञा' शब्द होना भारी भूल है (जैसाकि ५वें संस्करण में प्राण को अपान तथा अपान को प्राण बना देने से हुआ था) तो परोपकारिणी सभा के संस्करणों के अनुसार तो इस भूल का दायित्व स्वयं ऋषि के सिर पर आवेगा, जो कि पूर्णतः असत्य होने से ऋषि के प्रति गम्भीर अपराध होगा। जबकि मानक संस्करण के अनुसार यह दायित्व विद्वत् समिति पर होगा यह विद्वत् समिति की ही भूल मानी जावेगी। ऋषि की नहीं। **यह है महान् अन्तर गुपचुप तथा पारदर्शिता में।**

मान्यवर ! तनिक पाठकों को यह बताने का श्रम करें कि 'चतस्रोऽवस्था' की व्याख्या में जो कुछ लिखा है (जिसमें १६ वर्ष में यौवन का आरम्भ बताया है) उसका

क्या आधार है? आपके गुपचुप के चलते क्या यह पाठ ऋषि प्रोक्त नहीं माना जावेगा ? और कभी पाठक सत्यार्थ प्रकाश के अन्य संस्करणों में (सभा के संस्करणों सहित) इस स्थल को देखेगा, तो सत्यार्थ प्रकाश के प्रति क्या धारणा बनायेगा ?

पूरे संस्करण में ऐसी स्थिति अनेकत्र दृष्टिगोचर होती है, कहाँ तक लिखें ? आपने कुछ जगह [ ] निशान देकर यह द्योतित करने का प्रयास किया है कि ऐसे पाठ जिनको आपने स्वविवेक से स्वीकार किया है वह [ ] निशान में दिए हैं। **पर सच तो यह है कि अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ आपने अपने स्वविवेक से पाठ स्वीकृत किए हैं और उन पर कोई चिह्न न लगाकर पाठक को इसी भ्रम में रखा है कि यह सब ऋषि के ही शब्द हैं।** और इस बात की घोषणाएँ तो आपने अनेक जगह कर ही रखी हैं कि **आपने ऋषि के एक एक शब्द का निर्धारण कर लिया है।** मानक संस्करण में भूलवश कहीं @ लगाना रह गया तो उसको लेकर के आप बवाल मचाते हुए पाठकों को भ्रमित करने में अपनी ऊर्जा का दुरुपयोग कर रहे हैं। उदाहरण के तौर पर अपने लेख पृष्ठ ६५० पर आपने जो संकेत दिए हैं वहाँ अधिकांश में चिह्नादि लगाने से रह गए हैं। मृत स्त्री [क] पुरुष ही आपने स्वीकार किया है। **मानक संस्करण में तालिका में यह है, पर पाठ में चिह्न रह गया है। हम यहां भी कहते हैं और आगे भी कहते रहेंगे कि विद्वत् समिति द्वारा स्वीकृत कसौटियों के प्रतिकूल अगर कहीं कुछ है और कोई भी विद्वान् या पाठक उस बारे में हमें बतायेंगे तो उनका उपकार ही होगा, ताकि हम उसे विद्वत् समिति में विचारार्थ रख,आवश्यक होने पर ठीक कर सकें। गुपचुप कुछ भी नहीं होगा निश्चित रहें, गुपचुप के लिए आप ही बहुत हैं।**

३८ वें संस्करण में सम्पादक जी द्वारा स्वीकृत कसौटियों से हटकर किस प्रकार स्वेच्छाचारिता बरती गयी है, इसके कुछ उदाहरण देखें।

(अ)सत्यार्थ प्रकाश रफ (मूल) प्रति, भूमिका में प्रथम परिच्छेद में '..........संस्कृत भाषण करने और इसके पूर्व भी' है प्रेस प्रति में ' .....संस्कृत भाषण करना और पठन ....'(यहाँ ऋषि ने'ने' का 'ना' किया है,'इसके पूर्व भी' काटा है परन्तु 'और' को नहीं काटा है। द्वितीय संस्करण में 'संस्कृत भाषण करने ,पठन पाठन में संस्कृत ही बोलने.....' है।

यहाँ सम्पादक जी ने ३८ वें संस्करण में,मूल और प्रेस प्रति में उपस्थित 'और' को स्वीकार नहीं किया और इस प्रकार संस्करण २ का आधार लिया है। परन्तु मूल में उपलब्ध 'करने' जिसे प्रेस प्रति में ऋषि ने 'करना' कर दिया है वहाँ प्रेस प्रतिं के पाठ 'करना' को स्वीकार किया है तथा संस्करण दो के 'करने' की उपेक्षा की है। इस प्रकार एक ही वाक्य में पृथक्-पृथक् कसौटियाँ स्वेच्छया लागू की हैं।

आपने नई कसौटी 'प्रूफ रीडिंग' के समय में किए परिवर्तनों को मान्य किया है। अतः आपका उत्तर संभवतः यह होगा कि 'और' इसलिए स्वीकार नहीं किया कि दोनों प्रतियों में होने के बावजूद ऋषि ने प्रूफ रीडिंग के समय काट दिया अतः सं.२ का सहारा लिया । परन्तु प्रेस प्रति का 'करना' स्वीकार कर संस्करण २ के 'करने' को अमान्य करने में, यहाँ ऋषि ने प्रूफ रीडिंग के वक्त कोई परिवर्तन नहीं किया, इस अवधारणा की स्थापनार्थ प्रमाण क्या दिया है?

(ब)आपने अपनी स्वीकृत कसौटियों में स्पष्टतः कई बार लिखा है कि मूल प्रति व प्रेस प्रति में पाठान्तर होने पर प्रेस प्रति के उन्हीं पाठान्तरों को आपने स्वीकार किया है जो ऋषि ने अपने हाथ से संशोधित किए हैं। परन्तु अनेकत्र आपने जहाँ आपको अनुकूल लगा, वहाँ प्रतिलिपिकर्ता के पाठान्तरों को स्वीकार किया है । एकाध उदाहरणः-

	मूल प्रति का पाठ	मुद्रण प्रति का पाठ	३६ वें संस्करण की स्थिति	टिप्पणी
१.	'जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को सत्य....'	असत्य को ***भी*** सत्य'	मुद्रण प्रति का पाठ स्वीकार	मु.प्र.का 'भी' प्रतिलिपिकार का है महर्षि जी के हस्तलेख में संशोधन नहीं सं.२ में 'भी' है।
२.	'यद्यपि आजकाल' (यहां यद्यपि में से 'द्यपि' काटकर ऋषि ने ऊपर दपि किया है) अर्थात् 'यदपि' बनाया है	'यदपि आजकाल'	मु.प्र.का 'यदपि' तो स्वीकार कियाहै पर आजकाल नहीं। इसे आजकल रखा है।	सं. २ में 'यदपि आजकाल' ही है।
३.	'पठन पाठन' में संस्कृत ही बोलने और	पठन पाठन में संस्कृत ही बोलने ***का अभ्यास*** और	मु.प्र.का 'का अभ्यास' स्वीकार किया है	'का अभ्यास' प्रतिलिपिकार के हस्तलेख में है। (आपके अनुसार यह प्रतिलिपिकार का होने से स्वीकार्य नहीं होना चाहिए) सं २ में नहीं है'

यहाँ तो एकाध छोटे उदाहरण दिए हैं, वह भी केवल ग्रन्थ की भूमिका मात्र से। आपकी इस स्वेच्छाचारिता के इतने उदाहरण हैं कि एक अत्यन्त विस्तृत लेख लिखना पड़े। एक उदाहरण- द्वितीय समुल्लास में 'पितृमानाचार्यवान्' में रेखांकित को मूल पाठानुसार शुद्ध कर लिया है, जबकि योगदर्शन १/२६ के पाठ में दोनों स्थानों पर 'एष' नहीं लिया है। आम पाठकों पर यह सब अनुकूल प्रभाव नहीं डालता है,अतः ऐसे अनेक स्थलों का विश्लेषण करने से विरत् रहने का प्रयास हम कर रहे हैं।

मान्यवर! यह सर्वमान्य तथ्य है कि जब कोई लेखक पुस्तकादि लिखता है तो प्रथम लेख से मुद्रण तक की यात्रा में अनेकों बार उसमें संशोधन करता है इसलिए वह प्रथम लेख ही प्रामाणिक है,यह कहना हास्यास्पद है। आप निरन्तर 'दर्शन' के एक सूत्र को उद्धृत कर भारी भरकम अंदाज में पाठकों के ऊपर यह थोपने का प्रयास कर हैं कि सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम हस्तलेख जिसे मूल हस्तलेख भी कहा जाता है वही प्रामाणिक है। यहाँ निवेदन है कि **आपने फिर इस 'मूल कारण' को स्थान स्थान पर त्याग करते हुए अन्य पाठों को क्यों स्वीकार किया ?** ३८ वें संस्करण तक तो आपने संस्करण २ की प्रामाणिकता की चर्चा ही नहीं की थी । जब 'कब तक मौन रहेंगे' में हमने महर्षि द्वारा प्रूफ संशोधनों की बात कही तो ३६ वें संस्करण में भी आपने संस्करण २ की प्रामाणिकता की चर्चा न करते हुए अन्य प्रकार से प्रूफ संशोधनों की चर्चा करते हुए संस्करण २ की प्रामाणिकता को स्वीकार किया ही है। वस्तुतः **आप सत्य को समझते हुए भी उसको सीधा सीधा स्वीकार न कर बचने के लिए नाना प्रकार के उपाय खोजते रहे हैं** और इस क्रम में स्वेच्छाचारिता बरतते हुए पाठकों को भ्रमित करते रहे हैं और उस मानसिकता से अभी भी मुक्त नहीं हैं।

यहाँ एक बात यह भी विचारणीय है कि मूल हस्तलेख क्या है? वस्तुतः जो ऋषि बोलते थे उसे पंडित लोग लिखते जाते थे इसमें **'इन्द्रिय दोष'** के कारण अथवा **'अपेक्षाकृत स्वल्प बुद्धि होने'** के कारण गलतियाँ रहने की संभावना हैं और ऐसा हुआ भी है। यहाँ कहा जा सकता है कि वस्तुतः मूल तो महर्षि जी के मस्तिष्क में उपस्थित विचार और तदनुरूप बोले हुए शब्द ही थे, न कि पण्डितों द्वारा लिखा हस्तलेख। इसलिए बार बार आप दर्शनसूत्र का उदाहरण देकर आमजन को भ्रमित न करें तो संभवतः अच्छा ही होगा। **इस चक्रव्यूह में फंसकर आप अभी तक नहीं निकल पाये,यही इसका दुष्परिणाम है।**

श्री दैवकरणि जी ने एक बात बार-बार उल्लेखित की है कि 'मानक संस्करण विद्वत् समिति' ने हस्तलेखों का उपयोग क्यों किया? तो विनम्र निवेदन यही है कि प्रामाणिक संस्करण २ में, मुद्रण भूल अथवा रही हुई कुछ चूकों को सुधारने के क्रम में हस्तलेखों का उपयोग करना एक पृथक् बात है जबकि मूल को ही प्रामाणिक मानते हुए तदनुरूप सत्यार्थ प्रकाश को छाप देना बिल्कुल अलग बात है। इनमें महान् अंतर है, यह आप भी जानते हैं । आपके ऐसा करने से अनेक व्यापक परिवर्तन अकारण हो गए हैं।

अनगिनत स्थानों पर संस्करण २ के पाठ पूर्णतः उचित होते हुए भी आपने अपनी हठवादिता के चलते हुए जो परिवर्तन किए उनमें भाव तो वही था जो संस्करण २ में था, परन्तु व्यापक पाठभेद होने से जो गंभीर परिणाम हुए और होंगे उसका दायित्व किस पर है ? एक सौ वर्ष से चले आ रहे सत्यार्थ प्रकाश से अत्यन्त पाठभेद लिए हुए जो सत्यार्थ प्रकाश आपने तैयार किये उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश की प्रामाणिकता पर प्रश्नचिह्न लगा दिया। चौबीस भाषाओं में हुए इसके अनुवाद आपके सत्यार्थ प्रकाश के चलते हुए स्वतः ही अप्रामाणिक हो गए, इसका दोषी कौन है? उदाहरण- स्वर्गीय पंडित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय द्वारा भाषान्तरित अंग्रेजी सत्यार्थ प्रकाश (Light of Truth) में १४ वें समुल्लास में आयत संख्या, संस्करण २ के समान १५६ ही हैं। आपने उन्हें १७०,१७२,१७१ किया है। अगर आपका सत्यार्थ प्रकाश प्रामाणिक है तो Light of Truth अमान्य स्वतः हो गया। स्वयं सभा द्वारा प्रकाशित ३६ संस्करण भी अप्रमाणिक हो गये। यहाँ तक कि ३८ वाँ छपने के पश्चात् ३७ वाँ, तथा ३६ वाँ छपने के पश्चात् ३८ वाँ भी अप्रमाणिक हो गया। **जिन पाठभेदों की आवश्यकता ही नहीं थी उनको करने का क्या औचित्य था?**

ऐसे सैंकड़ों स्थलों में से केवल एकाध उदाहरण पाठकों की जानकारी हेतु हम देंगे-

पंचम समुल्लास के अंत में लिखा है कि 'जो स्वयं धर्म में चलकर सब संसार को चलाते हैं, जो में आप और सब संसार को इस लोक अर्थात् वर्तमान जन्म में, परलोक अर्थात् दूसरे जन्म में स्वर्ग अर्थात् सुख का भोग करते कराते हैं वे ही धर्मात्मा जन संन्यासी और महात्मा हैं।

संस्करण २ में उपलब्ध उक्त पेराग्राफ को परवर्तित कर आपने (चाहे रफ हस्तलेख के आधार पर ही सही) छापा है ।

'संन्यासी आप धर्म में चलें और सब संसार को चलाते रहें, जिससे आप और सब संसार इस लोक अर्थात् इस जन्म,परलोक अर्थात् परजन्म में स्वर्ग अर्थात् सुख का भोग किया करें। (संस्करण ३६, पृष्ठ १५५,पंक्ति २१-२३)

[संस्करण २ के इस वाक्य में केवल 'में' अनुपयुक्त है जिसे 'मानक संस्करण' में हटा दिया है।(तालिका में आने से रह गया है)। इसके अतिरिक्त,पूर्व प्रसंग को साथ पढ़ने पर सिद्ध है कि संस्करण २ का वाक्य विन्यास ही यहाँ उपयुक्त है, जिसे आपने व्यर्थ में बदला है] और जब आपने एक बार यह स्वीकार कर लिया कि प्रूफ संशोधन आपको स्वीकार्य हैं तो किस आधार पर आप यह इंकार करेंगे कि संस्करण २ का पाठ ऋषि का संशोधन हो सकता है ?

एकाध और उदाहरणः-

संस्करण २ का पाठ

..............पश्चात् थाली अथवा भूमि में पत्ता रखके पूर्व दिशादि क्रमानुसार यथाक्रम इन मंत्रों से भाग रखे।

यहाँ आपने (संस्करण ३६, पृष्ठ ११३, पंक्ति २१-२२) पूरा का पूरा वाक्य विन्यास ही भिन्न लिया है। (संस्करण २ का पाठ कहीं भी असंगत व अस्पष्ट नहीं है फिर भी) विशेष बात यह है कि भाग रखने हेतु संस्करण २ में जहां 'थाली अथवा भूमि में पत्ता रखके' है वहाँ आपने 'पत्ता' हटाकर अतिथियों को भूमि में रखा भोजन खाने को विवश कर दिया है।

पृष्ठ १०५, पंक्ति २३ पर जहाँ वर्तमान प्रसव के पश्चात् दूसरी बार ऋतुदान की चर्चा है वहाँ यह पाठ 'पश्चात् जब दूसरे महीने में रजस्वला हो तब............।' मूल हस्तलेख का स्वीकृत कर संस्करण २ के विज्ञान सम्मत पाठ 'जहाँ उक्त में से 'दूसरे महीने में' को हटा दिया है,(क्योंकि आवश्यक नहीं है कि प्रसव पश्चात् दूसरे महीने स्त्री रजस्वला हो ही,अतः संस्करण २ का पाठ उचित है) क्या हम आशा करें कि उपरोक्त सभी का समाधान आप द्वारा किया जावेगा?

ऐसे पाठभेदों से सभा के तीनों संस्करण ३७,३८ व ३६ भरे पड़े है जिनको दिखाने के लिए तो पृथक् से एक पुस्तक लिखनी पड़ेगी।

श्री दैवकरणि जी ने अपने लेख में पच्चीस प्रतिशत स्थान का उपयोग केवल यह दिखाने में लगाया है कि 'मानक संस्करण विद्वत् समिति' जब यह मानती है कि ऋषि ने पैनी दृष्टि से प्रूफ का संशोधन किया तो फिर संस्करण २ में गलतियां स्वीकार कर समिति ऋषि की योग्यता पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर रही है। इसका शुद्ध आशय केवल यह है कि पाठकगण इस बात को मानकर के कि मानक संस्करण के प्रणेता ऋषि की गलतियाँ निकाल रहे हैं, इन विद्वानों से और इस संस्करण से विमुख हो जायें। इसी आशय से सम्पादकीय और प्रकाशकीय के कुछ उद्धरण इस लेख में श्री दैवकरणि जी ने प्रस्तुत किए हैं। इसी क्रम में प्रकाशकीय से निम्न पेरा उद्धृत किया है। 'महर्षिवर द्वारा की गई प्रूफ रीडिंग व संशोधन के प्रति उनकी सचेष्टता प्रणम्य ही कही जायेगी। उक्त अशुद्धियों को दूर करने के बहाने व्यापक पाठ संशोधन प्रशस्त नहीं।' ऐसा उद्धृत कर पाठकों को यह बताना चाहा है कि एक तरफ तो यह बात लिखी गई है और दूसरी तरफ संस्करण २ में गलतियां स्वीकार की गई हैं। इन्होंने जानबूझकर प्रकाशकीय में ही छपे हुए इस कथन के आगे पीछे के वे स्थल जिसमें कि हमने इन अशुद्धियों के कारण के बारे में अपना निवेदन किया है, वह नहीं दिया है। इसे ही तो छल कपट कहते हैं। पाठक निश्चय कर सकें इस कारण हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं।

'..........कारण कि १६ वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जबकि मुद्रण की प्रारम्भिक तकनीक (जिसमें कम्पोजीटर विभिन्न खानों से लैड के बने अक्षरों को एक फ्रेम पर जमाता जाता था तथा गीले कागज पर जो अस्पष्ट सा प्रूफ उभर कर आता था उसे देखना भी दुष्कर कार्य होता था) के मुकाबले आज कम्प्यूटर क्रान्ति के जमाने में

अनगिनत सुविधाएँ प्राप्त हैं। आन लाइन शब्द कोष, एक-एक अक्षर को स्क्रीन पर बीसियों गुना बड़ा कर, वहीं शुद्ध कर देने, और भी नाना प्रकार के उपयोगी साधनों से युक्त समय में, शुद्ध मुद्रण कार्य अपेक्षाकृत काफी आसान है,फिर भी कोई अभ्यस्त प्रूफ रीडर भी यह दावा नहीं कर सकता कि मुद्रित ग्रन्थ में एक भी अशुद्धि नहीं है। ऐसे में महर्षिवर द्वारा की गई प्रूफ रीडिंग व संशोधनों के प्रति उनकी सचेष्टता प्रणम्य ही कही जावेगी। जो भी न्यूनताएँ दृष्टिगोचर होती हैं, मुद्रण प्रक्रिया के साधारण स्वाभाविक स्खलन हैं, जो आज अगर कम होते हैं,तो मुद्रण तकनीक का प्रारम्भिक युग होने के कारण,तब कुछ अधिक थे। यह भी नोट करें कि ऐसी त्रुटियाँ अंगुलियों पर गिने जाने तक ही सीमित हैं,कि जिनके होने न होने से वाक्य के भाव या अर्थ में अन्तर आता हो। अतएव मूल सत्यार्थ प्रकाश तत्कालीन मुद्रण तकनीक को देखते हुए उत्कृष्ट उपलब्धि है, इसमें कोई संदेह नहीं। उक्त अशुद्धियों को दूर करने के बहाने व्यापक पाठ संशोधन प्रशस्त नहीं।'

हमारा निश्चित मत है कि ये ही वे कारण हैं जिनके कारण कतिपय अशुद्धियाँ संस्करण २ में पाई जाती हैं। केवल और केवल उन्हीं को और वह भी आधार सहित शुद्ध करने के पूरे उपक्रम को, आमजनों की दृष्टि में हेय बताने का जो प्रयास उक्त लेख के लेखक ने किया है, उसे निष्पक्ष चिन्तन कदापि नहीं कहा जा सकता है। (मानक संस्करण में कुछ स्थल ऐसे रह गये हैं जो तालिका में नहीं आ पाये अथवा उन पर चिह्न लगने से रह गया। विद्वत् समिति स्वयं ऐसे स्थलों को ढूँढ़ रही है। विद्वद्‌जन व पाठक भी इसमें सहयोगी बन सकते हैं)

अत्यन्त साधारण प्रकृति की अशुद्धियों के यहां २-४ उदाहरण हम पाठकों की सुविधा के लिए दे रहे हैं, जहाँ 'मानक संस्करण विद्वत् समिति' ने संस्करण २ के पाठों में संशोधन किए हैं। ये अत्यन्त मामूली हैं,इन्हें गिनकर संस्करण २ में २००० से ज्यादा अशुद्धियाँ बताने वाले सत्यार्थ प्रकाश के साथ तो अन्याय कर ही रहे हैं, पाठकों को भी सत्य से अपरिचित रख अपने दायित्व का निर्वहन नहीं कर रहे ।

पाठ संस्करण २	पाठ मानक संस्करण
१. सबसे स्नेह करके	सबसे स्नेह करे
२. धर्म से	धर्म में
३. जानने और उपदेष्टा	जानने हारा और उपदेष्टा
४. जो जानने वाला	जो सबका जानने वाला
५. सत्योपदेशक	जो सत्योपदेशक
६. माता को दूसरे स्थान जहाँ	माता को दूसरे स्थान कि जहाँ
७. क्षत्रिया सब विद्या	क्षत्रिया को सब विद्या
८. गोदान से सत्कार	गोदान से सत्कार करे

इत्यादि

इनमें से भी अधिकांश हस्तलेखों के आधार पर हैं।

लगभग सभी प्रकाशकों ने यह कार्य किया है,ज्यादा विस्तीर्ण किया है पर गुपचुप । हमारी भूल क्या यह है कि हमने जो किया है सब कुछ बता दिया है ?

अब इससे पूर्व कि श्री विरजानन्द जी के संदर्भित लेख में उठाये बिन्दुओं का स्पष्टीकरण दिया जाए, जो सर्वमान्य कसौटियाँ सत्यार्थ प्रकाश की प्रामाणिकता के संबंध में गत १२५ वर्षों में रही हैं और जिन्हें विद्वत् समिति ने स्वीकार किया है वह निम्न प्रकार है:-

१. १८८४ में छपा द्वितीय संस्करण ही प्रामाणिक है। (५-७ को छोड़ प्रायः सभी विद्वान् यही मानते हैं)
२. इसमें पाई जाने वाली मुद्रण अशुद्धि के संदर्भ में केवल और केवल उन्हीं स्थलों के, कि जहाँ सुविज्ञ पाठक पढ़ते पढ़ते अटक जाता है कि यहाँ कुछ भूल रह गई है, समाधान हेतु निम्न तीन साधनों की सहायता ली जावेगी।
१. हस्तलेख।
२. ऋषि दयानन्द के अन्य ग्रन्थ।
३. इसके पश्चात् भी उक्त दोनों साधनों से कोई सहायता न मिले और पाठ परिवर्तन विद्वानों की दृष्टि में अत्यन्त आवश्यक हो तो विद्वत् समिति द्वारा ऐसा परिवर्तन स्वीकार किया जाए, परन्तु ऐसे परिवर्तनों को पृथक् से संस्करण २ के पाठ को साथ में देते हुए, दर्शा दिया जाए, ताकि पाठक के समक्ष सदैव -
१. संस्करण २ का पाठ और 'मानक संस्करण विद्वत् समिति' का पाठ उपलब्ध रहे।
२. उसे यह स्वतंत्रता है कि वह चाहे तो विद्वत् समिति का पाठ स्वीकार न करे।
यहाँ ध्यान दिलाना उचित होगा कि
१. न्यास ने इस हेतु आर्य जगत् के विद्वानों को खुला निमंत्रण दिया था। जो भी आए खुलकर उनका स्वागत किया।
२. विद्वत् समिति का गठन सभा में उपस्थित विद्वानों ने किया, न कि न्यास ने।
३. कार्य के लिए कसौटियों का निर्धारण उपस्थित विद्वत् सभा ने किया, न कि न्यास ने।

हम यहाँ बड़े विनम्र भाव से लिखना चाहेंगे कि समिति ने अपना कार्य निष्पक्ष भाव से बिना किसी पूर्वाग्रह के किया है। और समिति का अभी भी यह मानस है कि उपरोक्त कसौटियों के विपरीत मानक संस्करण में यदि कुछ भी है तो विद्वान् अथवा पाठक हमें बताने का कष्ट करें ताकि उस पर विचार विमर्श कर यथोचित निर्णय लिया जाए। आपके लेख में कुछेक ऐसे छूट गये चिह्नों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है, जिन्हें हम आभार सहित स्वीकार करते हैं।

मानक संस्करण में सारे पाठान्तर एक जगह उपस्थित कर दिए हैं इस कारण से सभी दृश्य भी हैं और उन पर वे विचार भी कर सकते हैं। परन्तु यहाँ अपने हृदय को टटोल कर श्री दैवकरणि जी यह देखें कि उनके तीनों संस्करणों में जो गोलमाल है उसकी जानकारी क्या उन्होंने पाठकों को कहीं दी है और क्या पाठक उनको आसानी से चिह्नित कर सकता है? अगर आपका हृदय शुद्ध है, पूर्वाग्रह रहित है तो आपको मानक संस्करण का क्रम ही अपनाना चाहिए।

एक स्थल पर आदरणीय दैवकरणि जी लिखते हैं कि मानक संस्करण में जो श्लोक दिए गए हैं वे उनके सम्पादित संस्करण से लिए हुए हैं। हमारा कहना है कि अव्वल तो ये 'गोविन्दराम हासानन्द' द्वारा प्रकाशित पंडित भगवद्दत्त जी के संस्करण से लिए हुए हैं,परन्तु **विद्वत् समिति तो यह मानती है कि सत्य कहीं से भी हो, अच्छी बात कहीं भी हो, वहाँ से स्वीकार कर लेनी चाहिए।** अगर आपके संस्करण में भी कोई ऐसी बात है जो उचित है तो उसे स्वीकार करने में आप जैसी हठवादिता से रहित इस विद्वत् समिति के सदस्यों को क्या आपत्ति हो सकती है ?

श्री दैवकरणि जी के लेख में (परोपकारी पृष्ठ ६५०) संकेतित वे स्थल जहां उनके अनुसार समिति ने स्वैच्छिक परिवर्तन किए हैं।

१. पृष्ठ ७२ पंक्ति १३ – मानक संस्करण 'तुम्हारा क्या मत है', संस्करण २- 'क्या तुम्हारा मत है।' वस्तुतः 'तुम्हारा मत क्या है' यह लेकर * लगाना था, रह गया ।
   अन्यथा भी यह साधारण सी भूल सम्पादकीय पृष्ठ 'छ' के अनुसार सामान्य मुद्रण भूल के अंतर्गत है।
२. पृष्ठ ११५ पंक्ति १४ – मृत स्त्रीक पुरुष – पाठान्तर तालिका में है। @ चिह्न लगाना रह गया है।
३. पृष्ठ ११८ पंक्ति १४-मृत स्त्रीक पुरुष – पाठान्तर तालिका में है। @ चिह्न लगाना रह गया है।
४. पृष्ठ १३३ पंक्ति २- चिह्न छूट गया है।
५. पृष्ठ १७६ पंक्ति १०-११ – यहाँ श्लोक ४ है। भाषार्थ नहीं। तालिका में @ लगाकर स्पष्ट किया है। पाठ में @ चिह्न छपने से रह गया है। यह तो धन्यवाद है कि आपने परिश्रम से,रह गई मामूली चूकों के बारे में भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है, परन्तु यह तो आपका उद्देश्य नहीं है। इतनी मामूली बातों को बतंगड़ बनाने वाले आप श्री यह बताने का कष्ट करें कि, आपने मनु(एतच्चतु..) श्लोक जो न मूल प्रति, न प्रेस प्रति, और न संस्करण २ में है किस आधार पर लिया ? आपने यहाँ [ ] भी नहीं लगाया है।

६. पृष्ठ १७८ पंक्ति १४-१५-यहाँ भाषार्थ है, श्लोक नहीं । इसे सम्पादकीय पृष्ठ 'ज' पं. २४ में स्पष्ट लिख दिया गया है। * यह चिह्न आने से रह गया है।
७. पृष्ठ २०७ पंक्ति २ - चिह्न छूट गया
८. पृष्ठ २३७ पंक्ति १६-२०-चिह्न छूट गया
६. पृष्ठ २४० पंक्ति १७- चिह्न छूट गया
१०. पृष्ठ ३१८ पंक्ति २७- यहाँ कोई अन्तर संस्करण २ के पाठ से नहीं है।

मानक संस्करण में पाठान्तरों को पारदर्शिता पूर्वक दिखाने हेतु सम्पूर्ण तालिका देकर अभूतपूर्व कार्य किया गया है। उसमें कुछ स्खलन हो गये हैं तो वे साशय नहीं हो सकते, यह सुस्पष्ट है। केवल उपरोक्त के आधार छिपाने का क्या आशय होगा ? अतः यह विपरीत कथन विडम्बना ही है। ऐसा ही द्वेष युक्त कथन यह लिखने में है कि 'मानक संस्करण में प्रत्येक पृष्ठ उसी शब्द से आरम्भ व अंत होगा जैसा सं. २ में है' १८ पृष्ठों पर प्रतिज्ञा पालन नहीं हुआ। पाठक विचार करें कि जब ५८० पृष्ठों के संदर्भ में यह प्रतिज्ञा पालन हुई है तो १८ पृष्ठ क्यों छोड़े जावेंगे । वैसे ऐसे पृष्ठों की संख्या १८ नहीं १२ है, जिन्हें अंतिम चरण में पृष्ठ सौन्दर्य के नाते Page setter ने शायद कर दिया है। क्योंकि एकाध शब्द ही इधर उधर हुए हैं। इन्हें अवश्य ठीक कर लेंगे।

अन्य मुद्दे

लेख- (पृष्ठ ६५२)(८)- ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में इसी सूत्र का ऋषिकृत अर्थ देखें। यहाँ स्त्र्यादि है ही नहीं, 'शरीर' ही है। अतः कलाबाजी व खींचतान की आश्यकता नहीं। परन्तु 'हम जो करें वह अन्वेषण, बाकी करें तो व्यर्थ' की मानसिकता वाले इसे कब स्वीकार करेंगे?

(वाङ्.मनसी) वर्तमान में मूल ग्रन्थ में उपलब्ध पाठ है। जिसे सम्पादकीय में लिखे अनुसार स्वीकार किया है।

गर्भवती स्त्री समागम निषेध क्रम में जो पाठ मानक संस्करण में है उसे पूर्व प्रसंग के साथ पढ़ें, औचित्य मिल जावेगा।

प्रिय पाठकगण! हम इस विषय पर पत्रिका के माध्यम से जन सामान्य में ये चर्चाएँ नहीं करना चाहते थे, न चाहते हैं। पर जब अत्यन्त श्रेष्ठ कार्य को द्वेषवश सत्यार्थ प्रकाश प्रेमियों में हेय बनाने के उद्देश्य से पत्रिका का दुरुपयोग किया जा रहा है तो सत्य को सामने लाना हमारी मजबूरी है। अभी भी हमने दैवकरणि जी के तीनों संस्करणों के संदर्भ में अनेक पाठों के विश्लेषण से स्वयं को विरत् रखा है। आगे भी अत्यन्त विवश न हुए तो उन पाठों को विश्लेषित करने में विरत् ही रहेंगे। अनेकानेक स्थल इन संस्करणों में ऐसे हैं जो इनकी वास्तविकता को प्रकट करेंगे।

पुनः सभी के समक्ष विश्वासपूर्वक कहना चाहेंगे कि समिति ने बिना किसी पूर्वाग्रह के यह कार्य निष्पक्ष रूप से किया है। कसौटियाँ अवश्य स्थिर हैं और रहेंगी।

उनके विरुद्ध कुछ भी हो,जो भी ध्यानाकर्षण करेंगे उनके धन्यवादी होंगे। विचारोपरान्त सही होने पर समिति उसे स्वीकार करने में संकोच नहीं करेगी ऐसा हमारा विश्वास है।

पुनश्चः :- अभी परोपकारी पाक्षिक अंक २२, नवम्बर २०१० प्राप्त हुआ। इसके पृष्ठ संख्या ७०१ से ७०४ तक डॉ.सुरेन्द्रकुमार जी का लेख 'सत्यार्थ प्रकाश के उदयपुर संस्करण का सच'-१ छपा है,पढ़ा।

सर्वप्रथम तो जो सच नहीं है, जिस पर हमें विशेष आपत्ति है, वह बता दें। डॉ.साहब ने लिखा है कि 'समिति को केवल द्वितीय संस्करण को आधार मानकर ही कार्य करने का आदेश न्यास के अधिकारियों ने दिया' सर्वथा असत्य है। डॉ.रघुवीर जी के सम्पादकीय से ऐसा अर्थ निकालना शरारतपूर्ण इसलिए है कि डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी, न्यास द्वारा आहूत संदर्भित विद्वत् समाज में स्वयमेव उपस्थित थे अतः भली प्रकार जानते हैं कि कसौटियों का निर्धारण विद्वत् समाज ने किया था, न कि न्यास के अधिकारियों ने। विद्वत् समिति का गठन भी वहाँ उपस्थित विद्वानों ने किया था,न्यास ने नहीं। डॉ.साहब को संभवतः स्मरण होगा कि सम्पूर्ण कार्यवाही की ऑडियो रिकार्डिंग की गई थी । डॉ.साहब से भी विद्वत् समिति में सम्मिलित होने का आग्रह किया गया था। मिलजुल कर सत्यसंधान करने का मानस होता तो डॉ.साहब को यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेना चाहिए था। यूं आम तौर पर डॉ. साहब की विद्वता,सौम्यता,मिलनसारिता व निष्पक्षता भी सर्वमान्य है, परन्तु सत्यार्थ प्रकाश प्रकरण में न वे २००५ में पक्षपातरहित थे, न आज। वे तब भी परोपकारिणी सभा के वकील बनकर आए थे तथा पूरे समय ३७ वें संस्करण का बचाव करने में येन केन प्रकारेण लगे रहे। ३७ वें व ३८ वें संस्करणों में उपस्थित अनेकानेक पाठभेदों के रक्षण में जो खोखले तर्क डॉ. साहब ने दिए थे,वे शायद आज भी उन्हें स्मरण होंगे।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी द्वारा इस लेख (संभवतः सीरिज) को लिखने का एक उद्देश्य यह बताया गया है कि दश विद्वानों द्वारा सम्पादित होने के कारण उत्पन्न घटाटोप से कहीं पाठक इस संस्करण को अत्यधिक महत्व न दे दें। परन्तुं निष्पक्षता के साथ सत्य को प्रस्तुत कर पाठकों की रक्षा हेतु यही व्यवहार डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी ने तब नहीं किया, जब ३७ वें संस्करण में ऋषि के एक एक शब्दों को संकलित करने का दावा किया गया? और प्रस्तुतीकरण इससे उलट था। तब तो उलटे वे उसका अनुचित पक्षपोषण करते रहे। क्या वे सचमुच ३७ वें संस्करण को शुद्धतम मानते हुए सम्पादक की घोषणा से सहमत हैं? अगर नही तो उस सच को भी कभी तो पाठकों के समक्ष लाते ।

अपने लेख में जो प्रश्न डॉ. साहब ने खड़े किए हैं, उन पर चिन्तन तो विद्वत् समिति के सदस्य अवश्य करेंगे, पर यहाँ इतना लिख दें कि पृष्ठ ७०४ पर, मानक संस्करण के पृष्ठ १७६ पर (त्रयस्तिं........),पृष्ठ ३१३ पर (आचार्य उपनयमानो), (अतिथि गृहानुपगच्छेत्) वेदमन्त्रांश दिए है उनके असंशोधित होने पर

आपको एतराज है, तो आपका ध्यान आकर्षित करा दूँ कि जिनके संस्करणों के पक्षधर हो, आप उदयपुर पधारे थे,उनके ३७,३८ व ३६ वें संस्करणों में यही पाठ हैं । आपने यहीं, पाठ पते में जो 'तुलना' शब्द पर ऐतराज किया है, तो उस ३६ वें संस्करण में, जिसके प्रकाशकीय में लिखा है.....'साथ ही आर्य जगत् के प्रसिद्ध शोध विद्वान् डॉ. सुरेन्द्रकुमार जी के परामर्श एवं सुझाव इस कार्य में पर्याप्त सहायक रहे हैं, उसमें भी अतिथि गृहानुप.... के आगे पाठ पते में 'तुलना' शब्द दिया है। (पृष्ठ ३७६) इसी प्रकार 'त्र्य० ....' के प्रमाण पते में भी 'तु०' -उपस्थित है(पृष्ठ २०३)। आपके परामर्श के विपरीत यह कैसे हुआ? यहाँ यह भी ध्यान रहे कि रफ प्रति व मुद्रण प्रति में भी इन वेद मन्त्रांशों का पाठ यही है। संस्करण २ में भी । आश्चर्य है तब आप क्यों नहीं चौंके ? क्या आपका चौंकना न चौंकना तथ्यों को नहीं, सामने वाले को देख कर होता है? आर्यजनों को आप सच बताने निकले तो सारा ही सच बताते। यह भी कि आपके परामर्श से तैयार ३६ वें संस्करण पृष्ठ ३ (प्रथम समुल्लास) यजुर्वेद १३।१८ के मंत्र 'भूरसि...........' में 'पुरुषंजगत्' पाठ जोड़ा गया है। जबकि संहिता में यह पाठ है ही नहीं, और ३७ वें व ३८ वें में भी नहीं था।

मान्यवर जी ! गलतियों से युक्त (आपकी दृष्टि में) न्यास द्वारा प्रकाशित मानक संस्करण से पाठकों को बचाने हेतु आपने महान् परिश्रम कर यह लेख लिखा है व आगे भी लिखने वाले हैं तो उन्हीं गलतियों से युक्त व उनसे भी कई कदम आगे के ३७,३८ व ३६ वें संस्करण से पाठकों को बचाने का भाव आपके मन में क्यों नहीं आया ? इस हेतु न तो आपने कोई प्रयास किया, न कर रहे हैं,ऐसा क्यों? आप तो शब्दों के चितेरे हैं, ऐसे व्यक्तित्व को क्या नाम देंगे ? मान्यवर ! न्यास पर विद्वानों की लामबन्दी करने का आपका निर्वचन पूर्णतः असत्य है व निराधार है, २००५ के सत्यार्थ प्रकाश महोत्सव में 'सत्यार्थ प्रकाश संगोष्ठी' में आमंत्रण हेतु आमंत्रण पत्रिका में जो कुछ छपा था वह इस प्रकार था :-

'सत्यार्थ प्रकाश महोत्सव के अवसर पर महोत्सव के तुरन्त पश्चात् १ एवं २ मार्च को इस गंभीर विषय पर विद्वानों की संगोष्ठी रखी है। जिसमें इस महान् 'यज्ञ' की रूपरेखा व कार्यप्रणाली पर विचार विमर्श किया जावेगा। हमारे इस आलेख को पढ़ जो विद्वान् अपने कर्तव्य के निर्वहन स्वरूप इसमें निज योगदान देना चाहें उनका स्वागत है।'

पाठकगण देखें कि लामबन्दी की भावना उन्हें कहाँ दिख रही है ? सबको खुला निमंत्रण था। जिनको पाठभेद समस्या से पीड़ा थी, इसके निराकरण में अपना योगदान देना चाहते थे, वे आये । जो विद्वान् नहीं आये इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उन्हें हमने बुलाया नहीं । यहाँ यह भी उल्लेख कर दूँ कि जहाँ तक मुझे स्मरण है, विद्वत् समिति के गठन के पश्चात् विद्वत् समिति के संयोजक डॉ.रघुवीर जी वेदालंकार

ने आर्य पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से अन्य विद्वानों को भी अपना योगदान देने हेतु निमंत्रित किया था।

यहाँ माननीय डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी के चिन्तन का विषय है वे अन्य संस्करणों का विस्तृत सच प्रकट न कर क्या कर रहे हैं ? लामबन्दी कहाँ हो रही है? चिन्तन करें। हमारे विचार में ऐसा व्यवहार आप सदृश विद्वानों को शोभा नहीं देता। निष्पक्षता, विद्वता में चार चाँद लगा देती है।

यह एक स्थापित तथ्य है कि सभी संशोधन पंडित भीमसेन जी व पंडित ज्वालादत्त जी ने नहीं किए थे। हस्तलेखों में संशोधन ऋषि ने स्वहस्त से किए थे। यहां यह जानना आवश्यक है कि मूल हस्तलेख में तथा प्रेस हस्तलेख में जो संशोधन हैं वे ऋषि के अपने हाथ से किए बताए जाते हैं, क्या आपकी धारणा इससे विपरीत है? आपके अनुसार जब गिनती एक से शुरू करनी है तो यह सुनिश्चित कर लेना होगा कि हस्तलेखों में जहाँ जहाँ संशोधन है उनमें से कौन कौन से महर्षि के हैं व कौन से भीमसेन जी व पंडित ज्वालादत्त जी के, ताकि ऋषि के स्वीकार कर लिए जाय तथा अन्य पंडितों के नकार दिये जायें।

यह भी कि रफ हस्तलेखक ने, ऋषि ने जो बोला वह सब यथावत् लिख दिया था तो रफ हस्तलेख की अशुद्धियाँ किसके खाते में जायेंगी ?

यह भी कि ३७ वें संस्करण से ३६ वें संस्करण तक के प्रणेताओं ने ऋषि के हस्त से किए संशोधन को क्यों ग्रहण नहीं किया?

मान्यवर हमारा निवेदन है कि मुद्रित सं. २ में आप द्वारा जो २००० अशुद्धियाँ बताई गई हैं (हमारे अनुसार यह अतिश्योक्ति है, फिर भी अगर इतनी अशुद्धियाँ हैं भी तो) उनमें कुछेक को छोड़कर अधिकांश अतीव सामान्य हैं। ऐसा हमें विश्वास इसलिए है कि जो पाठान्तर की तालिका मानक संस्करण में दी है उसमें अधिकांश अशुद्धियाँ ऐसी ही हैं। इसमें सिद्धान्त विरुद्ध संशोधन तथा असंशोधन जो लिपिकारों व संशोधक पंडितों की अयोग्यता/ मक्कारी से हुए उनकी एक तालिका बनाकर प्रकाशित करते या हमें भेजते तो ज्यादा उपकार होता। यहाँ यह भी विचारणीय है कि जो पंडित ऋषि के पास कार्य करते थे वे ऋषि की अपेक्षा से तो निश्चित 'अल्पबुद्धि' थे पर क्या आजकल के विद्वानों के सापेक्ष भी यही स्थित उनकी है, यह विचारणीय है। उन्हें मक्कार, मार्जारलिंगी आदि कहने का अधिकार ऋषि को तो था, पर क्या अन्यों को भी है ?

हाँ परोपकारी पृष्ठ ७०४ पर यह जो पृष्ठ २६३ संबंधी पेरा आपने दिया है (यहाँ संस्करण २ में भी 'नहीं' है) इससे ....'विपरीत अर्थ' यहाँ निकलता है। 'यहाँ' नही के स्थान पर 'ही@' करने हेतु विद्वत् समिति के विचारार्थ अवश्य देंगे। आपने ऐसी अशुद्धियाँ एक दर्जन बतायी हैं,कृपया उन्हें हमें भेज दें बड़ी कृपा होगी।

यहाँ ३६ वें के अनेक पाठों की, जो कि अयुक्त हैं, आपसे निवेदन है रक्षा न करें। पृष्ठ २८ पर प्रसूता के दूध में बल कम बताया गया है। ऋषि ने इसे हटा संस्करण २ में नहीं रखा। यह अवधारणा विज्ञान के विपरीत है। प्रसव पश्चात् जो दूध प्रसूता का होता है वह अमृत है,न कि कमजोर। यही बात विज्ञान सम्मत है। ऋषि ने धायी का समर्थन अन्यान्य आधारों पर किया है।

पाठकगण यह समझ लें कि २००० अशुद्धियों को दूर करने हेतु एक नए संस्करण की भूमिका उपस्थित हो रही है। मानक संस्करण में रही भूलों का (यदि विद्वत् समिति स्वीकार करती है) निश्चितरूपेण परिष्कार किया जावेगा, वह भी साभार। परन्तु केवल कुछ विद्वानों को छोड़ जो अन्य विद्वानों का मत है कि कसौटी रूप में संस्करण २ को स्वीकार करना चाहिए, केवल वही एकरूप सत्यार्थ प्रकाश का मार्ग है। 'मानक संस्करण विद्वत् समिति' ने यही किया है। जो विद्वान् अपना भाग देना चाहते हैं वे द्वितीय संस्करण के सिद्धान्त विरुद्ध संशोधन व असंशोधनों को बताने का कष्ट करें। मानक संस्करण में रह गई चूकों को बतावें। यह सकारात्मक पक्ष होगा। महज चन्द चूकों को ले बावेला मचाना तथा इतने श्रेष्ठ कार्य के बारे में पाठकों को भ्रमित करना तो नकारात्मक प्रवृत्ति का परिचायक है। विद्वज्जन हमारे इस निवेदन को मान लें व मूँछों के अहं को त्याग दें तो मंजिल सहज प्राप्य है।

❑❑❑

सत्यासत्य के स्वयमेव निर्णयार्थ एक बार 'मानक संस्करण' स्वयं पढ़ें

।। इसी

स्थान पेण से जो योगी विद्वानों के देखने के [illegible]
हर जान के योग्य छोटे बड़े पदार्थों में [illegible]
आदि और अनन्त आत्मा और परमेश्वर की
गति [illegible] ॥२०॥ सब मतों से निर्वैर हूं

[illegible]
[illegible] आर्यावर्त [illegible]

यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर
घूमता जाता है और सूर्य के चारों ओर
भूमि घूमा करती है।

[illegible] करते हैं और [illegible]
[illegible]

[illegible] इत्यादि
[illegible] सत्य उपदेश [illegible] आर्यावर्त में [illegible]

[illegible] धर्म के जानने और [illegible]

[illegible] और [illegible] इत्यादि

चलने में

शिक्षा को [illegible] जो [illegible] और [illegible]
उड़ा दी।

मानक संस्करण (उदयपुर) की आड़ में

ऋषि की कालजयी कृति सत्यार्थ प्रकाश पर प्रहार
आर्य विद्वान् अभी भी न चेते, तो पीछे पछताना न पड़े

- अशोक आर्य, उदयपुर

यह लेख सत्यार्थ प्रकाश के मानक संस्करण,जो कि उदयपुर से प्रकाशित हुआ है, के संदर्भ में डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी द्वारा इसके पाठों पर प्रहार करते हुए जो लेखमाला परोपकारी मासिक में प्रकाशित हो रही है,उसके संदर्भ में लिखने के लिए हम समुद्यत हुए हैं। डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी की प्रत्येक आपत्ति का बिन्दुवार प्रत्युत्तर देने का हमारा प्रयास रहेगा। यहाँ सर्वप्रथम, उपरोक्त शीर्षक जिन पाठकों को सतही तौर पर एकबारगी पढ़ने में नागवार गुजरे,उनसे क्षमायाचना करते हुए यह निवेदन करना चाहेंगे कि इस पूरे लेख को एक बार मनोयोग पूर्वक आप पढ़े। प्रमाण सामग्री हम तालिका में यहां प्रस्तुत कर रहे हैं,(सारिणी में कोष्ठक में पृष्ठ सं. है। हस्तलेखों में Right corner पर जो पृष्ठ संख्या है, वह दी गई है।) उस सबको देखने व मनन करने के पश्चात् आप संभवतः हमसे सहमत हो सकेंगे कि इस लेख का शीर्षक उपरोक्त के अलावा और कुछ नहीं हो सकता। सर्वप्रथम हम निवेदन करना चाहेंगे कि -

हमारी मति में 'मानक संस्करण विद्वत् समिति' ने घोषित रूप से संस्करण २ (१८८४) को प्रामाणिक स्वीकार किया है जैसाकि कुछेक को छोड़ आर्य जगत् के सभी विद्वान् मानते हैं। अतः 'मानक संस्करण विद्वत् समिति' का उत्तरदायित्व तब बनता है जब उन्होंने संस्करण २ के किसी पाठ को इस रूप में बदल दिया हो कि उसका स्वरूप सिद्धान्त विरोधी हो गया हो अथवा संस्करण २ के किसी सिद्धान्त विरोधी पाठ को हस्तलेखों आदि में शुद्ध होने पर भी न बदला हो,न स्वीकार किया हो। डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी को ऐसे पाठ उद्धृत करने चाहिये । पर नहीं। उन्होंने तो अब तक सर्वमान्य पाठों को उद्धृत कर ऐसा प्रदर्शित किया है कि पाठक यही समझे कि (१) इन पाठों को इस रूप में सर्वप्रथम 'मानक संस्करण विद्वत् समिति' ने बदला हो (२) ये उतने ही उपहासजनक हैं जैसाकि डॉ. साहब इन्हें बता रहे हैं। जबकि दोनों बातें असत्य हैं। पाठकों के पास प्रायः न तो लेख के कथन की परीक्षा करने हेतु सामग्री उपलब्ध होती है, और न समय। इसी कारण ऐसे लेखक तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर कुछ भी लिख देने में स्वच्छन्दता बरत पाते हैं। इसमें आर्यजनों की आम मानसिकता भी सहायक होती है। प्रायः जब इस प्रकार के विवादास्पद लेख छपते हैं, तो सत्य के प्रति जिज्ञासु होने की बजाय हम खेद प्रकाशित करते रहकर कि-'इन आर्यों को लड़ने से फुरसत नहीं है' अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं। हम विनम्रतापूर्वक कहना चाहेंगे कि वे गलत नहीं हैं, परन्तु उनकी उदासीनता भी तो घातक सिद्ध होती है। यह प्रत्युत्तर हमारी विवशता

है। 'मानक संस्करण' जैसे श्रेष्ठ पारदर्शी कार्य पर जो झूठे अनर्गल आरोप लगाये गये हैं, सच के नाम पर जो झूठ परोसा जा रहा है, इसका प्रतिकार होना चाहिए। हम लिखने तो इस उद्देश्य से बैठे कि आरोपों का प्रत्युत्तर देकर आर्यजनों की द्विविधा का शमन करने का प्रयास करें, पर जब गहराई में गये, तो चौंक गए। मन वितृष्णा से भर गया। कारण कि जिन पाठों को उद्धृत कर डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी ने मानक संस्करण का उपहास किया है,विद्वत् समिति की योग्यता पर प्रहार किये हैं, **वे सभी पाठ ऋषि के हस्तलेखों में व सत्यार्थ प्रकाश के सभी संस्करणों में हूबहू होने से सभी आरोप स्वयं महर्षिवर पर व आर्य जगत् के उन सभी नामचीन विद्वानों पर कि जिनके सम्पादित संस्करणों में ये पाठ हैं, स्वयमेव आ जाता है।** सबसे अधिक क्षोभ की बात यह है। अतः आर्य विद्वानों एवं पाठकों को सावचेत होना चाहिये। क्या विड़म्बना है कि ऐसे लेख जिसमें अन्ततोगत्वा ऋषि के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का खुलकर उपहास किया गया है,उनका प्रकाशन भी ऋषि की उत्तराधिकारिणी सभा के मुखपत्र में हो रहा है,जो कि ऋषि की स्थानापन्न कहलाती है। जहाँ सभाधिकारियों की जिम्मेदारी बनती थी कि ऐसे मुनियों को मुँह तोड़ उत्तर देते, चटकारे ले लेकर ऐसे लेखों को प्रश्रय दे रहे हैं, क्योंकि दुर्भाग्य से द्वेषयुक्त मानसिकता हर सच से ऊपर हो गई है। **वे ये भी भूल गए कि यही पाठ सभा द्वारा प्रकाशित संस्करणों में भी उपस्थित हैं ?***

हम बिना प्रमाण कुछ नहीं लिखना चाहते। अतएव सत्यार्थ प्रकाश के विभिन्न संस्करणों के पाठ उद्धृत कर रहे हैं। शेष आर्यजन स्वयं समझ जायेंगे । हम आशा यह भी कर सकते है कि आर्य संगठनों के पदाधिकारी, आर्य विद्वान्, इसे केवल उदयपुर मानक संस्करण का मसला न समझ, इसकी वास्तविकता को समझ, सत्यार्थ प्रकाश अस्मिता संरक्षण में अपने दायित्व का निर्वहन करेंगे। आखिर तो ये पाठ, जिनकी खिल्ली सुरेन्द्र कुमार जी उड़ा रहे हैं, सवा सौ वर्षों से पक्ष-विपक्ष की कसौटी पर खरे उतरे हैं, तो अब यकायक उदयपुर मानक संस्करण छपने पर ये पाठ उपहास के पात्र कैसे हो गये ? अब नीचे दी गई तालिका पर मनन करें । सब स्पष्ट हो जायेगा।

*अगर आर्य जगत् में जवाबदेही की व्यवस्था होती तो ऐसे लेख कदापि नहीं छपते क्योंकि सच सामने आने पर लेखक व प्रकाशक को क्षमा माँगनी पड़ती। पर आर्य जगत् की वर्तमान स्थिति के चलते परवाह किसे है।

उदाहरण (डा.) सुरेन्द्र कुमार जी द्वारा प्रस्तुत (परोपकारी दिसम्बर प्रथम पृष्ठ ७११-७१५)	पाठ मानक संस्करण	पाठ द्वितीय संस्करण	पाठ रफ हस्तलेख	पाठ प्रेस हस्तलेख	पाठ ३६ वां संस्करण (परोपकारी)	पाठ आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट संस्करण	पाठ पंडित युधिष्ठिर मीमांसक संस्करण	पाठ वेदानन्द जी संस्करण	पाठ भगवददत्त जी संस्करण
१	२	३	४	५	६	७	८	६	१०
ग) इसी ध्यान योग से जो अयोगी। अविद्वान। दुःख से जानने योग्य,छोटे बड़े पदार्थों में परमात्मा की व्याप्ति उसको और अपने आत्मा और अन्तर्यामी परमेश्वर की	इसी ध्यान योग से जो अयोगी अविद्वानों के दुःख से जानने योग्य,छोटे बड़े पदार्थों में परमात्मा की व्याप्ति उसको और अपने आत्मा और अन्तर्यामी परमेश्वर की गति को	इसी ध्यान योग से जो अयोगी अविद्वानों के दुःख से जान: योग्य,छोटे बड़े पदार्थों में परमात्मा की व्याप्ति उसको और अपने आत्मा और अन्तर्यामी परमेश्वर की गति को	इसी ध्यान योग से अयोगी अविद्वानों के दुःख से जानने योग्य, छोटे बड़े पदार्थों में परमात्मा की व्याप्ति और अपने आत्मा और अन्तर्यामी परमेश्वर की गति को देखे।	इसी ध्यान योग से जो अयोगी अविद्वानों के दुःख से जानने योग्य,छोटे बड़े पदार्थों में परमात्मा की व्याप्ति उसको और अपने आत्मा और अन्तर्यामी परमेश्वर की गति को	यही पाठ है । संस्करण २ जैसा पाठ है। (१४८)	यही पाठ है। संस्करण २ जैसा पाठ है। (११०)	यही पाठ है । संस्करण २ जैसा पाठ है। (१८६)	यही पाठ है । संस्करण २ जैसा पाठ है। (११७)	यही पाठ है। संस्करण २ जैसा पाठ है। (१३१)

गति को देखे। (१३१)	देखे। (१३१)	देखे। (१३१)	(१७५)	देखे। (१६०)					

पाठकगण ! इससे अधिक स्पष्ट क्या प्रमाण हो सकता है ? ऋषि द्वारा स्वयं लिखाये व स्वयं संशोधित दोनों हस्तलेखों व संस्करण २ में एक जैसा पाठ है। इसके बाद भी आर्य विद्वानों की सुदीर्घ परम्परा ने इसी पाठ को निभाया है। आश्चर्य यह है कि डॉ. सुरेन्द्रकुमार जी के परामर्श से तैयार ३६ वां संस्करण भी इसी पाठ को हूबहू स्वीकार करता है। परन्तु मानक संस्करण ने जब यह पाठ स्वीकार किया तो सुरेन्द्र जी प्रश्न पूछ रहे हैं। क्या इससे यह स्पष्ट नहीं हो जाता है कि वे पूर्वाग्रह व पक्षपात से युक्त हैं। उनका प्रश्न कि यह कौनसा नया योगदर्शन लिखा गया है वस्तुतः ऋषि से व आर्य विद्वानों से उत्तर की अपेक्षा रखता है न कि केवल 'मानक संस्करण समिति' के विद्वानों से। और यही क्यों जिस सभा के मुखपत्र में यह लेख माला छप रही है उनके पाण्डुलिपि विशेषज्ञ विद्वान् सम्पादक जी से भी उत्तर की अपेक्षा रखता है, क्योंकि उनके संस्करण में भी हूबहू यही पाठ है। केवल एक यही उदाहरण क्या यह सिद्ध नहीं कर देता कि सुरेन्द्र कुमार जी की आपत्ति अथवा प्रहार अन्ततोग[illegible]ा ऋषि-लेख पर ही हैं ?

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
(घ) सर्वव्यापक परमात्मा की सत्ता से जैसा कि अग्नि से लोहा वैसे चेतन हो रहे हैं.........	यही पाठ है। (२३४) संस्करण २ जैसा पाठ है।	सर्वव्यापक परमात्मा की सत्ता से जैसा कि अग्नि से लोहा वैसे चेतन हो रहे हैं........ (२३४)	सर्वव्यापक परमात्मा की सत्ता से जैसा कि अग्नि से लोहा वैसे चेतन हो रहे हैं........ (३२३)	यही पाठ है। (१६६)	यही पाठ है। (२७५) संस्करण २ जैसा पाठ है।	यही पाठ है। (१६४) संस्करण २ जैसा पाठ है।	यही पाठ है। (१६४) संस्करण २ जैसा पाठ है।	यही पाठ है। (२०२) संस्करण २ जैसा पाठ है।	यही पाठ है। (१३१) संस्करण २ जैसा पाठ है।

नोटः- सभी संस्करणों में एक जैसा पाठ है,हस्तलेखों में भी। क्या डॉ.सुरेन्द्रकुमार जी यह नहीं जानते ? स्पष्ट है कि उनका हमला उदयपुर मानक संस्करण पर नहीं वरन् ऋषि की कालजयी कृति पर है। जो पवित्र कार्य आज तक विरोधी भी नहीं कर पाये,वह डॉ. साहब मानक संस्करण की आड़ लेकर कर रहे हैं। ऋषि द्वारा जो बोला गया वहीं हस्तलेखों सहित मानक संस्करण एवं अन्य संस्करणों में है। सवा सौ वर्ष में ऐसे शरारतपूर्ण तरीके से,इसे संदर्भों से हटकर, निकाल

कर, इन जैसा आशय किसी ने नहीं प्रस्तुत किया,जैसा पाठकों में मानक संस्करण के प्रति हेय भावना पैदा करने के उद्देश्य से इन्होंने किया है। डॉ.साहब अपने लेख में मानक संस्करण की खिल्ली उड़ाने में इतने मशगूल हैं कि उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि उनके सभी अरोप ऋषि के प्रति हैं। और पाठकों को मूर्ख बनाने की हद देखिये कि पूर्वपक्षी के कथन को उत्तरपक्षी के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं । पाठक भलीभांति जान लें कि यह वाक्य नवीन वेदान्तियों की स्थापना है,जो कि संबंधित स्थल पर प्रश्न के रूप में उपस्थित है। ऋषि की स्थापना तो उत्तर में है। अब आप ही निश्चय करें कि इस मानसिकता को क्या नाम देंगे? ऐसी धोखाधड़ी से क्या कोई सत्य की स्थापना कर पायेगा?

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
(ड) जैसे सूर्यास्त होने में जार पुरुष परस्त्रीगमन और विद्वान् सत्यभाषणादि श्रेष्ठ कर्म करते हैं।	यही पाठ है संस्करण २ जैसा पाठ है। (४०३)	जैसे सूर्यास्त होने में जार पुरुष परस्त्रीगमन और विद्वान् सत्यभाषणादि श्रेष्ठ कर्म करते हैं। (४०३)	जैसे सूर्य के अस्त होने में जार पुरुष जारकर्म चोर चौरीकर्म और पूर्ण विद्वान् सत्य आचरण करते हैं। (५६६)	जैसे सूर्यास्त होने में जार पुरुष परस्त्रीगमन और विद्वान् सत्यभाषणादि श्रेष्ठ कर्म करते हैं। (२७७)	जैसे सूर्य के अस्त होने में जार पुरुष जारकर्म चोर चौरीकर्म और पूर्ण विद्वान् सत्य आचरण करते हैं। (४६०)	जैसे सूर्य के अस्त होने में जार पुरुष परस्त्रीगमन चोर चौरीकर्म और पूर्ण विद्वान् सत्यभाषणादि श्रेष्ठ कर्म करते हैं। (३३१)	यही पाठ है संस्करण २ जैसा पाठ है। (६२०)	जैसे सूर्यास्त होने में जार पुरुष परस्त्रीगमन चोर चोरी और विद्वान् सत्यभाषणादि श्रेष्ठ कर्म करते हैं।(३७५)	जैसे सूर्यास्त होने में जार पुरुष परस्त्रीगमन चोर चोरी कर्म और विद्वान् सत्यभाषणादि श्रेष्ठ कर्म करते हैं।(४३४)

नोटः- यहाँ पाठक देख सकेंगे कि मूल हस्तलेख और प्रेस हस्तलेख में अन्तर अवश्य है परंतु अभिप्राय में कोई अन्तर नहीं। मूल प्रति में एक उदाहरण अतिरिक्त है और 'पूर्ण विद्वान् सत्य आचरण करते हैं' ऐसा है। हमारी सम्मति में संस्करण २ का पाठ अधिक प्रौढ़ है। यहाँ सत्यभाषणादि श्रेष्ठ कर्म करते है, यह लिखकर ऋषि ने क्षेत्र और भी व्यापक कर दिया है। मुख्य मुद्दा यह नहीं है, वरन् सुरेन्द्र जी का अत्यन्त अशोभनीय व कुतर्कपूर्ण निर्वचन है। 'सत्य भाषण' के स्थान पर सत्य आचरण हो तो भी कुछ अन्तर नहीं पड़ेगा । वे मूल प्रति के पाठ को सही मानते हैं तो उनकी कुतर्क शैली का विस्तरण पाठक मूल प्रति के पाठ के संदर्भ में देखें(जो कि ऋषि प्रोक्त है) क्या फल निकलेगा -' आर्यजन ! सत्य आचरण के लिए भी एक निर्धारित समय होता है। चौंकिये मत,हमारे ऋषि दयानन्द सरस्वती ने इस सिद्धान्त को स्वीकार और प्रस्तुत करके अपनी मोहर लगा दी है कि अब आप सूर्यास्त के बाद सत्य आचरण कीजिये,बस फिर दिनभर आपकी

छूट है। जी हां देखिये ऋषि प्रोक्त मूल पाठ, हो गई न सत्य आचरण की निर्धारित दिनचर्या!! बताइये ईर्ष्या,द्वेष की कोई सीमा है ?

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
(च) 'यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था,अभाव न था।	'यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था,अभाव न था। संस्करण २ जैसा पाठ है। (२१०)	'यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था,अभाव न था। (२१०)	'यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् सदृश और आत्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था, अभाव और जो (२८६)	'यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था,अभाव न था। (संशोधन ऋषि हस्त का, १४८)	'यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था,अभाव न था। संस्करण २ जैसा पाठ है। (२४४)	'यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था,अभाव न था। संस्करण २ जैसा पाठ है। (१७३)	'यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था,अभाव न था। संस्करण २ जैसा पाठ है। (३०८)	'यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था,अभाव न था। संस्करण २ जैसा पाठ है। (१८१)	'यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था, अभाव न था। संस्करण २ जैसा पाठ है। (३०८)

इसे उद्धृत कर सुरेन्द्र कुमार जी ने इसे सिद्धान्त विरोधी वताते हुए मानक संस्करण समिति के अध्यक्ष से पूछा है कि 'यह कौनसा वेदान्त दर्शन लिखा गया है'? हमें विश्वास है कि अध्यक्ष महोदय में इतना पाण्डित्य अवश्य है कि इसका समाधन कर सकें, अथवा ऋषि के लेखन पर प्रहार होते देख किसी ऋषि भक्त विद्वान् को स्वकर्त्तव्य का भान हुआ तो वे ऋषि की अनुपस्थिति में उनकी कालजयी कृति की अस्मिता की सुरक्षार्थ अवश्य आगे आयेंगे । डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी के पहले के जितने भी विद्वान् हैं उन्होंने इस पाठ को यथावत् स्वीकारते हुए इस प्रकार का कोई प्रश्न नहीं उठाया,सवा सौ वर्ष का इतिहास तथा उपरोक्त सारणी इस बात का सबूत है । स्पष्ट है कि उन तथा इन पंडितों का पांडित्य डॉ.साहब के मुकाबले अल्प ही है।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
(३.२ क) यह भूगोल सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है। इसलिए भूमि घूमा करती है।	अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है। इसलिए भूमि घूमा करती है। संस्करण २ का ही पाठ है। (२२६)	अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है। इसलिए भूमि घूमा करती है। (२२६)	अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर आकाश में घूमता जाता है। अर्थात् सूर्य के चारो ओर इस वास्ते भूमि घूमा करती है। नोटः- इस वास्ते ऋषि का संशोधन है। (३१५)	अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है। इस वास्ते भूमि घूमा करती है। नोटः- चूंकि मूल प्रति में ऋषि ने स्वहस्त से इस वास्ते का प्रयोग किया है इसलिए प्रतिलिपिकार ने प्रेस प्रति में इस वास्ते को लिया है। (१६२)	अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है। अर्थात् भूमि घूमा करती है। (२६८)	यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है। इसलिए भूमि घूमा करती है। संस्करण २ का ही पाठ है। (१८६)	अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारो ओर घूमता जाता है। इसलिए भूमि घूमा करती है। संस्करण २ का ही पाठ है। (३३८)	अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है। इसलिए भूमि घूमा करती है। संस्करण २ का ही पाठ है। (१६७)	अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है। इसलिए भूमि घूमा करती है। संस्करण २ का ही पाठ है। (२३४)

यहाँ भी पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा कि जिस 'इसलिये' पर डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी को सख्त एतराज है, ऋषि ने मूल हस्तलेख में स्वहस्त से 'इस वास्ते' लिखा है जिसका अर्थ 'इसलिये' ही है। संस्करण ३६ को छोड़ सभी में 'इसलिये' ही मिलता है। यहाँ यह भी ध्यान रखें कि ३६ वें संस्करण के सम्पादक जी द्वारा सम्पादित ३७वें व ३८वें संस्करण में 'इसलिये' ही स्वीकार किया है। (पृष्ठ २०८ एवं २४१) वैसे भी जिस प्रश्न के उत्तर में यह वर्णन है, वहाँ प्रश्नोत्तर को साथ पढ़ने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस स्थल पर 'इसलिये/ इस वास्ते' जैसे शब्द की ही अपेक्षा है।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
(३.२. ख)परन्तु तुम और तुम्हारी स्त्री,कन्या, तथा पुत्रवधू आदि असमर्पित रह जाने से अशुद्ध रह गये वा नहीं? और तुम असमर्पित वस्तु को अशुद्ध मानते हो। पुनः उनसे उत्पन्न हुए तुम लोग अशुद्ध क्यों नहीं?(३६६)	परन्तु तुम और तुम्हारी स्त्री,कन्या, तथा पुत्रवधू आदि असमर्पित रह जाने से अशुद्ध रह गये वा नहीं? और तुम असमर्पित वस्तु को अशुद्ध मानते हो। पुनः उनसे उत्पन्न हुए तुम लोग अशुद्ध क्यों नहीं? संस्करण २ जैसा ही पाठ है(३६६)	परन्तु तुम और तुम्हारी स्त्री,कन्या, तथा पुत्रवधू आदि असमर्पित रह जाने से अशुद्ध रह गये वा नहीं? और तुम असमर्पित वस्तु को अशुद्ध मानते हो। पुनः उनसे उत्पन्न हुए तुम लोग अशुद्ध क्यों नहीं? (३६६)	हमारे पास मूल हस्तलेख की जो फोटो प्रति है उसमें यह पृष्ठ बिल्कुल अस्पष्ट है। पढ़ने में नहीं आ रहा। (५२६)	परन्तु तुम और तुम्हारी स्त्री,कन्या, तथा पुत्रवधू आदि असमर्पित रह जाने से अशुद्ध रह गये वा नहीं? और तुम असमर्पित वस्तु को अशुद्ध मानते हो। पुनः उनसे उत्पन्न हुए तुम लोग अशुद्ध क्यों नहीं?	परन्तु तुम और तुम्हारी भार्या,कन्या, पुत्रवधू तथा पुत्रादि असमर्पित रहने से अशुद्ध रह गये वा नहीं? जो असमर्पित वस्तु को अशुद्ध मानते हो तो तुम अशुद्ध क्यों नहीं? (४४२)	परन्तु तुम और तुम्हारी स्त्री,कन्या तथा पुत्रवधू आदि असमर्पित रह जाने से अशुद्ध रह गये वा नहीं? और तुम असमर्पित वस्तु को अशुद्ध मानते हो। पुनः उनसे उत्पन्न हुए तुम लोग अशुद्ध क्यों नहीं? संस्करण २ जैसा ही पाठ है। (३००)	परन्तु तुम और तुम्हारी स्त्री,कन्या तथा पुत्रवधू आदि असमर्पित रह जाने से अशुद्ध रह गये वा नहीं? और तुम असमर्पित वस्तु को अशुद्ध मानते हो। पुनः उनसे उत्पन्न हुए तुम लोग अशुद्ध क्यों नहीं?	परन्तु तुम और तुम्हारी स्त्री,कन्या,तथा पुत्रवधू आदि असमर्पित रह जाने से अशुद्ध रह गये वा नहीं? और तुम असमर्पित वस्तु को अशुद्ध मानते हो। पुनः उनसे उत्पन्न हुए तुम लोग अशुद्ध क्यों नहीं? संस्करण २ जैसा ही पाठ है। (३३५)	परन्तु तुम और तुम्हारी स्त्री,कन्या, तथा पुत्रवधू आदि असमर्पित रह जाने से अशुद्ध रह गये वा नहीं? और तुम असमर्पित वस्तु को अशुद्ध मानते हो। पुनः उनसे उत्पन्न हुए तुम लोग अशुद्ध क्यों नहीं? संस्करण २ जैसा ही पाठ है। (३८८)

							संस्करण २ जैसा ही पाठ है।(५५८)		

यहाँ यह स्पष्ट है कि ३९ वें संस्करण को छोड़ स्वामी वेदानन्द जी,पंडित भगवददत्त जी,पंडित युधिष्ठिर मीमांसक आदि विद्वानों ने प्रेस हस्तलेख के पाठ अथवा संस्करण २ के पाठ को स्वीकार किया है। यहाँ मूल हस्तलेख तो हमारे समक्ष अस्पष्ट होने से है नहीं,प्रेस,हस्तलेख व संस्करण २ का पाठ वही है जो प्राय संस्करणों ने अपनाया है। ३९ वें संस्करण के पाठ को ध्यान से पढ़ें। पहले ही 'तुम....अशुद्ध रह गये वा नहीं' है,पुनः 'तो तुम अशुद्ध; क्यों नहीं', सही माना जाय तो पुनरुक्ति दोष आता है। छि! छि! करना व्यर्थ है,यहाँ आशय गुसाई कुलों की महिला वर्ग से है, कि जब वे अशुद्ध हैं तो उनसे उत्पन्न गुंसाई अशुद्ध क्यों नहीं ? पाठकों के मन में मानक संस्करण के प्रति हेय भाव पैदा करने के उद्देश्य से कृपया वाक्यों को तोड़ मरोडकर,प्रहार करने की चेष्टा न करें क्योंकि आपके प्रहार मूर्धन्य विद्वानों से गुजर कर ऋषि तक पहुँच रहे हैं।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
(३.४. क)इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ जहाँ स्तुति,प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक,शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्ता आदि विशेषण	इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ जहाँ स्तुति प्रार्थना, उपासना,सर्वज्ञ, व्यापक,शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्ता आदि विशेषण लिखे हैं.... संस्करण २ जैसा पाठ है। (१३)	इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ जहाँ स्तुति प्रार्थना, उपासना,सर्वज्ञ, व्यापक,शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्ता आदि विशेषण लिखे हैं.... (१३)	इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ जहाँ स्तुति प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध,सनातन और सृष्टिकर्ता आदि विशेषण लिखे	इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ जहाँ स्तुति प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध,सनातन और सृष्टिकर्ता आदि	इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ जहाँ स्तुति प्रार्थना, उपासना,सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्ता आदि विशेषण लिखे हैं.... संस्करण २ जैसा पाठ है। (५)	इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ जहाँ स्तुति प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक,शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्ता आदि विशेषण लिखे हैं....	इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ जहाँ स्तुति प्रार्थना, उपासना, [आदि प्रकरण और] सर्वज्ञ, व्यापक,	इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ जहाँ स्तुति प्रार्थना, उपासना,सर्वज्ञ, व्यापक,शुद्ध,स नातन और सृष्टिकर्ता आदि विशेषण लिखे हैं.... संस्करण २ जैसा पाठ है। (११)	इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ जहाँ स्तुति, प्रार्थना, उपासना,सर्व ज्ञव्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्ता आदि विशेषण लिखे हैं....

लिखे हैं.... (१३)			हैं.... संस्करण २ जैसा पाठ है। (१५)	विशेषण लिखे हैं.. संस्करण २ जैसा पाठ है। (६)		संस्करण २ जैसा पाठ है। (२०)	शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्ता आदि विशेषण लिखे हैं. ...(१७)		संस्करण २ जैसा पाठ है। (५)

यहाँ भी पाठकगण देख सकते हैं कि ऋषि दयानन्द जी महाराज के द्वारा बोलकर लिखाये गये मूल हस्तलेख में और उससे प्रतिलिपि किए गए प्रेस हस्तलेख में जो पाठ है, वही पाठ हूबहू संस्करण २ में है। और इसी पाठ को केवल पंडित युधिष्ठिर जी मीमांसक के संस्करण को छोड़ सवा सौ वर्ष के दौरान में मुद्रित हुए सभी संस्करणों में यथावत् लिया गया है। अभिप्राय यहाँ स्पष्ट है। अतः स्पष्टीकरण की अधिक आवश्यकता नहीं है और जहाँ तक हमें ज्ञात है, विद्वत् समिति ने केवल सत्यार्थ प्रकाश के पाठों को स्पष्ट करने के लिहाज से बिना आधार के वाक्यों को लेने से अपने को विरत् रखा है। यहाँ पंडित युधिष्ठिर जी ने चोखुटे में 'आदि प्रकरण' और लिया है, वहाँ अन्य सभी संस्करणों(लेख प्रकाशित करने वाली सभा के ३९ वें संस्करण सहित) ने ऐसा नहीं किया है। इसी प्रकार मानक संस्करण विद्वत् समिति ने संस्करण २ का पाठ ही यथावत् रखा है। ऐसे स्थलों की,सत्यार्थ प्रकाश के लम्बे इतिहास में ऐसी छीछालेदर किसी ने नहीं की, क्योंकि ऋषि का आशय बिल्कुल स्पष्ट है।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
(३.४.ख)जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित धर्म ही का प्रकाश करता	जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित धर्म ही का प्रकाश करता है इसलिए	जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित धर्म ही का प्रकाश करता है इसलिए .	जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित धर्म का प्रकाश करता है इसलिए	जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित धर्म ही का प्रकाश करता है इसलिए .	जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित, धर्म ही का प्रकाश करता है इसलिए	जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित, धर्म ही का प्रकाश करता है इसलिए	जो धर्म ही में प्रकाशमा न और अधर्म से रहित धर्म ही	जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित धर्म ही का प्रकाश करता है इसलिए	जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित, धर्म ही का प्रकाश करता है इसलिए .

<table>
<tr><td>है इसलिए . ...(२४)</td><td>संस्करण २ का ही पाठ है। (२४)</td><td>......</td><td>नोटः- रेखांकित ऋषि का हस्तलेख है। (३५)</td><td>...... यहीं पाठ सं. ०२ में है। (१८)</td><td>संस्करण २ का ही पाठ है। (२२)</td><td>..... संस्करण २ का ही पाठ है। (३०)</td><td>का प्रकाश करता है इसलिए ..... संस्करण २ का ही पाठ है। (३६)</td><td>संस्करण २ का ही पाठ है। (२४)</td><td>...... संस्करण २ का ही पाठ है। (१६)</td></tr>
<tr><td colspan="10">नोटः- पाठकगण यहाँ गौर से मूल हस्तलेख व प्रेस हस्तलेख के पाठ को पढ़ें। मूल हस्तलेख में ऋषि ने स्वयं अधर्म से रहित धर्म का प्रकाश करता है। ऐसा लिखा है । तब से लेकर आज तक के सभी सम्पादकों ने (३६ वें संस्करण सहित) इसी पाठ को यथावत् स्वीकार किया है। सुरेन्द्र जी से पहले किसी विद्वान् ने यह प्रश्न पूछकर कि' क्या कोई ऐसा भी धर्म होता है जो अधर्म से सहित होता है' ऋषि-वाक्य की खिल्ली नहीं उड़ाई है। हस्तलेखों में व द्वितीय संस्करण में कोमा आदि का प्रयोग नहीं है। अन्य संस्करणों में किसी ने कोमे दिए हैं किसी ने नहीं दिए इसका कोई विशेष अर्थ नहीं हैं क्योंकि जव आप सकारात्मक भाव से किसी पाठ को देखते हैं तो उसका अभिप्राय पूर्ण स्पष्ट हो जाता है। जिसे आरोप ही लगाने हों उसका कोई कुछ नहीं कर सकता ।</td></tr>
<tr><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>५</td><td>६</td><td>७</td><td>८</td><td>९</td><td>१०</td></tr>
<tr><td>(ग)तथापि कुछ कुछ आलस्य, प्रमाद, ईष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे,वे बढ़ते बढ़ते वृद्ध हो गए।</td><td>तथापि कुछ कुछ आलस्य, प्रमाद, ईष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे,वे बढ़ते बढ़ते वृद्ध हो गए। (२८०)</td><td>तथापि कुछ कुछ आलस्य, प्रमाद, ईष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे,वे बढ़ते बढ़ते वृद्ध हो गए। (२८०)</td><td>तथापि कुछ कुछ आलस्य, प्रमाद, ईष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे,वे बढ़ते बढ़ते वृक्ष हो गए। (३६१)</td><td>तथापि कुछ कुछ आलस्य, प्रमाद, ईष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते बढ़ते वृद्ध हो गए। नोटः-'वृक्ष'</td><td>तथापि कुछ कुछ आलस्य,प्रमाद, ईष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे,वे बढ़ते बढ़ते वृक्ष हो गए। (३३२)</td><td>तथापि कुछ कुछ आलस्य, प्रमाद, ईष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते बढ़ते वृद्ध हो गए। (२३०)</td><td>तथापि कुछ कुछ आलस्य, प्रमाद, ईष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे,वे बढ़ते</td><td>तथापि कुछ कुछ आलस्य, प्रमाद, ईष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे,वे बढ़ते बढ़ते वृद्ध हो गए। (२४२) संस्करण २</td><td>तथापि कुछ कुछ आलस्य, प्रमाद, ईष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते बढ़ते वृद्ध हो गए।</td></tr>
</table>

(२८०)				को काटकर ऋषि ने वृद्ध किया है। (पृष्ठ १६६)		संस्करण २ का ही पाठ है।	बढ़ते वृद्ध हो गए। (४१६) संस्करण २ का ही पाठ है।	का ही पाठ है।	(२६१) संस्करण २ का ही पाठ है।

नोटः- यहाँ भी हम पाठकों से निवेदन करेंगे कि मूल हस्तलेख में वृक्ष शब्द था जिसको उचित न समझ ऋषि दयानन्द ने प्रेस हस्तलेख में स्वयं अपने हाथ से काटकर वृद्ध किया था। तब से लेकर आज तक के सभी संस्करणों में [३६ वें संस्करण में 'वृक्ष' स्वीकार किया गया है- यहाँ यह भी ध्यान रखें कि इन्हीं सम्पादक जी के ३७ वें संस्करण में 'वृद्ध' स्वीकार किया गया था (पृ.२५५)] यही पाठ स्वीकृत है। पाठकगण ! शरारत पूर्वक निर्वचनों की कोई सीमा नहीं होती। अन्यथा निश्चित रूप से यहाँ वृद्ध शब्द ही उपयुक्त है। क्योंकि अभिप्राय यह है कि जिस ईर्ष्या,द्वेष की शुरूआत हुई थी वह बढ़ते बढ़ते पुरानी होकर दृढ़ता को प्राप्त हो गई। यहाँ डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी उक्त पाठ का जिसे स्वयं ऋषि ने संशोधित किया था, उपहास उड़ाते हुए लिखते हैं कि 'वाह अंकुर भी बढ़कर बूढ़े होने लगे। हमने तो सुना था कि मनुष्यादि प्राणी बूढ़े होते हैं। यह नितान्त अशोभनीय है। अगर इसी शैली का हम अनुकरण करें तो वृक्ष को जहाँ स्वीकार किया गया है उस पाठ के लिए यह कहा जा सकता है कि 'आज तक हमने सुना था आम का वृक्ष होता है,पीपल का वृक्ष होता है। बताइये डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी ईर्ष्या, द्वेष का वृक्ष भूगोल में किस जगह पाया जाता है।' हमारा विनम्र निवेदन है कि इस प्रकार के निर्वचनों से आर्यों को बचना चाहिए।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
(३.४. घ)परन्तु उसने शिव, विष्णु,गणेश, सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण कर राम	परन्तु उसने शिव,विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण कर राम कृष्णादि अवतार	परन्तु उसने शिव,विष्णु, गणेश सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण कर राम कृष्णादि अवतार	परन्तु उसने शिव,विष्णु, गणेश, सूर्य देवी आदि के शरीर धारण करके राम कृष्णादि अवतार लेने से उनकी मूर्ति	परन्तु उसने शिव,विष्णु, गणेश, सूर्य देवी आदि के शरीर धारण करके राम कृष्णादि अवतार लेने	परन्तु उसने शिव,विष्णु, गणेश सूर्य देवी आदि के शरीर धारण करके राम कृष्णादि अवतार लेने	परन्तु उसने शिव,विष्णु, गणेश सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण करके राम कृष्णादि अवतार	परन्तु उसने शिव,विष्णु, गणेश सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण कर राम कृष्णादि अवतार	परन्तु उसने शिव,विष्णु गणेश, सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण	परन्तु उसने शिव,विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण करके राम कृष्णादि अवतार

कृष्णादि अवतार लिए,इससे उसकी मूर्ति बनती है... (३०७)	लिए,इससे उसकी मूर्ति बनती है.. संस्करण २ का ही पाठ है। (३०७)	लिए,इससे उसकी मूर्ति बनती है.... (३०७)	बनती है...... (४३४)	से उनकी मूर्ति बनती है....... (४३४)	से उनकी मूर्ति बनती है....... (३६७)	लिए,इससे उसकी मूर्ति बनती है.... .... (२५२)	लिए,इससे उसकी मूर्ति बनती है..... .... संस्करण २ का ही पाठ है। (४६१)	करके राम कृष्णादि अवतार लिए, इससे उसकी मूर्ति बनती है. .... (२६६)	लिए,इससे उसकी मूर्ति बनती है..... (३२२)

पाठकों से निवेदन है कि उक्त सभी पाठों को ध्यान से पढ़ें। मूल हस्तलेख व प्रेस हस्तलेख का जो पाठ है वह वाक्य पूरा पढ़ने पर अटपटा लगता है। इसीलिए ऋषि ने इसको संशोधित कर संस्करण २ में जो पाठ दिया है वह युक्त है। अब अन्य संस्करणों की चर्चा करें तो ३६ वें संस्करण में मूल हस्तलेख व प्रेस हस्तलेख के पाठ को यथावत् स्वीकार किया गया है। अन्यों ने या तो संस्करण २ के पाठ को हूबहू लिया है अथवा केवल और केवल एक परिवर्तन किया है कि वहाँ उपस्थित 'धारण कर' के स्थान पर 'धारण करके' ले लिया है। परन्तु सुरेन्द्र कुमार जी का जो प्रश्न है कि 'शरीर तो देवी आदि के धारण किए और अवतार राम कृष्ण बन गए' यह प्रश्न सभी संस्करणों से और ऋषि के हस्तलेख से उत्तर की अपेक्षा रखता है। अतः ऋषि भक्त आर्य विद्वान् सभी की जिम्मेदारी बनती है कि इसका उत्तर दें। हमारा तो विनम्र निवेदन यही है कि अव्वल तो अभिप्राय स्पष्ट होने के कारण संशोधन की कोई आवश्यकता नहीं है। और अगर संशोधन करना ही है तो 'कर' को 'करके' के रूप में लेकर कुछ नहीं होगा, बल्कि 'करे'करना पड़ेगा। पाठ स्वीकरण या अस्वीकरण हमारा क्षेत्र नहीं है। इसलिए इस पर तो विद्वत् समिति ही विचार करेगी । हम तो केवल यह अंकित करना चाहते हैं कि मानक संस्करण के पाठ की आड़ में सुरेन्द्र कुमार जी ऋषि से लेकर अब तक के सभी विद्वानों को प्रश्नों के घेरे में रख रहे हैं। ऋषि की उत्तराधिकारी सभा इन्हें गर्व पूर्वक छाप रही है।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
(३.४.ड.) (सन्धि)शत्रु से मेल	(सन्धि)शत्रु से मेल अथवा	(सन्धि)शत्रु से मेल अथवा उससे	(सन्धि) अर्थात् शत्रु से मेल करना हो तब	(सन्धि)शत्रु से मेल अथवा उससे	(सन्धि) अर्थात् शत्रु से मेल करना हो तब	(सन्धि) शत्रु से मेल	(सन्धि)शत्रु से मेल अथवा	(सन्धि)शत्रु से मेल अथवा उससे	(सन्धि)शत्रु से मेल अथवा उससे

अथवा उससे विपरीतता करे, परन्तु वर्तमान ... (१६०)	उससे विपरीतता करे, परन्तु वर्तमान .. संस्करण २ का ही पाठ है। (१६०)	विपरीतता करे, परन्तु वर्तमान ... (१६०)	उसके तुल्य सवारी और कर्म करे अथवा उससे विपरीत करे,परन्तु... (२१७)	विपरीतता करे, परन्तु वर्तमान ... नोटः- विपरीतता का 'ता' ऋषि हस्त से है। (११४)	उसके तुल्य सवारी कर्म करे अथवा उससे विपरीतता करे,परन्तु... (१८०)	अथवा उससे विपरीतता करे, परन्तु वर्तमान... संस्करण २ का ही पाठ है। (१३२)	उससे विपरीतता करे, परन्तु वर्तमान ... संस्करण २ का ही पाठ है। (२२६)	विपरीतता करे, परन्तु वर्तमान ... संस्करण २ का ही पाठ है। (१३६)	विपरीतता करे, परन्तु वर्तमान ... संस्करण २ का ही पाठ है। (१५५)

यहां मूल हस्तलेख में इतना पाठ अधिक है 'तब उसके तुल्य सवारी और कर्म करें'। ३६ वें संस्करण को छोड़कर अन्य सभी विद्वानों ने संस्करण २ के पाठ को जो कि प्रेस हस्तलेख का पाठ है हूबहू स्वीकार किया है। जहां तक डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी के प्रश्न का सवाल है,उससे तो न मूल हस्तलेख वचता है न ३६ वां संस्करण क्योंकि 'विपरीतता' हर जगह उपस्थित है। मूल हस्तलेख का जो पाठ अधिक है वह तो केवल मेल करने के उपाय के रूप में उपस्थित है कि जव शत्रु से मेल करना हो तब उसके तुल्य सवारी और कर्म करे।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
४ क. योगी ऐश्वर्य सहित अपने ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होकर अन्य अधिपति से रहित अर्थात् स्वयं आप अपना और	योगी ऐश्वर्य सहित अपने ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होकर अन्य अधिपति से रहित अर्थात् स्वयं आप अपना	योगी ऐश्वर्य सहित अपने ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होकर अन्य अधिपति से रहित अर्थात् स्वयं आप अपना और सबका	योगी ऐश्वर्य सहित अपने ब्रह्मस्वरूप प्राप्त होकर अन्य अधिपति से रहित अर्थात् स्वयं आप अपना और सबका अधिपति रूप	योगी ऐश्वर्य सहित अपने ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होकर अन्य अधिपति से रहित अर्थात् स्वयं आप अपना और सबका	योगी ऐश्वर्य सहित अपने ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होकर अन्य अधिपति से रहित अर्थात् स्वयं आप अपना	योगी ऐश्वर्य सहित अपने ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होकर अन्य अधिपति से रहित अर्थात् स्वयं आप अपना और सबका	योगी ऐश्वर्य सहित अपने ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होकर अन्य अधिपति से रहित अर्थात् स्वयं आप अपना	योगी ऐश्वर्य सहित अपने ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होकर अन्य अधिपति से रहित अर्थात् स्वयं आप अपना और सबका	योगी ऐश्वर्य सहित अपने ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होकर अन्य अधिपति से रहित अर्थात् स्वयं आप अपना और सबका

सबका अधिपति रूप ब्रह्मस्वरूप से मुक्ति में स्थित रहता है।	और सबका अधिपति रूप ब्रह्मस्वरूप से मुक्ति में स्थित रहता है। (२६४) संस्करण २ का ही पाठ है।	अधिपति रूप ब्रह्मस्वरूप से मुक्ति में स्थित रहता है। (२६४)	ब्रह्मस्वरूप से मुक्ति में स्थित रहता है। (४१६)	अधिपति रूप ब्रह्मस्वरूप से मुक्ति में स्थित रहता है। (२०७)	और सबका अधिपति रूप ब्रह्मस्वरूप से मुक्ति में स्थित रहता है। संस्करण २ का ही पाठ है। (३५०)	अधिपति रूप ब्रह्मस्वरूप से मुक्ति में स्थित रहता है। संस्करण २ का ही पाठ है। (२४२)	और सबका अधिपति रूप ब्रह्मस्वरूप से मुक्ति में स्थित रहता है। संस्करण २ का ही पाठ है। (४४१)	अधिपति रूप ब्रह्मस्वरूप से मुक्ति में स्थित रहता है। संस्करण २ का ही पाठ है। (२५७)	अधिपति रूप ब्रह्मस्वरूप से मुक्ति में स्थित रहता है। संस्करण २ का ही पाठ है। (३०८)

डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी ने स्वयं लिखा है कि यह बड़ा गंभीर पाठ है। हमें यही कहना है कि उपरोक्त सारणी देखिये सर्वत्र एक ही पाठ है फिर प्रहार मानक संस्करण पर ही क्यों ? पहले क्या आप निद्रामग्न थे। क्या विडम्बना है कि ऋषि ने जिस कथन को पूर्व पक्ष के रूप में दिया है उसे ऋषि मान्यता बताकर प्रस्तुत किया जा रहा है जबकि ऋषि की स्थापना इस प्रकार है जब योगी का सत्य संकल्प होता है तब स्वयं परमेश्वर को प्राप्त होकर मुक्ति सुख को पाता है वहां स्वाधीन स्वतंत्र रहता है। जैसा संसार में एक प्रधान,दूसरा अप्रधान होता है,वैसा मुक्ति में नहीं। किन्तु सब मुक्त जीव एक से रहते हैं। यह है ऋषि स्थापना' इसमें अयुक्त क्या है?

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
(४.ख) जिनका अच्छा धर्म करने का सुख रूप समय हो,वे सुकालिन्	जिनका अच्छा धर्म करने का सुख रूप समय हो,वे सुकालिन् संस्करण २	जिनका अच्छा धर्म करने का सुख रूप समय हो,वे सुकालिन् (१०१)	जिनका अच्छे धर्म के करने और सुख रूप समय हो.... (१३५)	जिनका अच्छे धर्म के करने और सुख रूप समय हो.... (७०)	जिनका अच्छे धर्म के करने और सुख रूप समय हो.... (११२)	जिनका अच्छा धर्म करने का सुख रूप समय हो,वे सुकालिन् संस्करण २	जिनका अच्छा धर्म करने का सुख रूप समय हो,वे सुकालिन् संस्करण २	जिनका अच्छा धर्म करने का सुख रूप समय हो,वे सुकालिन् संस्करण २ का ही पाठ	जिनका अच्छा धर्म करने का सुख रूप समय हो,वे सुकालिन् संस्करण २

	का ही पाठ है। (१०१)					का ही पाठ है। (८७)	का ही पाठ है। (१४७)	है। (६३)	का ही पाठ है। (६६)

उपरोक्त तालिका बताती है कि यहां भी प्रायः सभी संस्करणों ने संस्करण २ के पाठ को ही स्वीकार किया है। हस्तलेखों के पाठ से अर्थ में क्या अंतर पड़ने वाला है इस पर विद्वद्जन विचार करें। हम मानक संस्करण विद्वत् समिति से भी यही निवेदन करेंगे।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
(४.ग) विना विचारे बलात्कार से किसी की स्त्री से बुरा काम करना (१४६)	विना विचारे बलात्कार से किसी की स्त्री से बुरा काम करना संस्करण २ का ही पाठ है। (१४६)	विना विचारे बलात्कार से किसी की स्त्री से बुरा काम करना (१४६)	विना विचारे बलात्कार किसी की स्त्री से बुरा काम करना (१६६)	विना विचारे बलात्कार से किसी की स्त्री से बुरा काम करना (१०५)	विना विचारे बलात्कार किसी की स्त्री से बुरा काम करना (१६५)	विना विचारे बलात्कार से किसी की स्त्री से बुरा काम करना संस्करण २ का ही पाठ है। (१२१)	विना विचारे बलात्कार से किसी की स्त्री से बुरा काम करना संस्करण २ का ही पाठ है। (२१०)	विना विचारे बलात्कार से किसी की स्त्री से बुरा काम करना संस्करण २ का ही पाठ है। (१२६)	विना विचारे बलात्कार से किसी की स्त्री से बुरा काम करना संस्करण २ का ही पाठ है। (१४१)

स्पष्ट है कि सभी संस्करणों में समान पाठ है। मूल हस्तलेख में और ३६ वें संस्करण में केवल 'से'शब्द का लोप है उससे कोई अंतर नहीं पड़ता। वस्तुतः क्रोधज दुर्गुणों को गिनाते हुए ऋषि ने साहस के अंतर्गत इसे लिखा है। क्रोध आने पर सबसे पहले विवेक नष्ट होता है अतः अभिप्राय विल्कुल स्पष्ट है। निर्वचन विल्कुल अशोभनीय व शरारतपूर्ण है।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
(४.घ) (प्रश्न) क्या अपने ही	(प्रश्न) क्या अपने ही	(प्रश्न) क्या अपने ही	(प्रश्न) क्या अपने	(प्रश्न) क्या अपने ही	(प्रश्न) क्या अपने ही हाथ	(प्रश्न) क्या अपने ही	(प्रश्न) क्या अपने ही	(प्रश्न) क्या अपने ही हाथ	(प्रश्न) क्या अपने ही हाथ का

हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं ? (उत्तर) जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं... (२६६)	हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं ? (उत्तर) जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं.... संस्करण २ का ही पाठ है। (२६६)	हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं ? (उत्तर) जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं... (२६६)	ही हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं ? (उत्तर) जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर खाने में कुछ हानि नहीं.... (३७५)	हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं ? (उत्तर) जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं नोट:- रेखांकित ऋषि के हाथ का है। (१६०)	का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं ? (उत्तर) जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं.... संस्करण २ का ही पाठ है। (३२०)	हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं ? (उत्तर) जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के हाथ का खाने में कुछ भी हानि नहीं.... (२२२)	हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं ? (उत्तर) जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के हाथ का खाने में कुछ भी हानि नहीं.... (४०२)	का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं? (उत्तर) जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं.... (२३२) संस्करण २ का ही पाठ है।	खाना और दूसरे के हाथ का नहीं? (उत्तर) जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं... संस्करण २ का ही पाठ है। (२८०)

यहां इस बात की ओर ध्यान दिलाना चाहेंगे कि प्रेस हस्तलेख में 'सब आर्यों के साथ' यह ऋषि के हाथ का है इस बात को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। कुछ संस्करणों में इसे 'हाथ का' कर दिया है जिससे प्रश्न और उत्तर में सामन्जस्य स्पष्ट हो गया है,बस इतनी सी बात है। इस पाठ के स्वीकरण का निर्णय विद्वत् समिति ही कर पायेगी। ऐसे स्थलों को सत्यार्थ प्रकाश के 'कलंक' स्वरूप मानना डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी की निजी राय है आर्य जगत् की नहीं।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
(४.ङ.)जीव के अल्पज्ञान, अल्पबल, अल्पस्वरूप,सव भ्रान्तित्व और परिच्छिन्नतादि गुण...... (१६६)	जीव के अल्पज्ञान, अल्पबल, अल्पस्वरूप, सब भ्रान्तित्व और परिच्छिन्नतादि गुण...... संस्करण २ का ही पाठ है। (१६६)	जीव के अल्पज्ञान, अल्पवल, अल्पस्वरूप, सब भ्रान्तित्व और परिच्छिन्न -तादि गुण.. ....(१६६)	जीव के सान्तज्ञान, सान्तवल, सब भ्रान्तित्व और परिच्छिन्न -तादि गुण...... (२७२)	जीव के अल्पज्ञान, अल्पबल, अल्पस्वरूप,सव भ्रान्तित्व और परिच्छिन्न -तादि गुण.. नोटः- रेखांकित ऋषि हस्त से है। (१४१)	जीव के अल्पज्ञान, अल्पबल, अल्पस्वरूप, सभ्रान्तित्व और परिच्छिन्नतादि गुण...... (२३०)	जीव के अल्पज्ञान, अल्पवल, अल्पस्वरूप,सव भ्रान्तित्व और परिच्छिन्न -तादि गुण.. संस्करण २ का ही पाठ है। (१६४)	जीव के अल्पज्ञान, अल्पवल, अल्पस्वरूप,सव भ्रान्तित्व और परिच्छिन्न -तादि गुण...... संस्करण २ का ही पाठ है। (२६१)	जीव के अल्पज्ञान, अल्पवल, अल्पस्वरूप, सभ्रान्तित्व और परिच्छिन्न -तादि गुण.. ....(१७२)	जीव के अल्पज्ञान, अल्पवल, अल्पस्वरूप, सब भ्रान्तित्व और परिच्छिन्न -तादि गुण संस्करण २ का ही पाठ है। (२००)

उक्त पाठ पर हमारे मान्य डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी लिख रहे हैं कि पाठकगण 'जीव का यह गुण और शब्द 'सव भ्रान्तित्व' कभी नहीं सुना था ना आपने? यह गुण हमारे १० विद्वानों (मानक संस्करण समिति) द्वारा खोज लिया गया है।' ऐसा लिखना कितना बड़ा असत्य है। यह ऊपर की सारणी देखकर पाठकों को एक क्षण में पता चल जायेगा। इसकी खोज मानक संस्करण समिति के विद्वानों ने नहीं की । सुरेन्द्र जी भी देख लें। ऋषिवर दयानन्द जी महाराज के लिखाए हस्त लेखों में है। संस्करण २ के इसी पाठ को प्राय सभी विद्वानों ने अपनाया है। ३६ वें संस्करण और वेदानन्द जी के संस्करण ने 'सव भ्रन्तित्व के के स्थान पर 'सभ्रान्तित्व' लिया है। स्पष्ट है कि आज तक सवा सौ वर्ष में डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी की बुद्धि की कोई वरावरी भी कर सके, ऐसा कोई पैदा नहीं हुआ।

नोट : पृ. ८२ पर हमने प्रमाण स्वरूप हस्तलेखों के संदर्भित अंश दिए हैं। जान बुझकर ही इन्हें सीमित संख्या में दिया है। परन्तु हमारे लेख को अक्षरशः सत्य प्रमाणित करने हेतु ये काफी हैं।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
(५.४.ख) यमेन वायुना सत्य राजन इत्यादि वेद वचनों से वेद मंत्रों के प्रमाण पते दिए हैं।(३४२)	यमेन वायुना सत्य राजन इत्यादि वेद वचनों से वेद मंत्रों के प्रमाण पते दिए हैं।(३४२)	यमेन वायुना सत्य राजन इत्यादि वेद वचनों से वेद मंत्रों के प्रमाण पते दिए हैं।(३४२)	(यमने वायुना) सत्य राजन इत्यादि वेद वचनों से वेद मंत्रों के प्रमाण पते नहीं दिए हैं।(४८८)	(यमेन वायुना। सत्य राजन) इत्यादि वेद वचनों से वेद मंत्रों के प्रमाण पते नहीं दिए हैं।(२४५)	यमेन वायुना सत्य राजन इत्यादि वेद वचनों से वेद मंत्रों के प्रमाण पते दिए हैं।(४१२)	यमेन। वायुना।सत्य राजन। इत्यादि वेद वचनों से वेद मंत्रों के प्रमाण पते नहीं दिए हैं।(२८१)	यमेन। वायुना। सत्य राजन, इत्यादि वेद वचनों से वेद मंत्रों के प्रमाण पते दिए हैं।(५१६)	यमेन वायुना सत्य राजन इत्यादि वेद वचनों से वेद मंत्रों के प्रमाण पते दिए हैं।(३०८)	यमेन, वायुना, सत्य राजन । इत्यादि वेद वचनों से वेद मंत्रों के प्रमाण पते दिए हैं।(३६१)
सभी संस्करणों में यह पाठ हैं। एक बात अवश्य विचारणीय है कि इस पाठ के नीचे ऋषि लेख है '<u>इत्यादि वेद वचनों से</u>' जो यह इंगित करता है कि उक्त वचन एक से ज्यादा हैं और वेद के हैं। फिर इनका प्रमाण पता ढूढ़ना तो आर्य विद्वानों का काम था जो उन्होंने किया।अब यह गलत किया या सही किया। यह विद्वद्जन विचार करें।									

सत्यार्थ प्रकाश प्रेमी निश्चित जानें कि सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर द्वारा प्रकाशित 'मानक संस्करण' एक अत्यन्त श्रेष्ठ कार्य है। प्रूफ रीडिंग या अनवधानता से जो अल्प भूलें रह गयी हैं, आगामी आवृत्ति में सुधार कर दिया जावेगा। इसका प्रचार-प्रसार करना-कराना अपना कर्त्तव्य जानें।

इस सबको प्रस्तुत करने के पश्चात् कुछ और आरोप मानक संस्करण पर सुरेन्द्र जी ने लगाये हैं जैसे अव्यवस्थित सम्पादन, अपारदर्शिता का परिचय और अभी भी १२०० के लगभग शेष संशोधन। इस पर हमारा निवेदन निम्न प्रकार है :-

मानक संस्करण का सम्पादन निश्चित कसौटियों और नीतियों के अनुसार हुआ है। अव्यवस्थित वह केवल आपकी नजर में है।

एक बार पुनः उन नीतियों को स्पष्ट कर दें।

१. संस्करण २ ही प्रामाणिक है।
२. न्यूनतम पाठ परिवर्तन ।
३. केवल भाव तथा भाषा को स्पष्ट करने हेतु परिवर्तन नहीं।
४. हस्तलेखों का आधार मिलने पर पाठ परिवर्तन, वह भी परिशिष्ठ में दर्शा कर।
५. अत्यन्त अपरिहार्य होने पर ही विद्वत् समिति द्वारा परिवर्तन, वह भी परिशिष्ठ में दर्शा कर।
६. अत्यन्त साधारण मुद्रण भूलों पर चिह्न नहीं परन्तु पृथक् परिशिष्ठ में इनको दिखाना,जैसाकि सम्पादकीय में स्पष्ट कर दिया गया है।
७. और भी साधारण मुद्रण भूल जैसे 'अस्रुपात को अश्रुपात,' 'जोसी को जोशी' आदि को संशोधन नहीं मानना, परिवर्तन नहीं मानना। इन्हें न कोई चिह्न दिया गया है और न इन्हें परिशिष्ठ में दिया गया है। इस बाबत सम्पादकीय में स्पष्ट लिख दिया गया है। जिन १२०० (आपके अनुसार)अघोषित अशुद्धियों को जिक्र आपने किया है समिति उन्हें परिवर्तन नहीं मानती और वे हैं भी नहीं। ये विरोध के लिए विरोध मात्र है।
८. **यह भलीभाँति समझ लिया जावे कि विद्वत् समिति ने हस्तलेखों को देखकर मानक संस्करण का सम्पादन नहीं किया है,वरन् संस्करण २ को प्रामाणिक मानते हुए, अत्यावश्यक होने पर हस्तलेखों का सहाय लिया है। दोनों बातों में महान् अन्तर है,इसे समझना इतना कठिन भी नहीं है।** .

पारदर्शिता :-

पारदर्शिता का जहाँ तक प्रश्न है समिति इस निश्चय पर कायम थी, कायम है, और कायम रहेगी। आपसे पूर्व श्रीमान् दैवकरणि जी ने कुछ वाक्यों की सूची अपने लेख में दी थी और अब आपने भी दी है। इन दोनों को देखकर यह निश्चय होता है कि ऐसे वाक्य जिन पर चिह्न लगना या तालिका में दर्शाना रह गया है वह ज्यादा नहीं हैं। यह हम इस आधार पर कह रहे हैं कि आपकी सूची में जिन पाठों को लिया गया है उनका जब दैवकरणि जी की सूची से मिलान किया गया तो अस्सी प्रतिशत से अधिक पुनरुक्त हैं, ऐसा पाया गया। फिर भी इस संबंध में आप या अन्य कोई भी ध्यानाकर्षण करेंगे तो आभार सहित उनको चिह्नित कर दिया जायेगा। आश्चर्य तो हमें यह है कि जब अन्य सम्पादकों ने पूर्णतः अपारदर्शिता बरतते हुए अपने स्वीकृत पाठों

का घालमेल इस प्रकार कर दिया कि आज कोई भी इनको ऋषिप्रोक्त ही मानेगा, तब आप कुछ भी नहीं बोले ।

इस लेख का समापन करते हुए दो बातों पर जिन पर कि हमें सख्त ऐतराज है, अपने विचार व्यक्त करना चाहेंगेः-

१. सुरेन्द्र कुमार जी ने अपने पूर्व लेख में विद्वत् समिति पर यह आरोप लगाया है कि ये सत्यार्थ प्रकाश को **'आदिम अवस्था'** में ले गए। इस पर हमारा यह कहना है कि वर्ष प्रतिवर्ष दशाब्दियों में परिवर्तित होता हुआ सत्यार्थ प्रकाश आपको मुबारक। हम इसका आदिम स्वरूप ही रखना चाहते हैं। इसके लिए ही यह सारा परिश्रम किया गया है।

२. परोपकारी पत्रिका ७१२ पर ३.३ के अंतर्गत डॉ. साहब लिखते हैं जिसका भाव यह है कि सत्यार्थ प्रकाश में अभी भी ऐसे अनेक असंशोधित स्थल विद्वत् समिति ने छोड़ दिए हैं, **जो सत्यार्थ प्रकाश में कलंक के समान हैं।** उनको शुद्ध न करने के कारण यह संस्करण पाठकों पर यह प्रभाव छोड़ रहा है कि जैसे महर्षि दयानन्द को संस्कृत शब्दों का ज्ञान नहीं था।

यह कथन अत्यन्त आपत्तिजनक होने के साथ साथ भविष्य में सत्यार्थ प्रकाश के साथ जो कुछ करने का प्रयास होगा, उसका संकेत भी दे रहा है। पाठकगण सुरेन्द्र कुमार जी द्वारा जितने भी उद्धरण उक्त आरोपण माला में दिए गए हैं, उनका तुलनात्मक विवरण हमने इस सारणी में दिया है। आप स्वयं देख लें कि सभी विद्वानों ने उन्हीं पाठों को स्वीकार किया है जिनको मानक संस्करण में स्वीकार किया गया है। **केवल सुरेन्द्र कुमार जी इनको कलंक मानते हैं** और ऐसा कहने में यह जानते हुए भी ये पाठ हस्तलेखों में उपस्थित हैं, उनको कोई संकोच नहीं होता। बड़े आश्चर्य की बात है कि न तो ऋषि को और न आर्य जगत् के अनेकानेक मूर्धन्य विद्वानों को सत्यार्थ प्रकाश के कलंक के दर्शन नहीं हुए। डॉ.साहब को हो गए और ऐसी स्थिति में अगर सत्यार्थ प्रकाश में उपस्थित पाठों के आधार पर सुरेन्द्र जी यह लिखते हैं कि पाठकों पर यह प्रभाव हो रहा है कि ऋषि को संस्कृत शब्दों का ज्ञान नहीं था तो हम कहेंगे कि प्रभाव पाठकों पर हो न हो आप पर तो अवश्य ही हो रहा है। बिना आधार के समस्त शुद्धिकरण का कार्य आपको मुबारक हो।

एक बात और-आपने कुरान और बाइबल के शुद्ध सम्पादन की बात कही है। वहाँ पाठभेद न करने में सम्पादन की विशेषता नहीं,वरन् पाठभेद करना तो पृथक् इस बाबत कोई सोचने तक की जुर्रत नहीं कर सकता वरना वह अपना अंजाम जानता है। गुरु ग्रन्थ साहब के सदंर्भ में पू. स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के लेख का एक संक्षिप्त अंश इस संदर्भ में उद्धृत करेंगे। यह तो केवल आर्य समाज ही है जहाँ ऋषि सिद्धान्तों और भाषादि की आलोचना भी करते हुए 'मुनि' बनते रहो और गले में मालाएँ भी पहनते रहो, पुरस्कृत होते रहो।

क्योंकि यह लेख परोपकारी पत्रिका में छप रहे हैं इसलिए इनका प्रत्युत्तर भी वहीं छपना चाहिए। यह सम्पादन का एक स्वीकृत धर्म है। इसलिए इन लेखों को परोपकारी में छपने तो भेज ही रहे हैं। परन्तु वहां से अगर निराशा हाथ लगी तो अन्य पत्रिकाओं के माध्यम से अपनी बात पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास इसलिए रहेगा कि इस लेख माला से जान बूझकर अकारण पाठकों को भ्रमित किया जा रहा है।

हम अब भी यही मानते हैं कि इस प्रकार के लेखों से जो भ्रम उत्पन्न होता है वह संस्थाओं के लिए कोई अच्छी बात नहीं। अतः अभी भी यह रास्ता सदैव खुला हुआ है कि मानक संस्करण में, घोषित कसौटियों के विरुद्ध कोई भी बात किसी भी विद्वान् को दृष्टिगोचर हो तो कृपया हमें सीधे अवगत करायें। सही पाये जाने पर साभार स्वीकृत किया जायेगा। यह मार्ग अधिक प्रशस्त है। ऐसा हमारा मानना है।

❑❑❑

सत्यासत्य के स्वयमेव निर्णयार्थ एक बार 'मानक संस्करण' स्वयं पढ़ें

जो वेदोक्त सत्य धर्म अर्थात् पक्षपातरहित होकर सत्य के ग्रहणं और असत्य के परित्याग, न्यायरूप वेदोक्त धर्मादि,आर्य अर्थात् उत्तम पुरुषों के गुण कर्म स्वभाव और पवित्रता ही में सदा रमण करें।

महर्षि दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ १०४

धर्म तो पक्षपातरहित न्यायाचरण,सत्य का ग्रहण,असत्य का परित्याग,वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा का पालन,परोपकार,सत्यभाषणदि-लक्षण सब अशुद्धियों का अर्थात् सब मनुष्य मात्र का एक ही है।

महर्षि दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ १२६

अब निर्णय आर्यजन करेंगे

– अशोक आर्य

एक बात जो लेखमाला के प्रारम्भ होते ही हमें सोचने को विवश कर रही थी कि आखिर इन लेखों में,जिन पाठों पर डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी को सख्त एतराज है व जिनका वे उपहास उड़ा रहे हैं, **वे सभी परोपकारिणी सभा के स्वयं के सत्यार्थ प्रकाश संस्करणों में हूबहू उपलब्ध हैं । फिर ये लेख'परोपकारी' में कैसे छप रहे हैं?** स्पष्ट है कि यही राजनीति /कूटनीति/दुर्नीति है। चाहे कितना भी असत्य क्यों न हों,बारम्बार उसी को दोहराया जाये तो आमजन उसे सत्य समझ लेते हैं। इसी दुर्नीति के अन्तर्गत ही ये लेख प्रकाशित किए जा रहे हैं कि एक बार तो मानक संस्करण इतना बदनाम हो जाये कि आर्यजन उसकी उपेक्षा करने लगें। वे यह भी जानते हैं कि न्यास की तो अपनी कोई पत्रिका है नहीं, **हम प्रत्युत्तरों को छापेंगे नहीं,** और जब तक जन सामान्य तक प्रत्युत्तर पहुंचाने के अन्यान्य साधन न्यास/विद्वत् समिति ढूढ़ेगी तब तक कई बार हथौड़े की चोट मानक संस्करण पर हो चुकी होगी। यह दुर्नीति, **नीति तब होती जब वे प्रत्युत्तरों को बराबर परोपकारी में छापते रहें।** अगर वे ऐसा करने को तैयार हैं तो फिर कभी तक भी प्रक्रिया को चलावें,हमें एतराज नहीं है। क्योंकि हमने पहले भी कहा है,फिर जोर देकर कहते हैं कि ये **सारे आक्षेप मानक संस्करण पर आते ही नहीं, क्योंकि 'मानक संस्करण विद्वत् समिति' को उत्तरदायी तभी ठहराया जा सकता है जब कि उन्होंने संस्करण २ के पाठों में सिद्धान्त विरोधी परिवर्तन कर दिए हों। परन्तु ऐसे परिवर्तन तो यह लेखमाला दिखाने में असफल रही है। इसमें जो भी पाठ दर्शाये हैं वे न सिर्फ हस्तलेखों में हैं वरन् १२५ वर्षों में छपे सभी सत्यार्थ प्रकाशों में हैं। जिस संस्करण (परोपकारिणी सभा ३९ वां) के परामर्शदाता माननीय सुरेन्द्र कुमार जी रहे हैं उसमें भी यही पाठ हैं।** इससे यही सिद्ध होता है कि ऊपर जिस रणनीति की चर्चा हमने की है वह सर्वथा सत्य है। वरना यदि आर्यों जैसे निर्मल हृदय होते, तो पहले आत्म विश्लेषण करते कि जिन पाठों पर हम आक्षेप कर रहे हैं वे हमने भी तो लिए हैं,तो साथ ही साथ स्पष्टीकरण भी या उसके संकेत मात्र अथवा सम्पादक की असहमति संबंधी टिप्पणी कुछ तो देते या फिर इन आक्षेपों से सहमत हों तो यह लिख देते कि आगामी संस्करण में पाठ सुरेन्द्र जी के बताए अनुरूप कर दिए जावेंगे। **और यह भी कि ऋषि की उत्तराधिकारिणी सभा के सर्वोच्च अधिकारी होने के नाते, यह भी सोचते कि ऋषि पाठों का उपहास उड़ाने वाले लेख, इस सभा के मुखपत्र में क्योंकर छप सकते है?** यह है हमारे विद्वानों का आत्म हनन। अतः आर्यजनों की अदालत में जाने के सिवाय कोई रास्ता शेष नहीं।

यद्यपि कुछेक को छोड़ सभी आर्य विद्वानों ने संस्करण २ को ही प्रामाणिक माना है पर क्योंकि आपने प्रतिलिपिकर्ता को कई स्थलों पर मक्कार आदि विशेषणों से

विभूषित किया है तथा मूल हस्तलेख को ऋषि प्रोक्त माना है तो चलिए कुछ देर के लिए मूल हस्तलेख को प्रमाण मान लेते हैं।

अब देखिए। सत्यार्थ प्रकाश के लेखन की क्या प्रक्रिया रही होगी? ऋषि बोलते गए और पंडित लिखते गए। इस लिखे हुए को ऋषि ने आद्योपान्त पढ़ा और संशोधित कर दिया। इससे आगे प्रतिलिपिकार ने प्रेस प्रति बनाई। प्रतिलिपिकार आपको अमान्य है। तो प्रथम हस्तलेख को तो आप भी ऋषि का बोला हुआ प्रामाणिक दस्तावेज मानते हैं। अगर उस **प्रथम हस्तलेख में भी वही पाठ हैं,जिन पर आपके आक्षेप हैं, तो इसका सीधा अर्थ यही है कि आपके सारे प्रश्न स्वयं महर्षिवर से हैं, बस आप वाक्य जाल रचकर, सीधे सीधे कहने से भयभीत हैं, अतएव मानक संस्करण की आड़ ले रहे हैं।**

आपने परोपकारी पाक्षिक द्वितीय दिसम्बर २०१० में (जो कि वर्तमान लेखमाला की संभवतः आखिरी किश्त है) पृष्ठ ७४६ पर इतिहास संबंधी कुछ प्रश्न खड़े किए हैं।आपके आक्षेप पूर्ववत् 'विद्वत् समिति' पर हैं,**पर सही मायने में ऋषि दयानन्द पर तथा आर्य जगत् के उन समस्त दिवंगत व वर्तमान सम्पादकों पर हैं जिन्होंने भी सत्यार्थ प्रकाश का सम्पादन किया है, क्योंकि यही पाठ मूल हस्तलेख में हैं तथा अन्य संस्करणों (आपके परामर्श से तैयार परोपकारिणी सभा के ३९ वें से सहित) में भी।**

यहां एक निवेदन के पश्चात् आगे बढ़ेंगे। इतिहास संबंधी कई विवरण विभिन्न कालखण्ड तो क्या, एक ही कालखण्ड में, विभिन्न इतिहासकारों द्वारा लिखी गई पुस्तकों में अलग अलग मिलते हैं। दूर क्यों जाय.... आर्य समाज का इतिहास ही ले लें,जो महर्षिवर की जीवन यात्रा सहित १७-१८ दशाब्दियों से ज्यादा पुराना नहीं है। अभी भी ऋषि के जन्म स्थल,पिता का नाम, १८५७ की क्रान्ति में उनका योगदान सहित अनेकों बातों में विद्वानों के भिन्न विचार सम्मुख आते हैं। और तो और आर्य समाज की स्थापना की तिथि के बारे में आज तक मतैक्य नहीं हो पाया। कई बार एक ही व्यक्ति के कई नाम होने के कारण भी भ्रान्तियां हो जाती हैं। जब २०० वर्ष पुराने इतिहास की यह बात है तो ५००० वर्ष से भी अधिक पुराने इतिहास के स्रोत, ऋषिवर के समक्ष क्या रहे होंगे, कैसे कहा जा सकता है ? समय के साथ भौगोलिक परिस्थितियों में भी अन्तर आ जाता है। जैसलमेर में कभी समुद्र था। कभी सरस्वती नदी थी। आज का व्यक्ति इतिहास के किसी पात्र की यात्रा के बारे में लिखेगा तो अटक जायेगा कि यहां तो मार्ग ही नहीं है फिर वह कैसे आया?

हमारा स्पष्ट निवेदन है कि ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश का लेखन 'ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि' कहकर प्रारम्भ किया तथा ऋतमवादिषम् सत्यमवादिषाम्। कहकर समाप्त किया। ऋषि के सामने सूचना की क्या क्या सामग्री थी, हम निश्चर्यपूर्वक नहीं कह सकते, **परन्तु यह दृढ़ निश्चय है कि संशयात्मा होकर ऋषि ने कुछ भी नहीं बोला।**

यह भी सर्वविदित है कि प्रथम हस्तलेख, प्रेस हस्तलेख ऋषि ने स्वयं पढ़कर संशोधित किए हैं। उसके बाद प्रूफ भी संशोधित किए। इसके उपरांत जो संस्करण २

हमारे समक्ष है उसमें दृष्टिदोष, मुद्रण-भूल अवश्य हैं, पर अन्य पाठों को बदलने से पूर्व हजार बार सोचना आवश्यक है। पहले भी ऋषि पाठ को परिवर्तित करने वालों को भूल स्वीकारनी पड़ी । **यही कारण है कि १२५ वर्ष के इतिहास में जितने भी विद्वानों ने सत्यार्थ प्रकाश का सम्पादन किया उनमें से किसी ने भी उन पाठों में से एक भी पाठ को जिन्हें आप बदलना चाहते हैं हाथ भी नहीं लगाया।** मान्यवर ! ये वे विद्वान् थे जिन्हें लिखने के लिए शब्दकोष में शब्द नहीं ढूढ़ने पड़ते थे, वरन् जिस प्रकार प्रत्येक शब्दकोष आपकी लेखनी से प्रसूत शब्दों से अपना आकार बढ़ा, महिमा मण्डित होना चाहता है,कम से कम उस स्तर के विद्वान् तो ये थे।

एक बात और,अन्य विद्वानों की बात छोड़ दें, पंडित भगवद्दत्त को तो इतिहास के क्षेत्र में,आर्य जगत् में शिखर पुरुष माना जाता रहा है। उन्होंने भी 'व्यास' व 'बोबदेव' वाले पाठ को नहीं बदला है।

ऋषि के पाठों को ऐसे ही बदलने लगे तो कोई अन्त नहीं। एक सज्जन ने हमें चुनौती दी कि सत्यार्थ प्रकाश में यह जो लिखा है कि 'दो जैन साधुओं ने शंकराचार्य को विष दिया' सर्वथा अनैतिहासिक है। इसे हटा दो,और भी आगे बढ़कर आपकी शैली में यह भी पूछ ले कि उन जैन साधुओं के नाम और धाम बताओ तो कोई क्या करेगा? कोटा से एक अन्य ने लिखा कि गुरुनानक प्रकरण में कुछ बातें तथ्य के विपरीत हैं उन्हें सुधार दो। मानिये फिर सबकी बात। क्या यह उचित होगा ? फिर तो स्वामी अग्निवेश जी ने भी क्या गलत कहा था ?

यह बात समझ से नितान्त परे हैं कि **'बौद्धानां सुगतो देवो'** के अर्थ को जो कि आपके अनुसार महाभ्रष्ट है, जब ३६ वें संस्करण में हूबहू लिया जा रहा था तो आपने उसे परिवर्तित करने का सुझाव क्यों नहीं दिया ? और दिया था तो उन्होंने माना क्यों नहीं ? और जब माना नही तो सम्पादकीय में आपको परामर्शदाता क्यों घोषित किया। और अगर कर भी दिया तो आपने विज्ञप्ति जारी कर यह बताया क्यों नहीं कि उन्होंने आपका परामर्श नहीं माना । **और यह भी कि क्या आपने उन्हें भी एक लाख रु. वाला आफर दिया था?**

मान्यवर! २००५ में आप उदयपुर विद्वत् संगोष्ठी में पधारे थे। तब क्या आपको ज्ञात नहीं था कि उपरोक्त सारे के सारे भ्रष्ट पाठ जो आपने इस लेखमाला में प्रस्तुत किए हैं, ३७ वें व ३८वें संस्करण में हैं ? अगर नहीं ज्ञात था तो आप सदृश विद्वान् को उसके पक्ष में परोपकारिणी सभा का प्रतिनिधि नहीं बनाना चाहिए था। और अगर ज्ञात था तो फिर आप असत्य(क्योंकि ये पाठ आपकी अपनी आत्मा में तो असत्य ज्ञात थे तथा हैं) का पक्ष क्यों ले रहे थे?

आपने अपने लेख में साहित्यिक चर्चा, समालोचना जैसे शब्दों का प्रयोग किया है इस सदाशयता के दर्शन लेखमाला के अन्त (वह भी शब्दों में) को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी नहीं होते। ये शब्द तो सार्थक तब होते, आपकी निष्पक्षता, निर्भीकता तब साबित होती

जब आप पाठकों के समक्ष अपना पूरा सच परोसते। आप लिखते कि 'ऋषि को लांछित करने वाले पाठ तथा सत्यार्थ प्रकाश में 'कलंकरूप' विद्यमान पाठ (?) उदयपुर संस्करण वालों के साथ ऋषि की उत्तराधिकारिणी सभा और आर्य जगत् के समस्त विद्वानों ने स्वीकार कर लिये।' तब आपने लेखन धर्म निभाया होता।

आपने लिखा कि विद्वत् समिति के कुछ सदस्य व न्यास के अधिकारी एक काल्पनिक भय का हौवा खड़ा कर संशोधन की गति में बाधक बनते रहे....।' तो जान लें कि हम ही नहीं, संशोधन की रेलगाड़ी को रोकने के प्रयास आर्य जगत् के सभी विद्वान् करते रहे हैं। पंडित भगवद्दत्त,आचार्य राजेन्द्र नाथ(आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट-फोटो प्रिन्ट संस्करण), पंडित युधिष्ठिर जी मीमांसक के संस्करणों की भूमिका तथा उनके संस्करण पढ़कर देख लीजिए,न्यास का तो तब अस्तित्व ही नहीं था।

इस लेखमाला से मानक संस्करण की लोकप्रियता को बाधित करने के घोषित उद्देश्य में आप सफल हों, न हों पर इस लेखमाला से आपश्री की संशोधन प्रियता और उसका स्वरूप अवश्य ज्ञात हो गया है। आपका यह रूप हमारे लिए तो सर्वथा नवीन है।

विद्वत् समिति ने सप्तम समुल्लास के अन्त में, असंगति को दूर करने हेतु, इंग्लैण्ड के लोग, कुलुम्बस' आदि पाठ बनाया है। आपने उसको भस्त्रिका प्राणायाम की संज्ञा दी है। आपने लिख दिया कि 'यूरोप के लोग' ले लेते। यह एक प्रसंग ही आपके संशोधक स्वरूप को स्पष्ट कर देता है। हम समझते हैं कि विद्वत् समिति के समक्ष संस्करण २ व हस्तलेख विद्यमान थे। सभी में जो पाठ था उससे ध्वनित हो रहा था कि कुलुम्बस इंग्लैण्ड का था। अतः संगति का प्रकार ढूढ़ा गया। विद्यमान शब्दों में ही यह कार्य किया गया। पर आपने तो एकदम 'यूरोप' को ही ला खड़ा किया(वैसे इस 'यूरोप का Idea स्वामी वेदानन्द जी का था) पहले परोपकारिणी सभा ने ३७ वें संस्करण में सर्वथा पृथक् पद्धति को जन्म दिया और अब आपकी उपरोक्त पद्धति क्या करेगी पता नहीं। पर आप करिये। जिसे आप सत्य मानते हैं, करिए। कौन रोक सकता है? फिर केवल न्यास का दायित्व तो नहीं है । सत्यार्थ प्रकाश अस्मिता संरक्षण का दायित्व पूरे आर्य जगत् का है। उन्हें इस ओर ध्यान देना चाहिए।

एक सच तो लेखनी फिसल जाने से सामने आ गया कि वह यह कि 'यदि किसी दिन किसी शोधार्थी ने सत्यार्थ प्रकाश का भाषात्मक विवेचन प्रस्तुत कर दिया तो विश्व समाज के समक्ष सत्यार्थ प्रकाश की बेचारगी और असमंजस की स्थिति बन जायेगी, तब आप बगलें झांकने के सिवाय कुछ न कर पायेंगे।'

यहां प्रथम बार डॉ.साहब ने मानक संस्करण का पीछा ही नहीं छोड़ दिया, वरन् सत्यार्थ प्रकाश के साथ किसी भी संस्करण का नाम जोड़ने में चूक गये। यह सामने आ गया कि वह स्वयं वस्तुतः सत्यार्थ प्रकाश को 'बेचारा' समझते हैं।

उन्होंने स्वयं लिखा कि 'कुछ लोग भय का भूत काल्पनिक रूप से खड़ा कर देते हैं।' हम भी कहें तो कह सकते हैं कि गत एक सौ पच्चीस वर्ष में तो ऐसे आक्षेप किसी विद्वान् ने सत्यार्थ प्रकाश पर आपके समान न लगाये। पंडित लेखराम जी से लेकर मानक संस्करण विद्वत् समिति तक के आर्य विद्वानों में भाषाविद भी थे, इतिहासविद् भी थे,वैयाकरण भी थे पर ३७वें संस्करण से पूर्व पाठान्तर अल्प ही थे। ३७ से ३६ वें संस्करण के सम्पादक ने भी वे सभी पाठ यथावत् स्वीकार कर लिए हैं जिन पर आपने आक्षेप किए हैं, यह अकाट्य तथ्य है।

वस्तुतः बात ये है कि आपसे पहले के आर्य विद्वानों ने अपनी सारी बुद्धि का प्रयोग सत्यार्थ प्रकाश के पाठों की रक्षा में किया था, न कि ऋषि के पाठों का उपहास उड़ाने में। (यद्यपि स्वल्प पाठान्तर प्रत्येक के स्तर पर हुए, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता) जैसे षष्ठ समुल्लास दण्ड राशि की भूल की ओर आपने ध्यान आकृष्ट किया । पंडित युधिष्ठिर जी मीमांसक तथा स्वामी वेदानन्द जी ने टिप्पणी अवश्य दी, पर पाठ भी न बदला। स्वामी वेदानन्द जी ने लिखा कि शायद स्वामी दयानन्द के पास मनुस्मृति का ऐसा संस्करण रहा होगा जिससे दण्ड राशि यही बनती हो। उनका मत विचारणीय क्यों नहीं है, प्रकार अनुकरणीय क्यों नहीं हैं । जबकि मूल हस्तलेख में भी यही दण्ड राशि दी है। प्राचीन ग्रन्थों के विभिन्न संस्करणों में कितने पाठभेद मिलते हैं यह आपसे ज्यादा कौन जानता है। महाभारत,रामायण सभी की यही स्थिति है। अतः प्राचीन विद्वान् इसे समझकर ऋषि पाठ को बदलने हेतु समुद्यत नहीं हुए या फिर कहें कि वे शोधार्थी नहीं थे, रिसर्च स्कालर नहीं थे। क्योंकि ऐसा कार्य रिसर्च स्कालर द्वारा ही किया जा सकता है।

एक शोधार्थी जी का स्मरण हो आया। वेद पर आस्था तो हिन्दू मात्र की है पर वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक तभी है जब उसे दयानन्द के दृष्टिकोण से देखा जाये। यही ऋषि का वैशिष्ट्य है। करपात्री जी ने जब वेदार्थ पारिजात लिखकर सारे आर्य जगत् को पशोपेश में डाल दिया था उक्त शोधार्थी सुस्त रहे या तब तक वे शोधार्थी बने नहीं थे। तब 'वेदार्थ कल्पद्रुम' जैसा अद्वितीय ग्रन्थ उन्हीं परम श्रद्धेय आचार्य विशुद्धानन्द जी की लेखनी से प्रसूत हुआ था, जो मानक संस्करण विद्वत् समिति के अध्यक्ष हैं। वे ऋषि मान्यताओं की रक्षा में प्रवृत्त हुए थे। परन्तु उक्त महानुभाव आर्यों के संगठन के मुखपत्र को सम्पादित करते करते अनायास शोधार्थी बन गए। ऋषि वाक्य 'सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए' को उद्धृत कर संकेतात्मक संदेश देने लगे कि ऋषि की वेद संबंधी मान्यताओं पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। शोध जिन्दा रहना चाहिए अन्यथा कूपमंडूक रह जाओगे। हमारी मति में वे प्रारम्भ में हल्के हल्के संकेत देकर आर्य जगत् को Test कर रहे थे कि उनके संकेतों का कितना विरोध होता है। जब हलचल नहीं मची तो ताल ठोककर मैदान में आ गये। हर आर्य विद्वान् को ललकारने लगे। देर से ही सही आर्य विद्वानों ने

समुचित उत्तर देने का प्रयास भी किया। पर वे भी प्रत्युत्तर अपनी पत्रिका में नहीं छापते थे। उन्हें पत्रिका से अलग कर दिया पर वे अभी भी दनदना रहे हैं। हां आर्य जगत् अब उनको सम्मान नहीं देता । ऐसा ही कोई शोधार्थी सत्यार्थ प्रकाश के संदर्भ में उठ खड़ा हो, ऐसा संकेत डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी ने दिया है। पर हम मानते हैं कि आर्य विद्वान् भी अपने कर्तव्य का अवश्य पालन करेंगे । जो पाठ हस्तलेख व संस्करण २ में उपस्थित हैं,किसी 'मक्कार संशोधक'के शिकार नहीं बने हैं उनके परिवर्तन हेतु यह बहाना नहीं बनाया जा सकता कि किसी संकलनकर्ता (काल्पनिक) ने ऐसा कर दिया आदि। सीधी सी बात है ऐसे पाठों की रक्षा करो, संगति ढूढ़ो जैसे स्वामी वेदानन्द जी ने 'तौतातितो वाले श्लोकों' के बारे में लिखा है, अथवा खुलकर कहो कि ऋषि यहां गलत हैं, हम उन्हें शुद्ध कर रहे हैं।

ऋषि पाठ को बदलने में क्या खतरा है यह पंडित युधिष्ठिर जी के द्वारा प्रस्तुत एक उदाहरण से समझ लेना चाहिए। तृतीय समुल्लास में वैशेषिक दर्शन के सूत्र प्राणापान... .....का मूल अर्थ संस्करण २ में इस प्रकार है(प्राण) भीतर के वायु को निकालना (अपान) बाहर से वायु को भीतर लेना..................। इसे संस्करण ३ में बदलकर इस प्रकार कर दिया। (प्राण) बाहर से वायु को भीतर लेना,(अपान) भीतर से वायु को निकालना । यह सूत्र सप्तम समुल्लास में भी आता है वहां भी ५ वें संस्करण में परिवर्तन कर दिया गया। आधुनिक व साधारण दृष्टि से यह परिवर्तन ठीक प्रतीत होता है। पर ऋषि व अन्य प्राचीन आचार्यों के सिद्धान्त से विपरीत है। ऐसा १४-१५ वें संस्करण तक चलता रहा, फिर भूल का सुधार किया गया। अस्तु।

परोपकारी दिसम्बर द्वितीय में माननीय डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी का जो लेख छपा है उससे लगता है कि फिलहाल संभवतः लेखमाला समाप्त है। अतः चारों लेखों के बारे में 'सारांश रूप' निम्न प्रकार है।

१. संपूर्ण लेखमाला में केवल मानक संस्करण से संबंध रखने वाला हिस्सा अत्यल्प है।

२. **उस अत्यल्प को छोड़ डॉ.साहब के सारे आक्षेप ऋषि दयानन्द के लेख, तथा गत १२५ वर्षों में प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश का सम्पादन करने वाले विभिन्न विद्वानों पर हैं,** यह हम निर्विवादरूप से सिद्ध कर चुके हैं। अतः अच्छा होता कि इन आक्षेपों में डॉ. साहब अपनी भाषा संयत रखते क्योंकि ये आक्षेप तथा भाषा अन्ततोगत्वा ऋषि के प्रति हैं। विद्वान् उनसे बड़े हैं या छोटे केवल उन तक बात सीमित होती तो भी भाषा व भाव इतने आपत्तिजनक न होते क्योंकि हरेक की अपनी लेखन व शैली होती है। **पर जहां तक ऋषिवर का प्रश्न है इस शैली से ऋषि भक्तों का मन दुखेगा।**

३. हम आलोचना को भी सकारात्मक रूप में लेने का प्रयास कर रहे हैं। अतः गोलमाल नहीं, पाठकों को स्पष्टतः बिन्दुवार इस सारांश में यह बताने का प्रयास

करेंगे कि पूरी लेखमाला में कौन से भाग पर 'मानक संस्करण विद्वत् समिति का दायित्व बनता है और इसीलिये हम उस पर क्या कार्यवाही करने जा रहे हैं।

४. जो भी भाग ऋषिवर व इस कारण सभी आर्यों से संबंध रखता है, उसको ऋषि को सम्बोधित करते हुए प्रस्तुत कर रहे हैं जिसमें भाषा तथा भाव की शालीनता का विशेष ध्यान रख रहे हैं।

५. पाठक यह अवश्य सदैव ध्यान में रखें कि उक्त लेखमाला में अकारण असत्य आरोप लगाकर 'मानक संस्करण' को बदनाम करने का प्रयास किया गया है। जो अत्यन्त निन्दनीय है।

६. आर्यजन हम निश्चित तौर पर स्वीकार करते हैं कि इस प्रकार के विषय पर सार्वजनिक चर्चा पत्र पत्रिकाओं में करना निश्चित रूप से हानिकारक है। अगर आदरणीय दैवकरणि जी और सुरेन्द्र जी पत्र द्वारा यह सब सीधे हमें लिखते तो उसी प्रकार प्रत्युत्तर दिया जाता व आपस में मिलकर अथवा पत्रों द्वारा समाधान कर लिया जाता। यह भी कि अगर मानक संस्करण वालों ने ऐसे पाठ पहली बार स्वीकार कर लिए हों जो सिद्धान्त विरोधी हैं तो निश्चित तौर पर क्षमायाचना सहित भूल स्वीकार कर ली होती। परन्तु ऐसा कुछ भी तो इस लेखमाला में नहीं है। डॉ. साहब हमें सत्य और तथ्य स्वीकारने हेतु लिख रहे हैं। इनकी बात सिर माथे। इसीलिए सत्य व तथ्य जनता के समक्ष रखने को मजबूर हुए हैं। पूर्व की भांति तालिका इस प्रत्युत्तर के साथ दी जा रही है। ये प्रत्युत्तर मानक संस्करण समिति तथा न्यास की विवशता है, बस यह समझ लें । एक चिन्तक विद्वान् ने उक्त लेखमाला को पढ़कर संदेश दिया कि यह न्यास द्वारा क्या किया गया? संयोग से वे उदयपुर पधारे। जब ये प्रत्युत्तर उन्होंने पढ़े तो वे अश्चर्यचकित रह गए कि ऐसा असत्य लेखन आखिर डॉ. साहब व परोपकारिणी सभा द्वारा क्यों किया गया? जब समयाभाव के कारण तथा एक पक्ष ही सामने होने पर, विद्वानों की यह स्थिति है, तो सामान्यजनों की तो क्या होगी ? विद्वानों के अथक परिश्रम से तैयार अनेक विशेषताओं से युक्त इस संस्करण को इस प्रकार बदनाम होते कैसे देखा जा सकता है वह भी अकारण। अतः ये प्रत्युत्तर हमारी विवशता हैं। आगे भी अगर आक्षेप युक्तलेख प्रकाशित किए गये तो उनका उत्तर देना 'विद्वत् समिति'की विवशता होगी। हां सकारात्मक सुझावों का आभार सहित स्वागत किया जायेगा। जैसाकि मान्य डॉ.उप्रेती जी तथा मान्य डॉ.महावीर जी मीमांसक द्वारा एक-एक स्थलों की ओर हमारा ध्यान पत्र के माध्यम से आकर्षित किया है। ऐसे सभी विद्वानों का स्वागत है।

नीचे तालिका प्रस्तुत है जिसमें डॉ.सुरेन्द्र जी द्वारा प्रस्तुत पाठ की सत्यार्थ प्रकाश के विभिन्न संस्करणों के संबंध में स्थिति को दर्शाया है।

उद्धरण सुरेन्द्र जी	मानक संस्करण का पाठ	संस्करण २ का पाठ	रफ हस्त का पाठ	प्रैस प्रति	३६ वां संस्करण	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट	युधिष्ठिर जी मीमांसक	वेदानन्द जी संस्करण	भगवददत्त जी संस्करण
दुष्ट कर्म का लोप	दुष्ट कर्म करने वालों को प्रयत्न से दण्ड (३२५)	दुष्ट कर्म और दुष्ट कर्म करने वालों को प्रयत्न से दण्ड(३२५)	दुष्ट कर्म और दुष्ट कर्म करने वालों को प्रयत्न से दण्ड (४६५)	दुष्ट कर्म और दुष्ट कर्म करने वालों को प्रयत्न से दण्ड(२३२)	दुष्ट कर्म <u>का प्रलय</u> और दुष्ट कर्म करने वालों को प्रयत्न से दण्ड(३६१)	दुष्ट कर्म और दुष्ट कर्म करने वालों को प्रयत्न से दण्ड(२६७)	दुष्ट कर्म करने वालों को प्रयत्न से दण्ड (४६२) टिप्पणी है।	दुष्ट कर्म और दुष्ट कर्म करने वालों को प्रयत्न से दण्ड(२८८)	दुष्ट कर्म और दुष्ट कर्म करने वालों को प्रयत्न से दण्ड(३४२)

नोटः- संस्करण २, मूल व हस्त. का पाठ है 'दुष्टकर्म और दुष्टकर्म करने वालों को प्रयत्न से दण्ड....।' यहां दुष्ट कर्म का होना असंगत प्रतीत होता है। दुष्ट कर्म करने वालों को दण्ड दिया जा सकता है, पर दुष्ट कर्म को कैसे दण्ड दिया जावेगा? इसकी संगति विद्वत् समिति ने 'दुष्ट कर्म' का लोप करके की है। (यहां चिह्न रह गया है शुद्धि पत्र में लगा दिया है।) संस्करण ३६ में इसे दुष्ट कर्म का प्रलय किया है अर्थात् का प्रलय और स्वविवेकान्तर्गत बढ़ाया है पर [ ] कोष्ठक नहीं दिया है।

उद्धरण सुरेन्द्र जी	मानक संस्करण का पाठ	संस्करण २ का पाठ	रफ हस्त का पाठ	प्रैस प्रति	३६ वां संस्करण	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट	युधिष्ठिर जी मीमांसक	वेदानन्द जी संस्करण	भगवददत्त जी संस्करण
चतस्रोवस्था	इस शरीर की चार अवस्था हैं। एक	इस शरीर की चार अवस्था	इस शरीर की चार अवस्था हैं। एक वृद्धि जो सोलह में	इस शरीर की चार अवस्था	इस शरीर की चार अवस्थाएं हैं । एक वृद्धि जो जन्म से	इस शरीर की चार अवस्था हैं। एक वृद्धि जो सोलह में	इस शरीर की चार अवस्था हैं। एक वृद्धि जो सोलह में	इस शरीर की चार अवस्था हैं। एक वृद्धि जो सोलह में	इस शरीर की चार अवस्था हैं। एक वृद्धि जो सोलह में वर्ष से

	वृद्धि जो सोलह मे वर्ष से लेके २५ वें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की बढ़ती होती है दूसरा यौवन जो २५ वें वर्ष के अंत और २६ वर्ष के आदि में युवावस्था का आरम्भ होता है तीसरी सम्पूर्णता जो २५ वें वर्ष से	हैं। एक वृद्धि जो सोलह मे वर्ष से लेके २५ वें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की बढ़ती होती है दूसरा यौवन जो २५ वें वर्ष के अंत और २६ वर्ष के आदि में युवावस्था का आरम्भ	वर्ष से लेके २५ वें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की बढ़ती होती है दूसरा यौवन जो २५ वें वर्ष के अंत और २६ वर्ष के आदि में युवावस्था का आरम्भ होता है तीसरी सम्पूर्णता जो २५ वें वर्ष से लेके चालीसवें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की पुष्टि होती है चौथी किंचितपरिहाणि जब सब.... (७०) नोटः- 'सब धातुओं की' एव	हैं। एक वृद्धि जो सोलह में वर्ष से लेके २५ वें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की बढ़ती होती है दूसरा यौवन जो २५ वें वर्ष के अंत और २६ वर्ष के आदि में युवावस्था का आरम्भ	लेकर १६ वें वर्ष पर्यन्त,दूसरा यौवन १६ में वर्ष से लेके २५ वें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की बढ़ती होती है। तीसरी सम्पूर्णता जो पच्चीसवें वर्ष से लेके चालीसवें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की पुष्टि होती है चौथी किंचितपरिहाणि ....(४६) इस परिवर्तित पाठ पर कोई आधार चिह्न न होने से यही समझा	वर्ष से लेके २५ वें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की बढ़ती होती है दूसरा यौवन जो २५ वें वर्ष के अंत और २६ वर्ष के आदि में युवावस्था का आरम्भ होता है तीसरी सम्पूर्णता जो २५ वें वर्ष से लेके चालीसवें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की पुष्टि होती है चौथी किंचितपरिहाणि जब सब.... (४७)	वर्ष से लेके २५ वें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की बढ़ती होती है दूसरा यौवन जो २५ वें वर्ष के अंत और २६ वर्ष के आदि में युवावस्था का आरम्भ होता है तीसरी सम्पूर्णता जो २५ वें वर्ष से लेके चालीसवें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की पुष्टि होती है चौथी किंचितपरिहाणि जब सब.... (७०)	वर्ष से लेके २५ वें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की बढ़ती होती है दूसरा यौवन जो २५ वें वर्ष के अंत और २६ वर्ष के आदि में युवावस्था का आरम्भ होता है तीसरी सम्पूर्णता जो २५ वें वर्ष से लेके चालीसवें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की पुष्टि होती है चौथी किंचितपरिहाणि जब सब.... (४७-४८)	लेके २५ वें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की बढ़ती होती है दूसरा यौवन जो २५ वें वर्ष के अंत और २६ वर्ष के आदि में युवावस्था का आरम्भ होता है तीसरी सम्पूर्णता जो २५ वें वर्ष से लेके चालीसवें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की पुष्टि होती है चौथी किंचितपरिहाणि जब सब.... (४१)

	लेके चालीसवें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की पुष्टि होती है चौथी किंचितपरि हाणि जब सब... (४६)	होता है तीसरी सम्पूर्णता जो २५ वें वर्ष से लेके चालीसवें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की पुष्टि होती है चौथी किंचितप रिहाणि जब सब.... (४६)	किंचितपरिहाणि में किंच ऋषि के हाथ से संशोधित है।	होता है तीसरी सम्पूर्णता जो २५ वें वर्ष से लेके चालीसवें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की पुष्टि होती है चौथी किंचितपि रहाणि जब सब.... (३३)	जावेगा कि यह ऋषि-पाठ ही है। वैसे भी आपने ऋषि के एक-एक शब्द के संग्रह की घोषणा कर ही रखी है। वस्तुस्थिति यह है कि पाठ दोनों हस्तलेखों सहित संस्करण २ में भी नही है।				
उद्धरण सुरेन्द्र जी	मानक संस्करण का पाठ	संस्करण २ का पाठ	रफ हस्त का पाठ	प्रेस प्रति	३६ वां संस्करण	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट	युधिष्ठिर जी मीमांसक	वेदानन्द जी संस्करण	भगवददत्त जी संस्करण
पढ़ने की आयु	मूल प्रति,प्रेस	मूल प्रति,	मूल प्रति,प्रेस प्रति, संस्करण	मूल प्रति,प्रेस	मूल प्रति,प्रेस प्रति, संस्करण	मूल प्रति,प्रेस प्रति, संस्करण	मूल प्रति,प्रेस प्रति, संस्करण	मूल प्रति,प्रेस प्रति, संस्करण	मूल प्रति,प्रेस प्रति, संस्करण

	प्रति, संस्करण २ तथा मानक संस्करण का सम्पूर्ण पाठ एक जैसा है (७०)	प्रेस प्रति, संस्करण २ तथा मानक संस्करण का सम्पूर्ण पाठ एक जैसा है(७०)	२ तथा मानक संस्करण का सम्पूर्ण पाठ एक जैसा है (६७-६८)	प्रति, संस्करण २ तथा मानक संस्करण का सम्पूर्ण पाठ एक जैसा है (४८)	२ जैसा पाठ है (७७)	२ जैसा पाठ है (६४) अन्त में योग तीस वा चौंतीस वर्ष है	२ जैसा पाठ है (१०३) टिप्पणी दी है	२ जैसा पाठ है (६४)	२ जैसा पाठ है (४१)

पाठक सर्वप्रथम तो यह नोट करें कि परोपकारिणी सभा के ३६ वें संस्करण के सम्पादक अपने परामर्शदाता का ही परामर्श नहीं मानते हैं। तब डॉ. सुरेन्द्र जी 'दूयमान;' नहीं होते,पर यही पाठ मानक संस्करण में छप जाता है तो 'दूयमान' हो जाते हैं। यह दोहरी मानसिकता अथवा प्रतिक्रिया क्यों ? दूसरे युधिष्ठिर जी मीमांसक (मूल ग्रन्थ में नहीं) सम्पूर्ण अध्ययनकाल तीस वा इकतीस वर्ष लिखते हैं। आर्ष में यह अवधि मूल ग्रन्थ में तीस वा चौतीस लिखी है। ऊपर संशोधन न होने से योग बराबर नहीं बैठता । यहां कहा जा सकता है आर्ष को छोड़ सभी संस्करण ने संस्करण २ की संख्या ही लिखी है।

उद्धरण सुरेन्द्र जी	मानक संस्करण का पाठ	संस्करण २ का पाठ	रफ हस्त का पाठ	प्रेस प्रति	३६ वां संस्करण	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट	युधिष्ठिर जी मीमांसक	वेदानन्द जी संस्करण	भगवददत्त जी संस्करण
तैतातितों के श्लोक पूर्व पक्ष में	.....सर्वत्र पूर्व पक्ष में ही है। (४१३-४१५)	.....सर्वत्र पूर्व पक्ष में ही है। (४१३-४१५)	..... सर्वत्र पूर्व पक्ष में ही है(२८४)	.....सर्वत्र पूर्व पक्ष में ही है। (५७५)	..... सर्वत्र पूर्व पक्ष में ही है। (५०३)	.....सर्वत्र पूर्व पक्ष में ही है। (३३८)	.....सर्वत्र पूर्व पक्ष में ही है। (६३८)	.....सर्वत्र पूर्व पक्ष में ही है। (३८५)	तैतातिकों के श्लोक पूर्व पक्ष में .....सर्वत्र पूर्व पक्ष में ही है। (४४४)

ऋषि के हस्तलेखों सहित अद्यतन सभी संस्करणों में ' तैतातितों ' के मन्तव्य वाले श्लोक 'पूर्वपक्ष' में ही उद्धृत हैं। स्वामी विद्यानन्द जी का कथन है कि 'यहाँ तैतातितों के श्लोक सर्वज्ञ ईश्वर के खण्डन में हैं, न कि सर्वज्ञ जैन तीर्थकरों के, इसलिये इन पाँचों ही का ऋषि द्वारा खण्डन उचित ही है। हम पुनः निवेदन

करेंगे कि सत्यार्थ-प्रकाश के किसी भी पाठ पर विचार करते हुए, १८८२-८३ के काल को स्मृति में रखना होगा। समय के साथ मान्यताऐं भी परिवर्तित हुयी हैं। विद्वानों के अनुसार पहले बौद्ध आत्मा को अनादि मानते थे, अब नहीं। कभी बुद्ध को सर्वज्ञ माना जाता था कभी नही। अतः सत्यार्थ प्रकाश को 'आदिम अवस्था' से २१ वीं शताब्दी में लाने हेतु हड़बड़ी व पूर्वाग्रह से युक्त हो कार्य करना उपयुक्त नहीं, ऐसी हमारी विनम्र सम्मति है।

उद्धरण सुरेन्द्र जी	मानक संस्करण का पाठ	संस्करण २ का पाठ	रफ हस्त का पाठ	प्रैस प्रति	३६ वां संस्करण	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट	युधिष्ठिर जी मीमांसक	वेदानन्द जी संस्करण	भगवददत्त जी संस्करण
दण्ड व्यवस्था में गणितीय भूल	मूल हस्त का पाठ (१७१-७२)	मूल हस्त का पाठ (१७१-७२)	संस्करण २ में जो पाठ पाया जाता है वही। ऋषि ने इसे अनेकत्र संशोधित भी किया है। (२३६)	मूल हस्तलेख जैसा ही पाठ है। (१२२)	संस्करण २ जैसा पाठ है। (१६५)	संस्करण २ जैसा पाठ है। अज्ञानता से झूठी साक्षी हेतु ६ रु. के स्थान पर ३) रु(१४०)	संस्करण २ जैसा पाठ है। (२४६)	संस्करण २ जैसा पाठ है। (१४६)	संस्करण २ जैसा पाठ है। (१६८)

नोटः- यहां ध्यातव्य है कि परोपकारी ३४ वें संस्करण में डॉ.साहब के अनुसार, दण्ड संशोधित कर दिया है। परन्तु श्री विरजानन्द जी ने ३६ वें में पुनः संस्करण २ का पाठ लिया है। डॉ. साहब मानक संस्करण वालों की खबर लेना छोड़ परोपकारिणी सभा से पूछने का साहस करें।

उद्धरण सुरेन्द्र जी	मानक संस्करण का पाठ	संस्करण २ का पाठ	रफ हस्त का पाठ	प्रेस प्रति	३६ वां संस्करण	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट	युधिष्ठिर जी मीमांसक	वेदानन्द जी संस्करण	भगवददत्त जी संस्करण
दक्ष प्रजापति	दश प्रजापति	दश प्रजापति	दक्ष प्रजापति (४७२)	दश प्रजापति (२३५)	दक्ष प्रजापति (३६६-६७)	दक्ष प्रजापति (२७१)	दश प्रजापति (४६६)	दश प्रजापति (२६२)	दक्ष प्रजापति (३४७)

यहां दक्ष प्रजापति पाठ ठीक लगता है। मूल हस्तलेख का आधार भी है। विद्वत् समिति के विचारार्थ

उद्धरण सुरेन्द्र जी	मानक संस्करण का पाठ	संस्करण २ का पाठ	रफ हस्त का पाठ	प्रेस प्रति	३६ वां संस्करण	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट	युधिष्ठिर जी मीमांसक	वेदानन्द जी संस्करण	भगवददत्त जी संस्करण
गीत गोविन्द के रचयिता जयदेव व बोबदेव क्या भाई थे	यह भागवत बोबदेव का बनाया है,जिसके भाई जयदेव ने गीत गोविन्द बनाया है। (३३५)	यह भाग वोबदेव का वनाया है,जिसके भाई जयदेव ने गीत गोविन्द बनाया है। (३३५)	यह भागवत वोबदेव का बनाया है,जिसके भाई जयदेव ने गीत गोविन्द बनाया	यह भागवत बोवदेव का बनाया है,जिसके भाई जयदेव ने गीत गोविन्द वनाया है। (२४०)	यह भागवत बोबदेव का बनाया है,जिसके भाई जयदेव ने गीत गोविन्द बनाया है। (४०३)	यह भागवत बोवदेव का बनाया है,जिसके भाई जयदेव ने गीत गोविन्द बनाया है। (२७५)	यह भागवत वोबदेव का वनाया है,जिसके भाई जयदेव ने गीत गोविन्द बनाया है। (५०७)	यह भागवत बोबदेव का वनाया है,जिसके भाई जयदेव ने गीत गोविन्द बनाया है। (३००)	यह भागवत बोबदेव का बनाया है,जिसके भाई जयदेव ने गीत गोविन्द बनाया है। (३५२)

			है। (४७८)						
उद्धरण सुरेन्द्र जी	मानक संस्करण का पाठ	संस्करण २ का पाठ	रफ हस्त का पाठ	प्रेस प्रति	३६ वां संस्करण	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट	युधिष्ठिर जी मीमांसकं	वेदानन्द जी संस्करण	भगवददत्त जी संस्करण
पौराणिकों की मुक्ति के प्रकार	चार (२४४-४५)	मूल व हस्तलेख जैसा पाठ (२४४-४५)	चार (३३८)	चार (१७३)	संस्करण २ का पाठ (२८६)	संस्करण २ का पाठ (२०३)	संस्करण २ का पाठ टिप्पणी दी है। (३६४)	संस्करण २ का पाठ टिप्पणी दी है। (२१२)	संस्करण २ का पाठ टिप्पणी दी है। (२५२)

यहां स्वामी वेदानन्द जी की टिप्पणी [illegible]वत हो सकती है।

उद्धरण सुरेन्द्र जी	मानक संस्करण का पाठ	संस्करण २ का पाठ	रफ हस्त का पाठ	प्रेस प्रति	३६ वां संस्करण	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट	युधिष्ठिर जी मीमांसक	वेदानन्द जी संस्करण	भगवददत्त जी संस्करण
व्यास जी का निवास	एक समय व्यास जी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिसको इस समय	एक समय व्यास जी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिसको इस समय अमेरिका	एक समय व्यास जी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिसको इस समय	एक समय व्यास जी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिसको इस समय अमेरिका कहते हैं... और जिनको हूण	एक समय व्यास जी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिसको इस समय अमेरिका	एक समय व्यास जी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिसको इस समय अमेरिका	एक समय व्यास जी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिसको इस समय अमेरिका	एक समय व्यास जी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिसको इस समय अमेरिका कहते हैं... और जिनको हूण यहूदी भी कहते	एक समय व्यास जी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिसको इस समय अमेरिका कहते हैं... और जिनको हूण यहूदी भी कहते हैं उनको देखकर (२७१)

	अमेरिका कहते हैं... और जिनको हूण यहूदी भी कहते हैं उनको देखकर (३६२)	कहते हैं... और जिनको हूण यहूदी भी कहते हैं उनको देखकर (३६२)	अमेरिका कहते हैं... और जिनको हूण भी कहते हैं उनको देखकर (३६२)	यहूदी भी कहते हैं उनको देखकर यहूदी ऋषि ने स्वहस्त से लिखा है(१८५)	कहते हैं... और जिनको हूण यहूदी भी कहते हैं उनको देखकर (३११)	कहते हैं... और जिनको हूण यहूदी भी कहते हैं उनको देखकर (२१६)	कहते हैं... और जिनको हूण यहूदी भी कहते हैं उनको देखकर (३८८-८६)	हैं उनको देखकर (२२६)	

नोटः- उपरोक्त प्रकरण में मान्य डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी पूछते हैं विद्वत् समिति ने यह नहीं स्पष्ट किया कि यह कहां लिखा है कि व्यास का निवास अमेरिका में था? और यह भी स्पष्ट नहीं किया कि किस स्थान पर था और क्या वास्तव में था। बड़ा आश्चर्य है कि उपरोक्त प्रकरण में हस्तलेखों सहित सभी संस्करणों में यह पाठ उपलब्ध है फिर भी डॉ.साहब पूछ रहे हैं यह कहां लिखा है। उत्तर इसके अतिरिक्त क्या होगा कि हस्तलेखों में लिखा है द्वितीय संस्करण में लिखा है,सत्यार्थ प्रकाश के सभी संस्करणों में लिखा है,आपके मित्र विरजानन्द जी द्वारा सम्पादित संस्करण में लिखा है। पाठकगण! ध्यान दें मूल हस्त में उपरोक्त वाक्यान्तर्गत शुक ऋषि द्वारा तथा प्रेस में निवास अपने हाथ से लिखा है। डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी यह भी ध्यान दें कि प्रेस हस्तलेख में यहूदी महर्षि ने अपने हाथ से लिखा है।

उद्धरण सुरेन्द्र जी	मानक संस्करण का पाठ	संस्करण २ का पाठ	रफ हस्त का पाठ	प्रेस प्रति	३६ वां संस्करण	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट	युधिष्ठिर जी मीमांसक	वेदानन्द जी संस्करण	भगवददत्त जी संस्करण
बौद्धानां सुगतो देवो	संस्करण २ का पाठ (४०७)	बौद्धों का सुगतदेव बुद्ध भगवान पूजनीय देव	बौद्धों का सुगतदेव बुद्ध भगवान	बौद्धों का सुगतदेव बुद्ध भगवान पूजनीय देव	बौद्धों का सुगतदेव बुद्ध भगवान पूजनीय देव	बौद्धों का सुगतदेव बुद्ध भगवान पूजनीय देव	बौद्धों का सुगतदेव बुद्ध भगवान पूजनीय देव	बौद्धों का सुगतदेव बुद्ध भगवान पूजनीय देव	बौद्धों का सुगतदेव बुद्ध भगवान पूजनीय देव और जगत् क्षणभंगुर आर्य पुरुष

		और जगत् क्षणभंगुर आर्य पुरुष और आयूर्या स्त्री तथा तत्त्वों की आख्या संज्ञादि प्रसिद्धि ये चार तत्त्व बौद्धों के मन्तव्य पदार्थ हैं।(४०७)	पूजनीय देव और जगत् क्षणभंगुर आर्य पुरुष और आयूर्या स्त्री तथा तत्त्वों की आख्या संज्ञादि प्रसिद्धि ये चार तत्त्व बौद्धों के मन्तव्य पदार्थ हैं।(५७३)	और जगत् क्षणभंगुर आर्य पुरुष और आयूर्या स्त्री तथा तत्त्वों की आख्या संज्ञादि प्रसिद्धि ये चार तत्त्व बौद्धों के मन्तव्य पदार्थ है। (२८०)	और जगत् क्षणभंगुर आर्य पुरुष और आयूर्या स्त्री तथा तत्त्वों की आख्या संज्ञादि प्रसिद्धि ये चार तत्त्व बौद्धों के मन्तव्य पदार्थ है। (४६५)	और जगत् क्षणभंगुर आर्य पुरुष और आयूर्या स्त्री तथा तत्त्वों की आख्या संज्ञादि प्रसिद्धि ये चार तत्त्व बौद्धों के मन्तव्य पदार्थ है।(३३४)	और जगत् क्षणभंगुर आर्य पुरुष और आयूर्या स्त्री तथा तत्त्वों की आख्या संज्ञादि प्रसिद्धि ये चार तत्त्व बौद्धों के मन्तव्य पदार्थ है।(६२६)	और जगत् क्षणभंगुर आर्य सत्य संज्ञा से प्रसिद्ध चार तत्त्व ये चार तत्त्व बौद्धों में मन्तव्य पदार्थ हैं। (३७८)	और आयूर्या स्त्री तथा तत्त्वों की आख्या संज्ञादि प्रसिद्धि ये चार तत्त्व बौद्धों के मन्तव्य पदार्थ है।(४३८)

कोई भी निष्पक्ष चिन्तक, विचारक, आर्य यह स्वीकार करने में तनिक सी देर नहीं लगावेगा कि मानक संस्करण विद्वत् समिति का दायित्व केवल वहीं तक है जहां तक संस्करण २ के पाठों को उसने परिवर्तित किया है। न्याय यही है कि अगर स्पष्टीकरण मांगना है, आक्षेप करना है तो,जहां तक मानक संस्करण विद्वत् समिति का प्रश्न है,वह केवल उक्त परिवर्तनों के संबंध में किया जाना चाहिये।

परोपकारी पत्र में श्री विरजानन्द जी का एक लेख तथा डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी के तीन लेख छपे। उनमें से अत्यन्त सीमित भाग का मानक संस्करण से संबंध है। बाकी की सारी सामग्री का संबंध महर्षि दयानन्द से है। इन्हें हम पृथक्-पृथक् प्रस्तुत करेंगे।

(अ) <u>मानक संस्करण से संबंधित,जिन्हें लेखमाला में प्रस्तुत किया गया है।</u>

१. वे स्थल जहां आधार के चिह्न लगाने में चूक हुई हैः-

अ. तुम्हारा क्या मत है (७२/१३)

ब. मृत स्त्रीक पुरुष(११५/२४)(११८/१४)

स. गृहस्थाश्रम तथा वानप्रस्थ आश्रम है (१३३/२)

द. राजा प्रतिदिन.....खजाने को देखा करे (१७६/१०-११) नोट- यहां श्लोक संस्करण २ में है पर भाषार्थ नहीं था। वह दे दिया है।

य. अहं दां गृणते .... (१७८/१४-१५) नोट- इस वेद मंत्र का भाषार्थ संस्करण २ में है मंत्र छूट गया था सो यथा स्थान रख दिया है।

र. और इससे भिन्न इन्द्रिय आदि पदार्थों का अभाव हो जाता है(२३७/१६-२०)

ल. मुक्ति का नाम है(२४१/१७)

व. वाङ्.मनसी(४६/२३)

त. दर्पण आकार वाले हैं(२३४/५)

थ. अस्थानान्तर(१३५/३)

ये केवल दश स्थान इस लेखमाला द्वारा बताए गए हैं। कृपया धन्यवाद स्वीकार करें। इन पर उचित चिह्न लगा दिए जावेंगे।

ब पाठ जिनको पुनर्विचार हेतु विद्वत् समिति के समक्ष रखा जायेगाः-

१. 'जो इन बातों को अर्थात् जीव ईश्वर की एकता,जगत् मिथ्या आदि व्यवहार,सच्चा <u>नहीं</u> मानते थे, तो उनकी बात सच्ची नहीं हो सकती। (यहां रेखांकित 'नहीं' के स्थान पर 'ही' लेना।)

२. न स्वभावसिद्धिरापेक्षिकत्वात् (२१५)(इसका लोप)

३. दश प्रजापति (पृष्ठ ३३०) यहां हमने मूल हस्तलेख को देखा। वहां दक्ष प्रजापति है। युक्त जान पड़ता है। आधार भी है। विद्वत् समिति के समक्ष यह पाठ रखा जावेगा।

स अन्य

१. **चलवे, सब विद्र्या को हमने रगड़,गांजे भांग में घोट,एक दम उड़ा दी...** (खाखी प्रकरण)

यहां हम अत्यन्त विनम्रतापूर्वक यह कहना चाहते हैं,हमें बड़ा आश्चर्य है कि हमें सत्य और तथ्य लिखने की सलाह देने वाले हमारे अग्रज डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी क्या वस्तुतः यह मानते हैं कि उनकी लेखनी से प्रसूत असत्य भी ध्रुव सत्य हो जायेगा। असत्य कथन की हद को देखिये। निश्चित रूप से उक्त पाठ मानक संस्करण में है। परन्तु उसके आगे * चिह्न बना हुआ है। इसका तात्पर्य यह है कि पाठ मूल हस्तलेख से लिया गया है। ठीक है सारिणीबद्ध होने से रह गया परन्तु * चिह्न को देख आपका यह कर्तव्य नहीं बनता था कि इस पाठ का स्रोत आप मूल हस्तलेख में देखते ।

तथ्यों को तोड़ मरोड़ने की हद देखिये- डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी ने अनेक स्थलों पर ऋषि-प्रोक्त मूल हस्तलेख को कहा है। ठीक भी है सर्वप्रथम ऋषि ने जो बोला वह लेखक द्वारा लिखा गया और उसे मूल हस्तलेख कह दिया गया। वस्तुतः यह रफ प्रति ही है। पाठकगण ! आपको **आश्चर्य तब होगा, जब आपको पता चलेगा कि प्रैस हस्तलेख व संस्करण २ के पाठ को तो मान्य विद्वान् 'ऋषि प्रोक्त' बता रहे हैं तथा मूल हस्तलेख के पाठ को उदयपुर संस्करण का स्वविवेकान्तर्गत परिवर्तित** पाठ। वस्तुस्थिति यह है कि इस प्रकरण में पंडित कहता है कि साधुजी (अर्थात् खाखी) विद्र्या की बात बहुत कठिन,बिना पढ़े नहीं आती। खाखी द्वारा इसका उत्तर जो संस्करण २ में उपस्थित है वह है 'चलबे,सब विद्वान् को हमने.।' विद्वत् समिति ने जब मूल पाठ देखा होगा तो वहां उत्तर में **चलवे सब विद्र्या,** पाकर उचित समझ उसे ग्रहण कर मूल हस्तलेख का प्रतीक * चिह्न लगा दिया। (देखे मूल हस्तलेख ५०४, प्रेस हस्तलेख (२३५))

यह जुदा बात है कि विद्वत् समिति का यह स्वीकरण ठीक है अथवा नहीं,परन्तु श्री सुरेन्द्र जी का सच आपके सामने है जो इस लेखमाला के पीछे की सारी कहानी तथा उस अहंकार को प्रदर्शित करता है जिसके

चलते आचार्य विशुद्धानन्द जी,डॉ.रघुवीर जी वेदालंकार सरीखे विद्वानों को अपमानित करने का प्रयास किया गया है।

२. 'दुष्टकर्म और' हटा दिया है।

दुष्ट कर्म को दण्डित नहीं किया जा सकता अतः पाठ अयुक्त था। हस्तलेखों में आधार नहीं मिला अतः विद्वत् समिति द्वारा हटाया जाकर युक्त पाठ बनाया। यहां चिह्न लगने से रह गया। ३६ वें संस्करण में 'दुष्ट कर्मों का प्रलय' है यहां भी 'का प्रलय' का आधार नहीं बताया गया ।

३. 'स्त्र्यादि' हटा शरीरादि किया है।

स्पष्ट चिह्न है व सारिणी में स्पष्ट टिप्पणी है कि इसका आधार महर्षिकृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका है। परन्तु डॉ.साहब समालोचना नहीं, आलोचना में मग्न हैं। अतः पाठक को क्यों बतायेंगे

४. (पृ. ३४४) का एक अपवचन हटा दिया है। (पृष्ठ ३५३) रख लिया ।

डॉ. साहब यहां विद्वत् समिति ने कुछ नहीं किया वरन् संस्करण २ का पाठ यथावत् रखा है। आप अपने परामर्श से तैयार ३६ संस्करण पृष्ठ ४२६ से प्रारम्भ इस प्रकरण पर नजर डालने की कृपा करें फिर दूसरे को पत्थर मारें या न मारें यह निर्णय करें तो उत्तम होगा।

५. इग्लैण्ड के कुलुम्बस आदि....'

विद्वत् समिति का मानना है कि यह पाठ उचित है।

६. 'अग्नि' पद के स्थान पर 'अग्न'

इसके संदर्भ में डॉ.रघुवीर जी ने लिख दिया है कि यह संशोधन उचित है।

द दृष्टि दोष से छप गए अशुद्ध पाठ

पृष्ठ २५/३ प्रीणाति-

पृणाति(शुद्ध)

पाठकगण! चार लेखों की पूरी लेखमाला में अगर आक्षेपों, व्यंग्यों को छोड़ दिया जाय तो मानक संस्करण उदयपुर से संबंधित कुल इतने ही बिन्दु हैं, जिन्हें पूर्ण ईमानदारी व पारदर्शिता के साथ हमने न सिर्फ इस सारांश में प्रस्तुत किया है वरन् इस संदर्भों में क्या कार्यवाही करेंगे यह भी बता दिया है। इनकी ओर ध्यान दिलाने हेतु श्री विरजानन्द जी, डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी का पुनः आभार।

बाकी सारे आक्षेप,व्यंग्य ऋषि के प्रति हैं,सत्यार्थ प्रकाश के सभी पूर्व व वर्तमान सम्पादकों के प्रति हैं। इनका उत्तर देने का उत्तरदायित्व हमारा नहीं बनता फिर भी आशा करता हूं कि सभी ऋषिभक्त आर्य विद्वान् जिन्हें गुटबन्दी से ज्यादा 'सत्य' प्रिय है

वे अपनी कलम को चला ऋषि-पाठों की रक्षा में सन्नद्ध होंगे, जैसा पूर्व आर्य विद्वानों ने किया था, शेष आपकी इच्छा।

पूरी लेखमाला के अन्य आक्षेपों को,ऋषि से संम्बोधित हो,सारांश में प्रस्तुत कर रहे हैं।

(ब) ऋषि के पाठों पर आक्षेप-

१. त्रयस्ति

२. आचार्य उपनयमानो

३. अतिथि गृहानुपगच्छेत्

ऋषिवर ! मंत्र संहिता के अनुसार ये मंत्र अशुद्ध हैं,यह ध्यान तो प्रसिद्ध शोध विद्वान् डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी ने दिला दिया। क्या गजब है १२५ वर्ष की अवधि में कितने ही महामान्य विद्वान् आर्य जगत् में पैदा हुए हैं, श्री विरजानन्द जी सहित किसी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया।

४. 'इसी ध्यान योग से जो अयोगी,अविद्वानों के दुःख से जानने योग्य,छोटे बड़े पदार्थों में परमात्मा..' (सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ १३१)

ऋषिवर ! ' यह कौनसा नया योगदर्शन आपने लिख दिया है? जिसमें अविद्वानों के दुःख से परमात्मा का ज्ञान होता है। डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी को इस पर सख्त ऐतराज है। हम असमंजस में इसलिए हैं कि यह पाठ आर्य जगत् द्वारा सर्व स्वीकृत है।

५. सर्वव्यापक परमात्मा की सत्ता से जैसा अग्नि से लोहा चेतन हो जाता है..'(सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २३४)

महर्षे! यह आपने क्या दृष्टान्त दिया ? क्या अग्नि से लोहा चेतन हो जाता है। यह सर्वथा नवीन विचित्र खोज है। ना!ना! ऐसा आर्य जगत् के सभी विद्वानों का नहीं बल्कि डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी का एतराज है। मुझे पता है कि दयानिधान आप यही कहेंगे कि सुरेन्द्र जी ने ध्यान से इस स्थल को नहीं देखा और **पूर्व पक्ष की मान्यता को आपकी मान्यता बता दिया।**

६. जैसे सूर्यास्त होने में जार पुरुष परस्त्रीगमन और विद्वान् सत्याभाषण आदि श्रेष्ठ कर्म करते हैं...(सत्यार्थ प्रकाश ४०३)

महर्षे! आपने सत्यभाषण/ सत्य आचरण की सीमा केवल सूर्यास्त के बाद तय कर लोगों को बड़ी छूट दे दी है,अब वे दिन भर कुछ भी अनैतिक करेंगे और आपकी आड़ ले लेंगे/ऋषिवर! आप यह मन्द हास्य क्यों कर रहे हैं । यह निर्वचन मानक संस्करण विद्वत् समिति अथवा पंडित युधिष्ठिर जी मीमांसक,पंडित भगवददत्त जी व स्वामी वेदानन्द जी सदृश विद्वानों का नहीं, पर मनुस्मृतिभाष्यकार का है। आर्य जगत् इस पाठ पर कहीं भ्रमित नहीं है। पर आप थोड़ा सा स्पष्टीकरण डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी को अवश्य दे दें।

(७) ' यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था अभाव न था.......'

(सत्यार्थ प्रकाश २१०)

महर्षिवर ! डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी का कहना है कि इससे क्या सिद्धान्त स्थापित हो रहा है? यह तो सब गड़बड़झाला सा लग रहा है। आपने डॉ.साहब की मुसीबत और बढ़ा दी क्योंकि प्रेस प्रति में आपने अपने कर कमलों से 'और जीवात्मा' स्वयं लिख दिया है। इसका तात्पर्य यह है कि आपने इस पाठ को भलीभांति पढ़ भी लिया है। संभवतः यही कारण है कि यह अब तक सर्वस्वीकृत पाठ रहा है।

८. **'यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है इसलिए भूमि घूमा करती है।** (सत्यार्थ प्रकाश २२६)

महर्षिवर डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी का आक्षेप है कि भूगोल व भूमि में तो कोई अन्तर है नहीं अतः उक्त वाक्य में 'इसलिये' नहीं वरन् 'अर्थात्' ही उपयुक्त था। परोपकारिणी सभा के ३६ वें संस्करण को छोड़ दे तो पंडित युधिष्ठिर जी,भगवददत्त जी,वेदानन्द जी,मानक संस्करण विद्वत् समिति सभी ने उपरोक्त पाठ स्वीकार किया है। वस्तुतः यहां सबसे बड़ी बात यह हो गई कि आपने स्वयं अपने हाथ से **'इस वास्ते'** लिख दिया। जिसका अर्थ 'इसलिए' ही होता है।

९. **'इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहां जहां स्तुति,प्रार्थना,उपासना,सर्वज्ञ,व्यापक,शुद्ध,सनातन और सृष्टिकर्ता आदि विशेषण लिखे हैं.........**(सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ १३)

महर्षिवर ! मान्य सुरेन्द्र जी को विचित्र व्याकरण दिखाई देता है। वे कहते हैं 'हमने तो ऐसा व्याकरण कभी पढ़ा नहीं। भगवन! आपने अपने बोलकर लिखाए मूल हस्तलेख में फिर प्रेस हस्तलेख में फिर संस्करण २ में भी यही पाठ रखा। आपने दोनों हस्तलेखों को स्वयं शोधित किया था। मुद्रण के दौरान प्रूफ भी संशोधित किए थे फिर भी पाठ यही स्वीकृत किया। (पंडित युधिष्ठिर जी को छोड़) परोपकारिणी सभा सहित सभी संस्करणों में पाठ उपरोक्त ही है। मान्यवर! आखिर सुरेन्द्र जी आपके शिष्य और भक्त विद्वान् ही हैं। उनका समाधान हो ऐसा प्रबन्ध आपको करना ही होगा।

१० **'जो अधर्म से रहित धर्म ही का प्रकाश करता है............धर्मराज है** (सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २४)

महर्षिवर ! यह आपने क्या लिख दिया? सुरेन्द्र जी इससे पूर्णतः असहमत हैं। उनका कहना 'क्या' 'अधर्म से सहित' भी धर्म होता है। हमने तो ऐसा किसी धर्मशास्त्र में ऐसे धर्म के बारे में नहीं पढ़ा।' ऋषिवर डॉ.साहब की मुसीबत का अन्त इसलिये नहीं हो रहा कि अपने स्वयं आपने हाथ से मूल हस्त लेख में **'अधर्म से रहित धर्म का प्रकाश करता है'** लिख दिया है। इस कारण यह पाठ सर्व स्वीकृत है।

११. **'ईर्ष्या ,द्वेष के अंकुर उगे थे जो बढ़ते बढ़ते वृद्ध हो गये** (सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २८०)

यह क्या लिख दिया भगवन! सुरेन्द्र जी कहते हैं कि क्या अंकुर भी बढ़कर वृद्ध होते हैं। यहां वृक्ष होना चाहिए था।

पर यहां भी वही पुरानी मुसीबत डॉ.साहब सामने खड़ी है। प्रैस हस्तलेख में आपने स्वयं वृक्ष को काटकर 'वृद्ध' कर दिया है। मानक संस्करण विद्वत् समिति व सभी आर्य विद्वान् तो उक्त पाठ को मानते हैं । परन्तु डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी का समाधान शेष है। श्री विरजानन्द जी ने भी संस्करण ३७ में तो वृद्ध छापा था। अब ३६ वें संस्करण में 'वृक्ष' कर दिया है।

(१२) 'उसने शिव,विष्णु,गणेश,सूर्य और देवी के शरीर धारण कर राम,कृष्ण आदि अवतार लिए'

हे महर्षि! यहां तो बड़ी परेशानी हो गई। डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी का कहना है कि परमात्मा अन्य देवी देवताओं का शरीर धारण कर राम कृष्ण के अवतार कैसे लेगा। पर सारे विद्वान् उक्त उद्धृत पाठ पर अड़े हैं, प्रभु उन्हें सद्बुद्धि प्रदान करे।

(१३) '(सन्धि) शत्रु से मेल अथवा इससे विपरीतता करे।' (सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ १६०)

ऋषिवर ! शत्रु से विपरीतता करना सन्धि के अंतर्गत कैसे आवेगा? डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी कहते हैं कि ऐसा तो किसी युद्धशास्त्र में हमने नहीं पढ़ा।'आपने स्वयं अपने हाथ से प्रैस हस्तलेख में विपरीत के आगे 'ता' लिखकर विपरीतता को प्रामाणिक बना दिया। अतः सब इसी पाठ को स्वीकार कर रहे हैं। वास्तविकता तो यह है कि इस 'विपरीतता' को सन्धि के अंतर्गत पंडित विरजानन्द जी सहित सभी विद्वानों ने मान लिया है। कृपया बतावें कि इसमें क्या सुधार किया जावे ।

(१४) 'जिनका अच्छा धर्म करने का सुखरूप समय हो वे सुकालिन्' (सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ १०१)

महर्षिवर! डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी ने ध्यान आकर्षित किया है कि इससे तो यही ध्वनित हो रहा है कि 'बुरा धर्म' करने का भी समय होता है। परन्तु पूज्यप्रवर! इस 'बुरे धर्म को करने के समय' के बारे में आपने लिखना तो दूर कहीं संकेत भी नहीं दिया है। सत्यार्थ प्रकाश को सम्पादित करने वाले सभी विद्वानों ने तो स्वीकार कर लिया है परन्तु डॉ. साहब का समाधान अपेक्षित है।

(१५) 'बिना विचारे बलात्कार से किसी की स्त्री से बुरा काम करना' (सत्यार्थ प्रकाश १४६)

यह आपने क्या लिख दिया मान्यवर! डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी का कहना है कि जब विचारकर बलात्कार होगा तो उसकी संज्ञा क्या होगी? ऊपर से आर्य जगत् के सभी विद्वान् जिन्होंने सत्यार्थ प्रकाश का सम्पादन किया,हूबहू आपकी ही बात लिख गये। किसी ने भी संशोधन के बारे में न सोचा। अब डॉ. साहब का समाधन हो ऐसा उपाय भी तो होना चाहिए।

(१६) 'प्रश्न-क्या अपने ही हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं ? उत्तर-जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं है। '(सत्यार्थ प्रकाश २६६)

भगवन्! यहां डॉ.सुरेन्द्र जी का कथन सामान्य तौर पर ठीक लग रहा है। आपने तो प्रैस प्रति में स्वयं अपने हाथ से 'सब आर्यों के साथ' लिख दिया। यहां पर आर्ष वालों ने, तथा पंडित युधिष्ठिर जी ने डॉ. साहब को कुछ राहत पहुंचायी है, पर उनके परममित्र विरजानन्द जी ने डॉ.साहब का अनुरोध नहीं माना।

(१७) 'जीव के अल्पज्ञान,अल्पबल,अल्प स्वरूप,सब भ्रान्तित्व और परिछिन्नतादि गुण.... ......(सत्यार्थ प्रकाश १६६)

ऋषिवर! डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी ने तो मानक संस्करण विद्वत् समिति के विद्वानों को चुनौती दे दी कि यह शब्द 'सब भ्रान्तित्व' तथा गुण-परिछिन्नतादि' उनकी नई खोज है जो कि नितान्त अशुद्ध है।' परन्तु यहीं पाठ अपने हस्तलेखों में लिखवाया है। ये आर्य समाज के परवर्ती विद्वान् भी शोधबुद्धि न होने के कारण डॉ.साहब की तरह नहीं सोचते। भगवन्! डॉ.सुरेन्द्र जी सत्यार्थ प्रकाश के कलंक को मिटाने को कटिबद्ध हैं। उनको कोई सहाय तो मिलना चाहिए। पर आपका हस्तलेख बाधक बन रहा है।

स्पष्ट ही कहूं! भगवन्! यद्यपि डॉ. सुरेन्द्र जी विद्वान् हैं,पर सत्यार्थ प्रकाश में कलंक की विद्यमानता ....।' यह हमें अच्छा नहीं लगा।

पाठकगण! अब तक ऋषिवर सिर्फ सुन रहे थे, अब तक एक शब्द भी नहीं बोले। हमें लगा, अब वे धीरे से मुस्कराये। धीर-गम्भीर-स्नेहसिक्त वाणी से बोले-

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी मेरे विद्वान् पुत्र हैं,इसमें कोई संदेह नहीं । परन्तु उन्हें सोचना चाहिए कि मैंने सत्यार्थ प्रकाश के प्रारम्भ में इसीलिए लिखा था कि मैं इस ग्रन्थ में जो सत्य है केवल उसे ही प्रतिपादित करूंगा और हस्तलेखों में और प्रूफ आदि में संशोधन के पश्चात् जितना ग्रन्थ मेरे सामने छप गया था उसे देखने के पश्चात् ही अन्त में लिखा था ऋतमवादिषं सत्यमवादिषम् । सुरेन्द्र जी! विद्वान् हैं,धर्मात्मा हैं,परमात्मा ने उन्हें अनेकविध सम्पन्न बनाया है अतः मेरे पाठों को समझने में अपनी प्रतिभा का उपयोग करें न कि उनका उपहास करने में। जैसा मैंने अपने इस ग्रन्थ में पक्षपातरहितता को अनेक स्थलों पर मनुष्य का विशेष गुण माना है सो वे पक्षपातरहित चिन्तन करें। उनके मार्ग में केवल यही एक बाधा है कि उन्होंने पक्षपातरहितता का त्याग कर दिया है। सर्वात्मना शुद्ध अन्तकरण से मनन करेंगे तो समाधान मिल ही जावेगा।'

हमने विनम्र भाव से ऋषि चरणों में निवेदन किया कि भगवन सुरेन्द्र जी को आपके निम्न पाठ पर सख्त ऐतराज है।

१८ 'योगी ऐश्वर्य सहित अपने ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होकर अन्य अधिपति से रहित अर्थात् स्वयं आप अपना और सबका अधिपतिरूप ब्रह्मस्वरूप से मुक्ति में स्थित रहता है।' (सत्यार्थ प्रकाश २६४)

महर्षिवर फिर मन्द हास्य के साथ बोले-पुत्र! मैं यही तो कह रहा था कि आवेश,क्रोध,ईर्ष्या,पक्षपातरहितता मनुष्य के और विशेषकर विद्वानों के शत्रु हैं। अब देखो न डॉ.सुरेन्द्र जी यहां भूल कर बैठे। **यह वाक्य तो मैंने पूर्व पक्ष के रूप में दिया है।**

वे ठीक कह रहे हैं कि यह अवैदिक मान्यता है। **परन्तु मेरी मान्यता तो उत्तर में निहित है** यथा-'जब योगी का सत्य संकल्प होता है तब स्वयं परमेश्वर को प्राप्त होकर मुक्ति सुख को पाता है,वहां स्वाधीन स्वतंत्र रहता है। जैसा संसार में एक प्रधान दूसरा अप्रधान होता है,वैसा मुक्ति में नहीं। किन्तु सब मुक्त जीव एक से रहते हैं। ' अब बताओ मैंने क्या गलत लिखा है ?

हमने कहा, नहीं भगवन! सभी आर्यजन आप पर पूरी श्रद्धा रखते हैं स्वयं डॉ. सुरेन्द्र जी भी। आप तो गलत नहीं लिख सकते। पर ! पर! अब देखो न ऋषिवर! **भागवत का रचयिता वोपदेव गीत गोविन्द वाले जयदेव का भाई था, व्यास पाताल निवासी थे तथा हूण को यहूदी बताना,**

इन सब बातों को डॉ.सुरेन्द्र जी अनैतिहासिक मानते हैं।

ऋषि बोले '-पुत्र! देखो जितने भी उद्धरण तुमने दिये हैं वे मैंने ही मूल हस्तलेख में लिखवाये हैं। मुझे ज्ञात है कि १८८४ में प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश में भी ये ही पाठ हैं क्योंकि ११ वें समुल्लास तक तो मेरे जीवनकाल में छप ही गया था और डॉ.सुरेन्द्र जी ने संभवतः ध्यान नहीं दिया कि प्रैस हस्त में 'यहूदी' मैंने ही अपने हाथ से लिखा है।' सो मेरे प्रिय पुत्र सुरेन्द्र क्या मुझ पर संदेह कर रहे है? वे भी अपने पूर्ववर्ती विद्वानों की तरह यह सोचने का प्रयास क्यों नहीं करते कि जब मैंने सत्यार्थ प्रकाश का प्रणयन किया तब उक्त तथ्यों को पुष्ट करने वाले ग्रन्थ मेरे समक्ष थे। आज यदि वे लुप्त हो गये तो वे भ्रमित क्यों हो रहे हैं । अतः पुत्र सुरेन्द्र जी से कहना 'निष्पक्ष बनें!श्रद्धा को अपने से दूर न करें उन्हें मार्ग मिल जायेगा। इसी से विद्वत् समाज में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी। अस्तु।'

डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी की आपत्ति है कि मानक संस्करण वालों ने सत्यार्थ प्रकाश को आदिम स्थिति में ला खड़ा किया है।

इसका उत्तर पूर्व में भी दे चुके हैं। बाह्य कलेवर स्वेच्छानुसार बदलने के लिए क्या सत्यार्थ प्रकाश ही मिला है? विभिन्न प्रकाशकों के सत्यार्थ प्रकाश में प्रस्तुतीकरण की भिन्न भिन्न पद्धति अपनायी है,सब अन्ततोगत्वा अराजकता को जन्म दे रही हैं।

१. विषय सूची में स्वेच्छानुसार बढ़ा घटा कर मूल सत्यार्थ प्रकाश का अंग बना देना।
२. मूल ग्रन्थ में पाठ पते घुसेड़ दिए हैं। ये वर्तमान में उपलब्ध ग्रन्थों के अनुसार हैं।
३. मूल ग्रन्थ में छोटे छोटे शीर्षक बना देना।
४. किसी किसी सत्यार्थ प्रकाश में पेराओं की नम्बरिंग करना ।
५. एक ही प्रकाशक के उत्तरोत्तर संस्करणों में पृष्ठ संख्या भिन्न भिन्न है लिहाजा प्रमाण उद्धृत करने के लिए पता भिन्न भिन्न होगा। उदाहरण एक ही उद्धरण के लिए सत्यार्थ प्रकाश,परोपकारिणी सभा(या वैदिक यन्त्रालय) ३७ वां संस्करण पृष्ठ.....................लिखना होगा। अब पाठक के पास या तो इसी प्रकाशक का यही संस्करण हो तो वह उद्धरण तक पहुंच सकेगा। अगर उसके पास ३८ वां संस्करण है तो उसमें वही उद्धरण भिन्न पृष्ठ पर होगा। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक सत्यार्थ प्रकाश प्रेमी हर प्रकाशक का हर संस्करण रखे। एक बात और पृष्ठ संख्या निश्चित न होने के कारण व्यापक संशोधनों हेतु अवकाश मिल जाता है। मानक संस्करण का ही उदाहरण लें। षष्ठ समुल्लास में 'दण्ड संबंधी प्रकरण' को एक स्थान पर रखने का निश्चय विद्वत् समिति ने किया। केवल इतने निर्णय से 'समान शब्द से पृष्ठ आरम्भ तथा समाप्त' की प्रतिज्ञा का पालन नहीं हो पाया(मात्र इस एक पृष्ठ पर)।
६. कुछ संस्करणों में प्रथम समुल्लास में ईश्वर के नामों को क्रम संख्या प्रदान कर १०० नाम निर्देशित कर दिये हैं। पर ये नाम सौ हैं या १०८वा और अधिक इसमें विद्वानों में मतभिन्नता है। हमारी तुच्छ मति में इस नम्बरिंग को मूल ग्रन्थ का भाग बनाना ऋषि प्रणीत समझा जावेगा जो उचित नहीं। ऐसी सारी अराजकता आप चाहते हैं, तो करें जैसा आप चाहें।
७. आपने व्यंग्य किया है कि 'जो २ ईश्वर का ध्यान करें' जैसे पाठ को पाठक 'जो दो ईश्वर का ध्यान करे' ऐसा पढ़ेगा'। डॉ. साहब यह आपकी खामख्याली है,जब हमारे जैसे अल्पमति ने इसे 'जो-जो ईश्वर का ध्यान करे' पढ़ा तो अन्य भी सही पढ़ सकेंगे। हां ,निष्पक्षता का चश्मा पहनना अनिवार्य है। ।
८. डॉ. साहब लिखते हैं कि यह समालोचना है, साहित्यिक है, आदि आदि। पर यह केवल द्वेषपूर्ण आलोचना है यह हमारे व विद्वत् समिति के संयोजक डॉ.रघुवीर जी के प्रत्युत्तर पढ़ने से साबित हो जाता है।
९. दश विद्वानों द्वारा सम्पादित होने पर डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी ने प्रश्न चिह्न लगाये हैं। सम्पादकीय में रघुवीर जी ने उदयपुर से बाहर ३-४ बैठकों का जिक्र किया है। जो बैठकें उदयपुर में हुई जिनमें हम उपस्थित थे। बाहर की बैठकों में हम उपस्थित न थे। उदयपुर बैठकों में आचार्य विशुद्धानन्द जी,डॉ.रघुवीर जी,आचार्य

वेदप्रिय जी,श्री राजवीर जी शास्त्री,स्वामी जगदीश्वरानन्द जी के अतिरिक्त विश्वनाथ जी, धर्मपाल जी, दिनेश शास्त्री जी उपस्थित थे। सम्पादन कार्य वस्तुतः बाहर वाली बैठकों में प्रायः हो चुका था। उदयपुर बैठक में पुनरावलोकन व अन्तिम रूप देने के पश्चात् सारिणीकरण का कार्य विद्वानों को पृथक् पृथक् सौंपा गया। अब आप इसे किसी भी रूप में प्रस्तुत करें,आपकी इच्छा है। कौन रोक सकता है।

१०. आपने अपने लेख में विद्वत् समिति पर, उसकी योग्यता को लेकर अनेक प्रश्नचिह्न लगाते हुए यह लिखा है कि लगभग सारे संशोधन पूर्व संपादको के हैं और एकाध स्थल पर कहीं स्वयं की ऊहा से किये है तो अपने को हास्यास्पद बना दिया हैं, यह लेखन वस्तुतः दम्भ-प्रदर्शन है। अत्यन्त विचारपूर्वक यही बात हम आपके संदर्भ में कह रहे है। जितने बिन्दु आपने प्रस्तुत किए है उनपर पूर्व आर्य विद्वानों ने कहीं न कहीं विचार किया है और कुछेक जो आपकी प्रस्तुति है वहां आपने अपने को हास्यास्पद बना दिया है। आवश्यक होने पर उदाहरण सहित हम अपनी बात को सिद्ध करेंगे।

और अंत में एक बात और

जबसे सत्यार्थ प्रकाश से संबंधित 'तथ्य और सत्य' हमने रखने प्रारम्भ किए हैं। हर बार आर्य विद्वानों ने अहंकार के मद में घिरकर हमारी योग्यता के संदर्भ में स्पष्ट या अस्पष्ट अवश्य लिखा है, चाहे वह विरजानन्द जी का लेख हो, परोपकारी में छपा 'बासी कढ़ी में उबाल' लेख हो या अब डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी की लेखमाला। हम विनम्रता से ही कहना चाहेंगे कि यह अहंकार आपके के ही व्यक्तित्व की दुर्बलता है क्योंकि हमने तो कभी विद्वता का दावा किया ही नहीं। अतः ऐसा लिखने से आपकी भड़ास भले ही निकल जाये,पर यह आपकी प्रतिभा के अनुरूप नहीं है। फिर आपकी इच्छा। ऐसा करके आप हमारी आवाज दबा पायेंगे यह संभव तो नहीं लगता ।

परोपकारी में प्रकाशित लेखमाला का सच सुधि पाठकों के समक्ष उपस्थित है। अब आर्यजन स्वयं सत्य का व अपने कर्तव्य का निर्णय करें।



सत्यासत्य के स्वयमेव निर्णयार्थ एक बार 'मानक संस्करण' स्वयं पढ़ें

'ओ३म्'

मानक संस्करण में २००० अशुद्धियों का सच

-अशोक आर्य

सत्यार्थ प्रकाश मानक संस्करण,जो सत्यार्थ प्रकाश न्यास,उदयपुर से प्रकाशित हुआ है,की आलोचना में परोपकारी पत्रिका में छपे लेखों (परोपकारी पृष्ठ ७५१) में डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी ने अनेक स्थलों पर मानक संस्करण विद्वत् समिति द्वारा ८०० दर्शायी तथा १२०० बिना दर्शायी अशुद्धियों के बारे में लिखा है। इसका मुख्य उद्देश्य तो यह है कि सत्यार्थ प्रकाश प्रेमी मानक संस्करण विद्वत् समिति तथा मानक संस्करण को हेय दृष्टि से देख उसकी पूर्ण उपेक्षा कर दें,कारण कि ऋषि के ग्रन्थ में २००० स्थलों पर शुद्धिकरण कार्य किया गया है, यह जान, हर श्रद्धालु का दिल टूट जाना तथा आक्रोशित होना स्वाभाविक ही है।

पाठक तो इन अशुद्धियों की संख्या तथा प्रकृति के बारे में जानना चाहेंगे ही,हम स्वयं भी अचम्भित रह गए कि न्यूनतम,अत्यावश्यक स्थलों पर ही परिवर्तन करने की प्रतिज्ञा से आबद्ध 'मानक संस्करण विद्वत् समिति' ने २००० पाठान्तर कैसे कर दिए? क्या संस्करण २ वाकई इतना अशुद्ध है कि उसमें २००० पाठान्तर करने पड़े? हमने इसकी पड़ताल करने का निश्चय किया । निष्कर्ष यह निकला कि जब ईर्ष्या-द्वेष से मन परिपूरित हो तो इसी प्रकार के वक्तव्य प्रस्फुटित होते हैं। सोच ही नकारात्मक,पूर्वाग्रह तथा पक्षपात् से युक्त हो तो ऐसा ही होता है।

एक बात और हमारे मन में बार बार आती है कि क्या सचमुच वह युग आ गया है कि राजनीति,कूटनीति,मित्र,अमित्र को देखकर ही कृत्य करने होंगे, सोच बनानी होगी,पक्ष रखना होगा ? क्या पारदर्शिता जैसी स्थितियों के लिए अब आर्य जगत् में कोई स्थान नहीं है? क्या जिन्होंने गुपचुप सत्यार्थ प्रकाश में पाठ परिवर्तन किए उनका मार्ग ही श्रेयस्कर है?हमारे द्वारा पारदर्शिता पूर्वक पाठक को सब सच बतलाने के उद्देश्य से परिशिष्ट के रूप में जो तालिकाएँ दी हैं क्या वह आलोचकों के समक्ष तश्तरी में भोजन परोसने जैसा कार्य हो गया? जो भी हो,हम आज भी आश्वस्त हैं कि पारदर्शिता रहनी ही चाहिए।

हमारा निवेदन - समिति ने पाठान्तरों को तीन भागों में विभाजित/वर्गीकृत किया है।

१- महत्वपूर्ण पाठान्तर - इनकी संख्या ५०१ है। इनमें भी विद्वत् समिति द्वारा स्वविवेकान्तर्गत किए पाठान्तर १८१ हैं। बाकी तो हस्तलेखों के आधार पर हैं अतएव पाठान्तर नहीं समझे जा सकते । इन १८१ में से भी अत्यावश्यक,अपरिहार्य स्थलों की संख्या संपूर्ण संस्करण २ में केवल ८७ है।

२- सामान्य मुद्रणदोष – इन्हें पृथक् से दर्शाया है। परिशिष्ट में इनकी संख्या ३२४ है। ये ऐसे पाठ हैं जो स्पष्ट मुद्रणदोष हैं तथा सत्यार्थ प्रकाश पढ़ते समय पाठक स्वयमेव,बिना किसी उलझन के स्वयं ही मन में शुद्ध कर लेता है। उन्हें अशुद्धि गिनना भी कोई आवश्यक नहीं है। अपनी इस बात के प्रमाण में इस सारिणी में से कतिपय उदाहरण नीचे दे रहे हैं:-

क्र. सं.	पृ./पं. सं.	पाठ संस्करण-२	पाठ मानक संस्करण
१.	३७/२६	पाठशाला में पुरुषों रहैं	पाठशाला में पुरुष रहैं
२.	४०/२५	जब प्राण भीतर भीतर से बाहर	जब प्राण भीतर से बाहर
३.	५२/१३	और अपनी चाल	और अपना चाल
४.	५७/४	ये सब बातों सृष्टिक्रम	ये सब बात सृष्टिक्रम
५.	६८/१	ऐतरेयी तैत्तिरेयी	ऐतरेय, तैत्तिरीय
६.	७८/१६	कन्या से विहाह करे	कन्या से विवाह करे
७.	२२६/२५	लाख और और कई	लाख और कई
८.	२२७/६	भारी चोने से	भारी होने से
९.	२३०/१९	काम निःप्रयोजन नहीं होता	काम निष्प्रयोजन नहीं होता
१०.	२३३/१३	आवर्ण में आता	आवरण में आता
११.	२३३/२३	भोग जीव कर्त्ता है	भोग जीव करता है।
१२.	२७८/३४	उसकी सूचना	इसकी सूचना
१३.	२८४/१३	पवित्र राखना गोमेध	पवित्र रखना गोमेध
१४.	२८७/२६	शिष्य महान्त बन	शिष्य महन्त बन
१५.	३०५/१८	रात्रि का स्वप्न में	रात्रि को स्वप्न में
१६.	३११/२८	होकर निरर्थ नष्ट	होकर निरर्थक नष्ट
१७.	३१६/६	वहाँ क श्राद्ध के	वहाँ के श्राद्ध के
१८.	३१८/१	तुमारे पाप छूट	तुम्हारे पाप छूट
१९.	३६८/४	परन्तु स्त्रियों की और खूब	परन्तु स्त्रियों की ओर खूब
२०.	४४७/२३	पाँच सुष्टि लुंचन	पाँच मुष्टि लुंचन

लेख का कलेवर न बढ़े, इसलिये इस सारिणी से कुछ उदाहरण यहाँ दिए हैं। पाठक फौरन समझ जावेंगे कि

इनको अशुद्धि गिनना कतई आवश्यक नहीं है। सम्पूर्ण पारदर्शिता की चाह में दी गई इस सारिणी की वास्तविकता को न दर्शा आलोचकों द्वारा तिल का ताड़ बना दिया गया है। गुणग्राहिता ही कमजोरी बन गयी। पर हमें विश्वास है पाठक इस सत्य को अवश्य समझ जावेंगे।

उक्त दोनों प्रकार के पाठान्तरों का कुल योग ८२४ होता है। डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी ने इसके अतिरिक्त १२०० अशुद्धियों को 'मानक संस्करण विद्वत् समिति' द्वारा शुद्ध करना बताया है। उसके कतिपय उदाहरण भी दिए हैं, यथा-अस्रुपात-अश्रुपात, जोसी-जोशी, सारदामठ-शारदामठ।

इन उदाहरणों की प्रकृति देखकर सामान्य पाठक भी समझ जायेगा कि इन्हें सूचीबद्ध करना व्यर्थ ही है। इसी कारण ऐसी अशुद्धियों को न तो समिति ने सूचीबद्ध किया,न गिना। परन्तु डॉ. साहब ने इन्हें भी गिना यह इस बात का प्रमाण है कि डॉ. साहब ने कितना भारी परिश्रम किया होगा। क्योंकि द्वितीय संस्करण से एक एक शब्द का मिलान कर, उसे सूचीबद्ध करना तथा गिनना,अकल्पनीय परिश्रम का काम है। डॉ. साहब ने इसे किसी भी उद्देश्य से किया हो, पर सत्यार्थ प्रकाश के अध्येताओं के लिए यह अमूल्य निधि ही होगी। **हम डॉ. साहब से प्रार्थना करेंगे कि या तो पूर्ववत् इसे छाप दें ताकि सभी के काम आ जावे अथवा हमें भेज दें।** इतना भारी परिश्रम व्यर्थ नहीं जाना चाहिये । हम डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी को इस हेतु पृथक् से प्रार्थना पत्र भी लिख दिया है। वे निश्चिंत रहें कि उनके इस शोध को 'गटका' नहीं जावेगा वरन् जहाँ भी प्रयोग होगा डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी का आभार प्रकाशित किया जावेगा। एक विचार यह भी आता है कि यह संख्या कल्पना प्रसूत तो नहीं है। पर बुद्धि कहती है कि डॉ. साहब बिना प्रमाण के यह नहीं लिख सकते। **सूची हमें प्रेषित कर या प्रकाशित कर डॉ. साहब इस उहापोह को समाप्त कर सकते हैं।**

अस्रुपात,जोसी,सारदामठ जैसी अति सामान्य अशुद्धियों को अशुद्धि भी कहना'बाल की खाल निकालना है, अगर यही बात है, तो हमारे मान्य विरजानन्द जी दैवकरणि,डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी व परोपकारिणी सभा के अधिकारी जो मूल मूल चिल्लाकर रफ हस्तलेख को स्वतः प्रमाण की श्रेणी में रखते हैं, उसे अक्षरशः छापने का साहस कर लें। तब शुद्धिकरण की गिनती गिनकर पाठकों को बतावें कि कितने सहस्र हैं। **वस्तुतः लेखन व मुद्रण के अति सामान्य दोषों पर इस प्रकार की शंका प्रस्तुत करना सत्यार्थ प्रकाश को संदिग्ध बना देता है।** इसके दो ही कारण हैं, पक्षपात तथा दम्भ। कारण दूर कीजिए-सुपरिणाम सामने होगा।

पाँच सौ अशुद्धियों की प्रकृति- डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी द्वारा बिना दर्शायी गई १२०० अशुद्धियाँ व परिशिष्ट में छपे ३२४ अति सामान्य मुद्रण दोषों के संदर्भ में हमने स्थिति स्पष्ट कर दी है। पाठक मनोयोगपूर्वक मानक संस्करण का स्वाध्याय करेंगे तो संभवतः इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे। यहाँ हम ५०१ अशुद्धियों का विश्लेषण करना चाहेंगे।

परिवर्तित पाठों की प्रकृति बताने हेतु पाठकों के समक्ष निम्न प्रकार निवेदन है-

१. मंत्रों/श्लोकों को मूल पाठ से मिलाने पर, तदनुसार शुद्ध कर दिया है।

२. कहीं मंत्र/श्लोक छूट गए पर भाषार्थ उपस्थित था, अतः संबंधित मंत्र/श्लोक यथास्थान रख दिए हैं।

३. कहीं मंत्र/श्लोक है,पर भाषार्थ नहीं, वहाँ पर ऋषि के अन्य ग्रन्थों के आधार पर अर्थ दे दिया है।

४. कहीं कहीं पाठ, मूल से मिलान करने पर छूटे पाये जाने पर पूर्ण कर दिए हैं। ये सभी, लेखकों की अनवधानता के परिणाम हैं, इन्हें हमने सूचीबद्ध तो किया है पर ये संशोधन नहीं कहे जा सकते।

५. मूल व प्रेस हस्तलेखों के आधार पर जो पाठ शुद्ध किए गए हैं उन्हें इस सारिणी में निबद्ध किया गया है । पर वे भी संशोधन नहीं कहे जा सकते, क्योंकि हस्तलेख भी ऋषि प्रणीत हैं।

परोपकारी पृष्ठ ६५० पर श्री विरजानन्द जी दैवकरणि ने लिखा है 'विद्वत् समिति ने ताक पर से उठाकर २०६ स्थानों पर पाठ शुद्ध करने के लिए इस पाण्डुलिपि का उपयोग किसलिए किया? जबकि यही कार्य परोपकारिणी सभा ने किया,तो उसे जी भरकर कोसा गया था।' यहाँ हम लिख दें-क्यों जानबूझकर पाठक को भ्रमपूर्ण सूचना दे रहे हैं? केवल यह लिख देना पर्याप्त होगा १. 'मूले मूलाभावाद मूलम् मूलम्' को उद्धृत कर, यह मानकर कि 'रफ प्रति स्वतः प्रमाण है(जबकि विद्वत् समिति तो क्या आपकी मित्रमण्डली को छोड़ १२५ वर्ष के इतिहास में किसी ने भी रफ प्रति को स्वतः प्रमाण नहीं माना) तदनुरूप ३७ वाँ संस्करण छापना और हस्तलेखों से केवल सहायता लेना, जैसाकि विद्वत् समिति ने किया है,दोनों बातों में महान् अन्तर है। आप भी समझ तो रहे हैं। आवश्यकता पड़ी तो अनेक उदाहरणों से अपनी बात कहेंगे।

६. अब रह जाती है विद्वत् समिति द्वारा स्वविवेक से किए पाठान्तरों की संख्या,जिन पर@का चिह्न लगाया है, १८८ हैं। इनमें से भी कुछ साधारण प्रकृति के पाठान्तर हैं, यथा-

१. लिखा है...इस समय	लिखा है वह इस समय
२. जानने और उपदेष्टा	जानने हारा और उपदेष्टा
३. ब्रह्मचर्य रहूँगा	ब्रह्मचर्य से रहूँगा
४. क्रिया और गुण	जो क्रिया और गुण
५. ऋषि मुनि	ऋषि मुनियों
६. दुःख दरिद्र और निन्दा	दुःख दरिद्रता और निन्दा
७. नियम से चलने	नियम में चलने वाली

कुछ दो शब्दों के मध्य शब्द छूट जाने से हैं

१. एक भाषा बोली	एक भाषा और बोली
२. चढ़ गई थी	जो चढ़ गई थी
अन्य –	
१. वहाँ शिर मुण्डाये सिद्धि	वहाँ सिर मुण्डाए सो सिद्ध
२. झुक जाता	झुक जाते
३. चोरो ओर बन	चारों ओर बन
४. आचार्य कुल में रहते हैं	आचार्य कुल में रहे

इन्हें भी संशोधन माना जाय आवश्यक नहीं है। इनको लेने न लेने से अर्थ व भाव में कोई अन्तर नहीं आता। हाँ निम्न सारिणी में निबद्ध कुछ ऐसे पाठ हैं जिन्हें अति आवश्यक मानकर विद्वत् समिति ने संशोधित किया है। इनको यहाँ पृथक् से सूचीबद्ध करते हैं।

क्र. सं.	पृ./पं. सं.	पाठ संस्करण-२	पाठ मानक संस्करण
१.	५/२६	वह.....बौद्ध और जैन	वह तथा बौद्ध और जैन
२.	१५/२३	क्त	क्त्र
३.	१६/८	इस घातु से णिच्	इस घातु से णिच् और रक्
४.	२३/१३	पृथ्वी जल के	पृथ्वी अग्नि जल के
५.	२५/२१	यः पृणाति	यः प्रीणाति
६.	२७/११	अग्नि	अग्न
७.	३४/२२-२३	यह मनुस्मृति का वचन है	यह विदुर नीति का वचन है
८.	४१/१८	यह जन्म से करना उत्तम है	यह जप मन से करना उत्तम है
९.	४४/११	आठ मिलके बयालीस अथवा	आठ मिलके चवालीस अथवा
१०	४७/२२	जैसे विद्वान् सारथि घोड़ों को नियम में रखता है वैसे मन और आत्मा को	जैसे सारथि घोड़ों को नियम में रखता है वैसे विद्वान् मन और आत्मा को

११.	५५/२३	पाप पुण्य के आचरण देख के सुख दुख का ज्ञान होता है	सुख दुख देख के पाप पुण्य के आचरण का ज्ञान होता है।
१२.	६५/१३	नित्य है अर्थात्	नित्य है तथा
१३.	७१/२६	इसमें भी प्रक्षिप्त श्लोक	के प्रक्षिप्त श्लोक
१४.	८५/५	मन से भी ध्यान करें	मन से भी ध्यान न करें।
१५.	६१/११	पूरी करना	प्रतिज्ञा पूरी करना
१६.	६४/३	डाल के गर्मस्नान करके	डाल के गर्म करके
१७.	६६/२५	अत्यन्त उदार रहै	अत्यन्त उदार सदा न रहै
१८.	११२/१७	संयोग अर्थात् अक्षत् योनि	संयोग न हुआ हो अर्थात् अक्षत् योनि
१६.	११२/२४	पुरूष पति स्त्री मरने के	पुरूष पति वा स्त्री के मरने के
२०.	११३/१६	मृत स्त्री पुरूष	मृत स्त्रीक पुरूष (४बार)
२१.	११५/११	स्त्रियों के सामने हम दोनों	स्त्रियों के सामने कहें कि हम दोनों
२२.	१२०/७	यह सामवेद का वचन है	यह सामवेद के ब्राह्मण का वचन है
२३.	१२०/२५	पुरुष वा स्त्री से	दीर्घ रोगी पुरुष की स्त्री से
२४.	१८१/३०	वह और बाह्य चेष्टा	वह दया और बाह्य चेष्टा
२५.	१६०/२४	ईश्वर से वैशेषिक	ईश्वर सिद्ध है। वैशेषिक
२६.	१६३/२४		(जीवन) प्राण का धारण करना
२७.	१६६/५	महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्त्री मैत्रेयी से कहते हैं.......	महर्षि याज्ञवल्क्य उद्दालक से कहते हैं.........
२८.	२०४/६	यूरोप देश आदिस्थ मनुष्यों	यूरोप आदि देशस्थ मनुष्यों
२६.	२०४/१०	इंगलैण्ड के कुलुंबस आदि	इंगलैण्ड के लोग तथा कुलुंबस आदि
३०.	२०८/८	जिससे जीव और	जिससे जीवते और
३१.	२१७/६	गुण से द्रव्य नहीं और	गुण से द्रव्य और
३२.	२१६/२०	को बनता हुआ वैसे	को बनाता हुआ वैसे
३३.	२२३/१०	यह यजुर्वेद में लिखा है	यह यजुर्वेद और उसके ब्राह्मण में लिखा है।

३४.	२२३/२४	वर्तमान प्रवाह से	प्रलय प्रवाह से
३५.	२२४/७	ऋग्वेद वचन	अथर्ववेद वचन
३६.	२२५/८	यह भी ऋग्वेद का प्रमाण है	यह भी अथर्ववेद का प्रमाण है
३७.	२३१/१२ २३२/११-१२	अल्प सामर्थ्य भी और मलमय स्त्र्यादि के और	अल्प सामर्थ्य जीव और मलमय शरीरादि में और (ऋ.भा.भू.के आधार पर)
३८.	२४२/२०	यह दूसरा और भौतिक शरीर	यह दूसरा अभौतिक शरीर
३९.	२४३/२	उसी समय भीतर से	उसी समय अच्छे कर्मों को करने में भीतर से
४०.	२४४/२०	भिन्न न समझना अभिनिवेश	भिन्न न समझना अस्मिता
४१.	२४६/२४	धनाढ्यता और निर्बुद्धिता	धनाढ्यता और बुद्धिमत्ता
४२.	२५४/१६	जो उत्तम रजोगुणी हैं।	जो अधम रजोगुणी हैं
४३.	२५५/६	जो मुक्त होते हैं वे	जो मुक्ति चाहते हैं वे
४४.	२६६/७	एक पीढ़ी में चार लाख पचहत्तर सहस्र छः सौ	एक पीढ़ी में ३९९८७६० (तीन लाख निन्यावनें हजार सात सौ साठ)
४५.	२६६/१०	इससे भिन्न गाड़ी सवारी	इससे भिन्न बैलगाड़ी सवारी
४६.	२६६/११	वैसे दूध में	वैसे गाय के दूध में
४७.	२७६/१७-१८	गोल्डसटकर, साहब पारस अर्थात्	जैकालिअट साहब पैरस अर्थात्
४८.	२५०/१२	होकर आकारवाला अज्ञानियों	होकर अज्ञानियों
४९.	२९१/२३	आर्दश वाले में	आर्दश वा जल में
५०.	२९३/२०	एकता दिखती है	एकता नहीं दीखती है
५१.	२९५/२२	के भोग से	के योग से
५२.	३१३/११	जल की शुद्धि पूर्ण	जल की शुद्धि करती और पूर्ण
५३.	३२८/२७	एक नारायण जलाशय को	एक जलाशय में नारायण को
५४.	३४६/२६	यदि नहीं थी तो	यदि थी तो
५५.	३५२/३	दोनों पतली रेखा	दोनों ओर पतली रेखा
५६.	३७६/२७	न मान पूर्वापर	न मानना पूर्वापर

५७.	३८१/१६	सम्यक्ति अर्थात्	सम्यक्त्वी अर्थात्
५८.	३८२/२६	यदि कर्मों में सबने	यदि कर्मों में अर्धम। सबने
५६.	४४७/२०-२१	संसर्ग करते	केवली......अपवर्ग नहीं करते
६०.	४१७/६	दण्ड देता है	दण्ड पाता है
६१.	४१६/१२	यह रत्लसार भाग	यह प्रकरण रत्लसार भाग २
६२.	४२६/३	जैसे दही और खटाई	जैसे दूध और खटायी
६३.	४२७/१५	अंधेर और चरित्र के बदले	अंधेर और चारित्र के बदले
६४.	४२७/१५	दया	न दया
६५.	४५५/१७	किसी ने नहीं देखा	किसी ने कहीं देखा
६६.	४६७/१३	पेड़ का	पेड़ का फल
६७.	४६६/३३	मोटी २	मोटी २ भेड़
६८.	४८१/५-७		जो चढ़ गयी थी
६६.	४८१/१०	क्रोधादि गुणों से मुक्त	क्रोधादि दुर्गुणों से युक्त
७०.	४७७/३	मनुष्यवत् देहधारी नहीं है	मनुष्यवत् देहधारी है
७१.	४६०/२४	निर्भ्रम हैं	निर्भ्रम न रहैं
७२.	४६२/१७	दीन और अभिमान	दीन और निरभिमान
७३.	४६६/३	विश्वास न जमाने	विश्वास जमाने
७४.	४६८/३१	सब गुण	सब गुनाह
७५.	४६८/१४	मिलती है लिखा है	मिलती हैं,यहीं से लेकर लिखा है
७६.	५१६/२६	और जन्मते जाते हैं	और वहाँ जन्मते जाते हैं
७७.	५२१/२७	जो कहो कि विना	जो कहो कि नहीं तो विना
७८.	५५१/१२	ऊपर आकाश के क्यों ठहरता!	ऊपर अर्श के क्यों ठहरता!
७६.	५६५/२	फूका बीज रूह अपनी से	फूका वीच उसके रूह अपनी से
८०.	५६८/२६	कबरों में से मालिक	कबरों में से तर्फ मालिक

८१.	५७३/३	और तंग करता है।	और बिना पाप के तंग करता है।
८२.	५८५/२५	प्रियाचरण और ..... चाहे चक्रवर्ती	प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती
८३.	५८७/१६	भिन्न न था है न होगा	भिन्न न था है न होगा
८४.	१३३/२		गृहस्थाश्रम तथा वानप्रस्थ आश्रम है
८५.	२३८/१६-२०		और इससे भिन्न इन्द्रिय आदि पदार्थों का अभाव हो जाता है
८६.	२४१/१८		मुक्ति उसका नाम है
८७.	१३५/३	स्थानान्तर	अस्थानान्तर

पाठक विचार करें। इनकी कुल संख्या ८७ है।
संस्करण २ में यदि इनके अतिरिक्त ऐसी त्रुटि ध्यान में आवे तो कृपया हमें लिखें। और यह भी कि इस सारिणी में अगर कोई संशोधन व्यर्थ लगे तो भी सूचित करने की कृपा करें। विद्वत् समिति उन पर अवश्य विचार करेगी। और आगामी संस्करण उत्तमोत्तम निकल सकेगा। यही कुल मिलाकर दो सहस्र अशुद्धियों का सच है। सकारात्मक रूप से देखें,तिल का ताड़ न बना दें,ईर्ष्या, द्वेष तथा अहंकार को त्याग दें तो संपूर्ण संस्करण २ में ८७ स्थल ऐसे हैं जहाँ शुद्धिकरण आवश्यक है, तथा किया गया है।



सत्यासत्य के स्वयमेव निर्णयार्थ एक बार 'मानक संस्करण' स्वयं पढ़ें

> गोस्वामी तुलसी दास की रामायण 'रामचरित मानस' में उस समय की जिस अवधी भाषा का प्रयोग किया गया है क्या कोई भी आधुनिक अवधी में रामायण का रूपान्तर करने का कुप्रयास करेगा? और क्या उसे रामायण भक्त सह लेंगे।
>
> –आचार्य विशुद्धानन्दजी मिश्र

'ओ३म्'

सत्यार्थ प्रकाश के मानक संस्करण के प्रकाशन हेतु क्या न्यास ने विद्वानों की लाबिंग की ?

– अशोक आर्य

आदरणीय डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी ने परोपकारी नवम्बर द्वितीय के अंक के पृष्ठ ७०४ पर सत्यार्थ प्रकाश के मानक संस्करण की आलोचनायुक्त आलेख में लिखा है कि न्यास ने ईमानदारी से सत्यार्थ प्रकाश की शुद्धता पर बल देने की अपेक्षा विद्वानों की लाबिंग पर अधिक बल दिया।

यह कथन न केवल असत्य है वरन् पाठकों को भ्रमित करने वाला है। वास्तविकता बिल्कुल विपरीत है। अतः संक्षेप में मानक संस्करण के प्रकाशन की पृष्ठभूमि पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत हैः-

७. सर्वप्रथम १६६८ में आर्य जगत् के ख्यातनाम विद्वानों ने परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ३७ वें संस्करण के बारे में यह बताया कि सत्यार्थ प्रकाश के रफ हस्तलेख को प्रामाणिक मानकर यह जो संस्करण छापा गया है, वह १०० सालों से अधिक समय से प्रचलित विशुद्ध संस्करण से विशद् पाठ भेद लिए हुए है और अनेक विद्वानों की राय है कि इसको जला देना चाहिए, इनमें पंडित युधिष्ठिर जी मीमांसक का नाम भी सम्मिलित था। इससे पूर्व हमें इस परिवर्तित संस्करण के बारे में कोई भी जानकारी नहीं थी। पर यह सुनकर जब छानबीन की तो उक्त विद्वानों का कथन बिल्कुल सत्य साबित हुआ। इस विषय पर जितना अंदर गए उतनी ही पीड़ा हुई कि सत्यार्थ प्रकाश जैसे प्रामाणिक ग्रन्थ की यह दशा महर्षि की उत्तराधिकारिणी सभा द्वारा की गई है।

८. क्योंकि सत्यार्थ प्रकाश के हस्तलेख, रफ और प्रैस प्रति उपलब्ध नहीं थी, इसलिए न्यास के तत्कालीन अध्यक्ष पूज्य स्वामी तत्त्वबोध जी सरस्वती ने परोपकारिणी सभा के मंत्री माननीय धर्मवीर जी को लिखा कि न्यास के खर्च पर उक्त हस्तलेखों की फोटो प्रति भेजने का श्रम करें, परन्तु उन्होंने बाढ़ में खराब हो जाने की बात कहकर इंकार कर दिया। इसके पश्चात् इस विषय में जितना गहरा प्रवेश किया, तो यही पाया कि विभिन्न प्रकाशनों से प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाशों में अनेक पाठ भेद पाये जाते हैं। अतः सप्रमाण अपनी बात 'कब तक मौन रहेंगे' पुस्तक के नाम से हमने विद्वानों के समक्ष रखी। तब तक सार्वजनिक तौर पर हमने कोई आलोचनात्मक लेख नहीं लिखा और कब तक मौन रहेंगे भी करीब ३५० विद्वानों को प्रेषित की,सामान्यजनों को नहीं। उक्त निवेदन के प्रत्युत्तर में जो पत्र और दूरभाष संदेश मिले उससे यह निश्चय हुआ कि केवल परोपकारिणी

के अधिकारी व उनके कुछ विद्वानों को छोड़कर **सभी विद्वानों ने संस्करण २ को ही प्रामाणिक माना है।** इस कारण ३७ वें संस्करण की सभी ने निन्दा की । अपने उक्त निवेदन में हमने सामान्य रूप से आर्यजगत् के सभी विद्वानों से निवेदन किया था कि वह समवेत रूप में इस समस्या को सुलझायें । सत्यार्थ प्रकाश चाहे कहीं से भी छपे, शब्दशः एकरूप में मिलता रहे। जब तक ऐसा विचार भी नहीं था कि न्यास द्वारा सत्यार्थ प्रकाश का प्रकाशन किया जाए **अतः लाबिंग का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।** हम चाहते थे कि इस कार्य को अधिकृत रूप से कोई संस्था करे तथा हमारे अनुसार दो ही ऐसी सभाएँ थी। प्रथम तो ऋषि की उत्तराधिकारिणी सभा- परोपकारिणी सभा, परन्तु उसके अधिकारियों ने तो मनमाने तरीके से सत्यार्थ प्रकाश के ३७ वें संस्करण को न सिर्फ छापा वरन् अनेक लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों के विरोध के बावजूद भी अपनी जिद को न छोड़ते हुए, उसी पर आधारित परन्तु अनेक पाठ- भेदों को अपने में समाये,३८ वें संस्करण को छाप दिया। अतः जो सभाधिकारी स्वयं इस दुष्कृत्य में संलग्न हों, उनसे अपेक्षा भी क्या की जा सकती थी ।अतः दूसरी संस्था आर्यों की शिरोमणि संस्था सार्वदेशिक सभा इस कार्य के लिए शेष रह गई थी।

६. सभी जानते हैं कि सार्वदेशिक सभा के अंतर्गत धर्मार्य सभा का गठन इसलिए किया जाता है कि इस प्रकार की सिद्धान्तों पर आधारित समस्याओं पर वे विचार द्वारा निर्णय दें, जो संपूर्ण आर्य जगत् स्वीकार करे । पूर्व में आर्य समाज की स्थापना की तिथि के संदर्भ में भी हमने देखा कि चैत्र सुदी पंचमी होते हुए भी, क्योंकि धर्मार्य सभा के विद्वानों ने विचार कर यह निर्णय दिया कि आर्य समाज की स्थापना चैत्र सुदी प्रतिपदा में ही हुई थी, आर्य जगत् ने उसे स्वीकार किया। इसी प्रकार से संध्या व यज्ञ के मामले में भी धर्मार्य सभा की व्यवस्था आमतौर पर स्वीकार की गईं और यह ठीक भी है। आखिर कोई तो ऐसी सभा/समिति हो जो इस प्रकार के विषयों पर चिन्तन कर अपना निर्णय दे । अतः हमने सार्वदेशिक सभा के प्रधान कैप्टन देवरत्न जी आर्य को इस संदर्भ में पत्र लिखा और अपनी आपत्ति दर्ज करा, इस समस्या का समाधान करने की प्रार्थना की। सार्वदेशिक सभा के प्रधान ने अपने पत्र दिनांक ७ फरवरी ०५ के द्वारा जो निर्देश दिए उनका प्रमुख विवरण निम्न प्रकार हैः-

अ. सार्वदेशिक धर्मार्य सभा की सहमति इसमें ली जाए।

ब. प्रत्येक पेज पर वही सामग्री हो उसमें कोई कांट छांट न करे।

स. प्रत्येक पंक्तियाँ भी उसी पेज पर उतनी ही हों।

द. प्रत्येक पंक्ति का आदि व अंत उसी से किया जाए।

इस पद्धति से सारे विद्वान् भी भाषण देते समय व लिखते समय यह कह सकें कि सत्यार्थ प्रकाश के अमुक पेज की अमुक पंक्ति में ऋषि ने यह लिखा है। इन

पंक्तियों में मिलावट भी नहीं हो सकेगी। कैप्टन साहब ने न्यास के भी अध्यक्ष होने के नाते हमें भी यह निर्देश दिया कि न्यास इस सत्यार्थ प्रकाश को प्रकाशित करे। हमने १,२ मार्च ०५ को इस विषय पर विद्वानों की एक सभा बुलाते हुए आर्य जगत् के सभी विद्वानों से यह निवेदन किया कि इस अवसर पर पधारें । इसके पूर्व १ जनवरी ०५ को ही सार्वदेशिक विद्वत् मंडल के संयोजक जी को बाकायदा पत्र लिखकर इस संदर्भ में अपना निवेदन प्रेषित किया। इन सब प्रयासों के फलस्वरूप सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के प्रधान आचार्य विशुद्धानन्द जी मिश्र के नेतृत्व में लगभग ३०-३५ विद्वानों की संगोष्ठी १ व २ मार्च ०५ को नवलखा महल में सम्पन्न हुई।

डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी लाबिंग की जो बात करते हैं, इस संदर्भ में उन्हें ध्यान दिलाना चाहूँगा कि जब विद्वानों की उक्त गोष्ठी में आने की सूचना प्राप्त हो रही थी, उसी समय विशेष रूप से ३१.१.०५ को हमने पूज्य स्वामी जगदीश्वरानन्द जी, धर्मवीर जी व विरजानन्द जी को बुलाने के लिए पत्र भेजा । तत्पश्चात् प्रो. रत्नसिंह जी से जब यह पता हुआ कि स्वामी जगदीश्वरानन्द जी तक हमारा निवेदन व हमारी पुस्तक 'कब तक मौन रहेंगे' नहीं पहुँची है तथा डॉ.सुरेन्द्र कुमार जी से हमें यह ज्ञात हुआ कि पंडित दैवकरणि जी को पत्र व पुस्तक नहीं मिली है तो ४ फरवरी ०५ को हमने उन्हें रजिस्टर्ड डाक से पत्र व 'कब तक मौन रहेंगे' पुस्तक भिजवाते हुए विद्वत् समिति की बैठक में पधारने के लिए निवेदन किया।

इसी प्रकार ज्ञात होने पर कि आदरणीय राजेन्द्र जी जिज्ञासु तक सूचना नहीं पहुँची तो २३ फरवरी को उनकी सेवा में विशेष निवेदन पत्र प्रेषित किया।

यह बात सत्यार्थ प्रकाश महोत्सव के निमंत्रण पत्र में ही प्रकाशित करा दी गई थी कि सामान्य रूप से आर्य जगत् के सभी विद्वानों को संगोष्ठी हेतु आमंत्रित किया गया है । अतः लाबिंग का प्रश्न ही नहीं उठता है।

उक्त बैठक में उपस्थित विद्वानों द्वारा समिति गठित की गई, न्यास द्वारा नहीं। उक्त बैठक में ही उन आधार बिन्दुओं को निर्धारित कर लिया गया था, जिन पर कि विद्वानों को कार्य करना था। ये कसौटियाँ हमारी व न्यास की नहीं थी बल्कि बैठक में उपस्थित विद्वानों की थीं ।डॉ सुरेन्द्र कुमार जी इस बैठक में पधारे थे व उन्होंने कहा था कि वह परोपकारिणी सभा के प्रतिनिधि के तौर पर आये हैं। वे एक तरह से ३७ वें व ३८ वें संस्करण की वकालत करने आये थे तथा पूरे समय उन्होंने ऐसा किया भी। विद्वत् समाज ने डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी से प्रार्थना की कि वे भी इस समिति का सदस्य बनना स्वीकार करें परन्तु उन्होंने इंकार कर दिया।

इसके बाद ७ अप्रेल २००५ को सर्वहितकारी पत्रिका में डॉ. रघुवीर जी,संयोजक,सत्यार्थ प्रकाश मानक संस्करण समिति की ओर से एक सूचना प्रकाशित की, जिसके अनुसार उन्हेंाने श्रीमती परोपकारिणी सभा के वरिष्ठ उपप्रधान माननीय मित्रसेन

जी आर्य को यह प्रस्ताव दिया कि वे उक्त समिति में परोपकारिणी सभा से भी एक प्रतिनिधि अवश्य भेजें।

माननीय मित्रसेन जी द्वारा निर्देशित होने पर १३ मार्च ०५ को डॉ. रघुवीर जी ने इसी आशय का प्रस्ताव परोपकारिणी सभा को भेजा जिसका कभी कोई उत्तर नहीं आया। विज्ञप्ति में डॉ. रघुवीर जी ने यह भी लिखा कि अप्रेल ०५ तक भी यदि परोपकारिणी सभा का कोई उत्तर नहीं आया तो मई माह में कार्य प्रारम्भ कर दिया जायेगा।

पाठकगण यह है पूरा सच ।

इससे संबंधित सभी दस्तावेज हमारे पास उपलब्ध हैं। इस पर भी अगर डॉ. साहब ने यह जानते हुए भी कि परोपकारिणी सभा के अधिकारियों की कभी भी मानसिकता नहीं रही कि समवेत रूप में कार्य करें ,लाबिंग का आरोप अगर न्यास पर लगाया,तो इसे विडम्बना ही कहा जायेगा।

यहाँ एक बात और ध्यान में रखना चाहूँगा, जैसा
कि हमने पहले लिखा कि यह कार्य सार्वेदशिक सभा के प्रधान के निर्देशन पर सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के प्रधान पूज्य विशुद्धानन्द जी की अध्यक्षता में पूर्ण हुआ है। इसे भी ध्यान में रखते हुये, यही निवेदन है कि इस सब पर निष्पक्ष होकर विचार करें।

❑❑❑

सत्यासत्य के स्वयमेव निर्णयार्थ एक बार 'मानक संस्करण' स्वयं पढ़ें

अफसोस है कि उन्हीं ऋषिवर की अनुपम हिन्दी परिपाटी वाटिका पर प्रबल परशु प्रहार किया जा रहा है । अब भी समय है कि आर्य समाज चेतना में आए ऋषि की भाषा को विकृत करने वाले को जैसे भी हो सन्मार्ग सुझाएं।

आचार्य विशुद्धानन्द जी मिश्र

क्या सत्यार्थ प्रकाश के पाठ बदल देने चाहिए?

इस संबंध में श्रद्धेय (स्वर्गीय) स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज का एक लेख १४ अक्टूबर २००५ के सर्वहितकारी पत्र में छपा था जिसका सार संक्षेप निम्न प्रकार प्रस्तुत है।

११ वें समुल्लास में सिक्ख पंथ पर विचार करते हुए महर्षिवर ने निम्न उद्धरण देते हुए उसकी समीक्षा की है।

१. ओं सत्यनाम कर्त्ता पुरुष निभौं निर्वैर अकाल मूर्त अजोनि सहभं गुरुप्रसाद जप,आदि सच जुगादि सच है भी सच नानक होसी भी सच (जपजी पौड़ी १)

२. वेद पढ़त ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानि।
सन्त (साध) कि महिमा वेद न जाने। (सुखमनी पौड़ी ७।चौ.८)

३. नानक ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर। (सु. पौड़ी ८।चौ.६)

इन पाठों के संदर्भ में कुछ बातें स्वामी स्वतंत्रानन्द जी ने अपने लेख में लिखी हैं।

१. उक्त पाठ बिना मात्राओं के हैं। मात्राओं सहित लिखने में और बोलने में अन्तर आ जाता है। परन्तु सिक्ख पंथ में भी बिना मात्राओं के भी पाठ प्रसिद्ध हैं। यथा- सोरठ रवदास। जउ तुम चंद हम भये हैं चकोरा। जबकि यहां 'रवदास' के स्थान पर 'रविदास' तथा 'हैं' के स्थान पर 'है' पाठ है। अब रही 'वेद पढ़त ब्रह्मा मरे, चारों वेद कहानि' पाठ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में नहीं है। परन्तु सिख पंथ में भी कुछ पाठ गुरु ग्रन्थ साहिब जी में नहीं हैं,पर प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ जिस भांति **'करे करावे आपे आप, मानुष के कुछ नाही हाथ'** गुरु ग्रन्थ जी में यह पाठ नहीं है पर प्रचलित है। उसी प्रकार वेद पढ़त ब्रह्मा मरे चारो वेद कहानि,' यह भी गुरु ग्रन्थ साहिब जी में नहीं है परन्तु प्रचलित है। प्रचलित होने से ऋषि से इसे सुनकर लिख दिया। परन्तु इस भाव के शब्द वहाँ उपलब्ध हैं। जैसे 'सनक सननन्द अन्त नहीं पाइया। वेद पड़े पड़ि ब्रह्मे जनम गंवाइया'- (राग आसा कबीर जी शब्द १०)।

स्पष्ट है कि शब्द भेद तो है परन्तु भाव भेद नहीं है। इस पर स्वामी जी लिखते हैं कि कई सज्जन इस पाठ को सत्यार्थ प्रकाश में से निकाल देने का आग्रह करते हैं। परन्तु इसका प्रथम उत्तर तो यह है कि सत्यार्थ प्रकाश के लेखक ऋषि दयानन्द जी हैं............उनके जीवन काल में यदि कोई उनको यह बतलाता तो मेरा पूर्ण विश्वास है कि वह इस पाठ को अवश्य निकाल देते...........। अब किसी को भी इसमें परिवर्तन का अधिकार नहीं है। लेखक स्वयं बदलना चाहे तो बदल सकता है दूसरे को बदलने का अधिकार न होने से अब इस पाठ का निकाल देना असंभव है। अधिक से अधिक यही हो सकता है कि इस पाठ के नीचे टिप्पणी दी जाये,उसमें लिखा जाये कि यह पाठ इस रूप में ग्रन्थ साहिब जी में नहीं है और उस भाव के जो शब्द ऊपर लिखे हैं वह भी लिख दिये जायें।

स्वामी जी इससे आगे लिखते हैं कि फिर भी यदि कोई आग्रह करे तो न्याय युक्त बात तो यही होगी कि गुरु ग्रन्थ साहिब जी में भी अगर कोई गलत बात है तो उसे भी निकाला जाये । जैसे 'गैंडा मारि होम जग कीए देवतियां की वाणे । - राग मलार वार महला १ वार २५ ....शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों और कात्यायनादि श्रौत सूत्रों में गेंडे का यज्ञ कहीं नहीं लिखा है । तो जो लोग सत्यार्थ प्रकाश के पाठ को निकालने की बात करते हैं क्या वे इस बात को (और कुछ ऐतिहासिक गलतियां,जो वहां उपलब्ध हैं) उनको निकाल सकते हैं? पर हम सभी जानते हैं ऐसा हो नहीं सकता।

'अब यदि कोई कहे कि उक्त पाठों को श्री गुरु ग्रन्थ से ही निकाल दिया जाय अथवा इन पाठों को बदल दिया जाए तो इस बात को कोई भी न मानेगा क्योंकि रामराय जी ने 'मिटी मुसलमान की' के स्थान पर दिल्ली में 'मिटी बेईमान की' पाठ बदला था,गुरु हरराय जी ने उनको गद्दी से पृथक् कर दिया और गुरु गोविन्द सिंह जी ने सिक्ख दीक्षा आरम्भ की उस दीक्षा में अब तक कहा जाता है-रामराइयों के साथ सिक्ख व्यवहार न करें अर्थात् उनसे रोटी बेटी का संबंध न करें और भाई मनीसिंह जी ने पाठ नहीं,कुछ क्रम बदला था उसे श्राप दिया गया कि तूने गुरु देह का अंग भंग किया है अतः आपके भी अंग अंग काटे जायें। उसके अंग अंग काटे गए । इन ऐतिहासिक घटनाओं के होते हुए न तो कोई व्यक्ति कह सकता है कि इस प्रकार के पाठों में सुधार किया जाए और न ही यह बात हो सकती है। अर्थात् यह असंभव है।

जैसे श्री गुरु ग्रन्थ जी के पाठ बदलने का किसी को अधिकार नहीं है। इसी प्रकार सत्यार्थ प्रकाश का 'वेद पढ़त ब्रह्मा मरे चारो वेद कहानि' के बदलने व निकालने का भी किसी को अधिकार नहीं है और यह भी निर्णीत है कि यह पाठ क्रमशः इसी भांति श्री गुरु ग्रन्थ जी में नहीं है परन्तु इसी भाव का दूसरा पाठ है जैसाकि मैंने पहले लिखा है।'

(पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के लेख का सार संक्षेप)



सत्यासत्य के स्वयमेव निर्णयार्थ एक बार 'मानक संस्करण' स्वयं पढ़ें

प्रतिक्रिया

इन सबके अंदर 'मैं ' (ego) ने घर बना रखा है। मैं कहता हूं कि मैं का मतलब मौत है। कृपा करके आप अपना काम करते जायें, घबराने वाली बात नहीं है। वैसे तो आजकल धर्म घोड़ा है और पाप उस पर सवार है। मगर धर्म मरेगा नहीं पापी बचेगा नहीं।

महाशय धर्मपाल जी

हमें किसी भी आलोचना की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। आपने जो सुन्दर कार्य किया है उसके लिए आप बधाई के पात्र हैं। आप चाहें तो कुछ आर्य विद्वानों एवं आर्य पत्र पत्रिकाओं को अपने प्रकाशन की एक प्रति समालोचना के लिए भेज दें, तभी हमें सही प्रतिक्रिया प्राप्त होगी।

आपसे प्रार्थना है कि आप अपना कार्य इसी प्रकार सक्रियता से करते रहें और किसी की भी आलोचना की परवाह न करें।

कैप्टन देवरत्न आर्य

(हमें पत्रिकाओं में) ईश्वर, वेद प्रकृति तथा धर्म के विषय में लेख मिलने चाहिये न कि झगड़े- यह पाठकों के साथ अन्याय है। स्वामी दयानन्दजी के अनुयायी होकर भी हम यदि आपस में एक दूसरे का सम्मान नहीं कर सकते तो कम अज् कम लड़ाई झगड़ा तो न करें।

(परोपकारी लेखमाला के संबंध में)

बड़ी कृपा कर आपने मुझे मानक संस्करण भेंट स्वरूप भेजा था। जिस दिन मुझे मिला था उसी दिन से बड़ी श्रद्धापूर्वक पढ़ना प्रारम्भ कर दिया और जब तक समाप्त नहीं कर लिया दम नहीं लिया। मेरे पास गलतियां निकालने वाला चश्मा नहीं है। हमें गलतियां ढूंढ़ने की आदत नहीं और न इतने विद्वान हैं कि स्वामी जी के ग्रन्थ में अशुद्धियां निकाल सकें।

सत्यानन्द जी मुंजाल

बड़े ही दुःख की बात है कि ऋषिवर की अमर कृति सत्यार्थ प्रकाश को लेकर इतना बखेड़ा किया जा रहा है। आर्य जगत् के सम्मुख अनेक गहन विषय हैं। यह मान्य हो चुका है कि ऋषिवर के सत्यार्थ प्रकाश का द्वितीय संस्करण दोषहीन है। सत्य सत्य ही रहना है। न्यास ने उसे सम्मुख लाने का सफल प्रयास किया है। वास्तव में यह अभिमान की बात है।

डॉ. चन्दकांत गर्जे

यह संस्करण आपकी व विद्वानों की गहरी सूझ का सुफल है। कठिन परिश्रम का काम था यह, लेकिन होना भी जरूरी है।

वानप्रस्थ सत्यनारायण आर्य

(नोट :- माननीय अग्निव्रत नैष्ठिक, भावेश मेरजा व अन्य विद्वानों की सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ प्राप्त हुयी हैं। विस्तारभय से उद्धृत नहीं की हैं।)



सत्यार्थ प्रकाश प्रचार सहयोग निधि

न्यास द्वारा प्रकाशित मानक संस्करण का जिस प्रकार से स्वागत किया गया और अल्पावधि में ही सात हजार प्रतियां सत्यार्थ प्रकाश प्रेमियों के हाथ में पहुंची इसके लिए समस्त आर्य जगत् को धन्यवाद।

प्रचार संस्करण का मूल्य न्यूनतम साठ रु. है। अनेक सहयोगियों की भावना है और हम भी चाहते हैं कि इस मूल्य को कम किया जाए। परन्तु मूल सत्यार्थ प्रकाश की जिस शैली का अनुसरण करने के कारण ज्यादा पृष्ठ होने से लागत मूल्य जो कि अठावन रु. आया है, उसे कम करने के लिए संस्करण की विशेषताओं से किनारा करना अभीष्ट नहीं है। इसका एक ही हल है कि उक्त निधि की स्थापना के पश्चात् सत्यार्थ प्रकाश प्रेमी अपनी छोटी बड़ी आहुति इसमें दें। डेढ़ लाख रु. के दान के कारण ही प्रचार संस्करण को हम तीस रु. में दे पाये थे। अतः पैंतीस चालीस रु. तक यह संस्करण आपके हाथों में पहुंच सके। इस अभिलाषा से उक्त निधि की स्थापना की गई है और तुरन्त पश्चात् तीस हजार रु. की प्रथम आहुति भी प्राप्त हो चुकी है।

समस्त आर्यजनों से इस विज्ञप्ति के माध्यम से अपील करना चाहेंगे कि छोटी राशि भी यथा हजार, दो हजार,पांच हजार रु. भी प्रेषित कर आप इस पुण्य कार्य में बहुत बड़ा सहयोग कर सकते हैं। जितनी प्रतियां रियायती मूल्य पर आपके सहयोग से दी जायेंगी, इस बात का उल्लेख उतनी प्रतियों पर किया जावेगा। आपके भरपूर व त्वरित सहयोग की अपेक्षा हमें रहेगी।

आपके द्वारा दिया गया अर्थ सहयोग आयकर अधिनियम की धारा ८० जी के अंतर्गत कर मुक्त होगा। आपकी सहयोग राशि ड्राफ्ट, चैक, धनादेश श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर के नाम बनावें अथवा न्यास के खाता सं. ३१०१०२० १००४१५१८ यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, मेन ब्रान्च, उदयपुर में जमा करा हमें सूचित करने का श्रम करें।

निवेदक

श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर
नवलखा महल परिसर,गुलाब बाग,महर्षि दयानन्द मार्ग,उदयपुर 313001 (राज.)
टेलीफैक्स : 2417694 मोबाइल–9314235101 (कार्यकारी अध्यक्ष) 9829063110 (व्यवस्थापक)
ई–मेल satyarthnyas@rediffmail.com बेबसाइट : www.satyarthprakashnyas.org



युग प्रवर्तक

महर्षि दयानन्द सरस्वती